Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946
94251-01132

Supported by:
Kisaan Helpline
+91-7415538151

READ FOR ONLINE EDITION
Website: www.krishakbharti.in
E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

मध्य भारत कृषक भारती

ISSN-2582-5976

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-21 अंक-4 ग्वालियर, जुलाई -2026 मूल्य 30 रुपए

छत्तीसगढ़: किसानों को मिली नई तकनीक और बाजार की जानकारी

राष्ट्रीय आम महोत्सव में दिखीं 250 से ज्यादा किस्में

छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर स्थित इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय में आयोजित तीन दिवसीय राष्ट्रीय आम महोत्सव आकर्षण का केंद्र बना। महोत्सव में देशभर की 250 से अधिक आम की किस्मों का प्रदर्शन किया गया, जिसमें छोटे बेर के आकार वाले आम से लेकर बीजापुर के प्रसिद्ध हाथीझूल आम तक शामिल रहे। मुख्यमंत्री विष्णु देव साय ने कार्यक्रम में भाग लेकर किसानों को बागवानी और फल उत्पादन को बढ़ावा देने का संदेश दिया।

मध्यप्रदेश: बैतूल के कुकरू में किसान के खेत पहुंचे मुख्यमंत्री यादव, खुद हल चलाकर की मक्के की बुवाई

मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने अपने बैतूल प्रवास के दौरान बैतूल जिले के प्रसिद्ध हिल स्टेशन कुकरू में किसानों के बीच पहुंचकर खेती-किसानी के प्रति अपनी संवेदनशीलता का परिचय दिया। मुख्यमंत्री ने किसान मारोती बावस्कर के खेत में स्वयं हल चलाकर खरीफ सीजन की फसल की बुवाई भी की। मुख्यमंत्री खेत में पहुंचे तो किसान मारोती अपने परिवारजनों के साथ मक्का की फसल की बुवाई कर रहे थे।

गर्मी में देसी खाद डालने को लेकर
एक जरूरी जानकारी
40-45°C
तेज गर्मी
मैं काफी दिनों से देख रहा हूं कि 40-45°C तापमान में किसान भाई खेतों में देसी खाद डाल रहे हैं।
सभी किसान भाइयों से निवेदन है कि इतनी तेज गर्मी में डाली गई देसी खाद का पूरा फायदा नहीं मिल पाता।
क्योंकि देसी खाद (गोबर खाद आदि) को असरदार बनने के लिए मिट्टी में नमी बहुत जरूरी होती है।
अधिक तापमान में खाद की नमी जल्दी उड़ जाती है और उसमें मौजूद पोषक तत्व भी कम प्रभावी हो सकते हैं।
बेहतर होगा कि:
खाद बारिश आने से पहले हल्की नमी में डालें।
या खेत में सिंचाई के बाद उपयोग करें।
खाद डालने के बाद तुरंत मिट्टी में मिला दें।
इससे खाद अच्छी तरह सड़ेगी और फसल को पूरा लाभ मिलेगा।
सही समय पर सही तरीका अपनाएं, उपज बढ़ाएं और मेहनत को सफल बनाएं।
जय किसान, जय जवान, जय विज्ञान

सूखे की आहट

दक्षिण-पश्चिम मॉनसून के कमजोर रहने की चिंताओं के बीच देश के कृषि क्षेत्र के सामने सूखे की चुनौती पैदा होने की आशंका बलवती हुई है। हाल-फिलहाल बारिश में चालीस से छियालीस प्रतिशत की कमी मापी गई है। देश के मौसम विज्ञान विभाग द्वारा दो जुलाई तक मानसून की सक्रियता कम रहने के अनुमान के कारण खरीफ की फसल को लेकर चिंताएं बढ़ रही हैं। केंद्र सरकार ने कम बारिश वाले 315 जिलों में से 111 ऐसे जिलों की पहचान की है, जो सूखे की दृष्टि से ज्यादा जोखिम वाले हो सकते हैं। जो आसन्न संकट की गंभीरता को भी दर्शाता है। यह विडंबना है कि तमाम सिंचाई सुविधाओं के विस्तार के बावजूद आज देश में खेती की मॉनसून की बारिश पर निर्भरता बनी हुई है। यही वजह है कि मॉनसून में देरी या कम बारिश होने का सीधा असर फसल की बुवाई, खाद्यान्न की पैदावार, ग्रामीणों की आय और खाने-पीने की वस्तुओं की महंगाई के रूप में पड़ता है। ऐसे में यदि जुलाई व अगस्त माह के महत्वपूर्ण समय में बारिश सामान्य से कम होती है तो इसके परिणाम चिंता बढ़ाने वाले हो सकते हैं। केंद्र सरकार राज्य और जिले स्तर पर आपातकालीन योजनाएं तैयार कर रही है। सरकार सूखे में भी बेहतर उत्पादन कर सकने वाली फसलों को बढ़ावा देने के साथ ही जल संरक्षण पर जोर दे रही है। साथ ही कोशिश है कि किसानों के लिये बीज-उर्वरकों की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित की जाए। देश में दालों, तिलहन और मोटे अनाजों की खेती को प्राथमिकता देना जरूरी है, क्योंकि ये फसलें कम पानी में भी सामान्य उत्पादन दे सकती हैं। सुखद ही है कि अल नीनो मॉनिटरिंग सेल को सक्रिय किया गया ताकि कृषि विज्ञान केंद्रों के जरिये रियल-टाइम सलाह किसानों को देकर सूखे के प्रभावों को कम किया जा सके। निश्चित रूप से पूरी तैयारी के साथ सूखे से मुकाबले का मतलब है कि हमने आधी लड़ाई जीत ली है।

निस्संदेह, कम बारिश से केवल किसान व ग्रामीण अर्थव्यवस्था ही प्रभावित नहीं होती है, सूखे में खाद्यान्न की उत्पादकता घटने पर अनाज महंगा होने से आम आदमी का जीवन भी बाधित होता है। जिससे किसान की ही नहीं, पूरे देश की अर्थव्यवस्था प्रभावित हो सकती है।

आज जरूरत इस बात की है कि सूखे की आशंका के बीच जल संकट से मुकाबले के लिये एक प्रभावी समग्र नीति बने। समय-समय पर इन नीतियों में सुधार किया जाए। जरूरी है कि जलवायु परिवर्तन संकट के दौर में मानसून के व्यवहार में अनिश्चितता के बीच खेती की बारिश पर निर्भरता को कम करने के लिये व्यापक रणनीति तैयार की जाए। इसके लिये जरूरी है कि सूक्ष्म-सिंचाई सुविधा का विस्तार, जल निकायों के पुनरुद्धार, भूजल प्रबंधन को बेहतर बनाने और जलवायु के अनुरूप खेती को बढ़ावा देने के प्रयास हों।

मानसून का मिजाज बदला-बदला, इस साल सामान्य से कम वर्षा का अनुमान

भारत मौसम विज्ञान विभाग (आईएमडी) ने कहा कि इस वर्ष देश में सामान्य से कम बारिश होने की संभावना है। विभाग के अनुसार, अब तक मानसून दक्षिणी प्रायद्वीपीय भारत, पूर्वोत्तर राज्यों और पूर्वी भारत के कुछ हिस्सों तक पहुंच चुका है, लेकिन इसके बाद देश के अन्य क्षेत्रों में इसकी रफ्तार धीमी रहने की उम्मीद है।

मीडिया से बातचीत करते हुए आईएमडी के वैज्ञानिक प्रदीप शर्मा ने कहा कि अल नीनो प्रभाव अब सक्रिय हो चुका है और पूरे मानसून सीजन के दौरान इसके बने रहने की संभावना है। उन्होंने कहा, "दक्षिण-पश्चिम मानसून के दीर्घकालिक पूर्वानुमान के अनुसार इस साल पूरे देश में सामान्य वर्षा का लगभग 98 प्रतिशत यानी सामान्य से कम बारिश होने की संभावना है।"

आईएमडी के एक अन्य वैज्ञानिक नरेश कुमार ने बताया कि पिछले दो दिनों से पश्चिमी विक्षोभ के प्रभाव के कारण उत्तर-पश्चिम भारत में बारिश और गरज-चमक की गतिविधियां देखने को मिल रही हैं। उन्होंने कहा, "इसके लिए पहले ऑरेंज अलर्ट जारी किया गया था। फिलहाल पश्चिमी विक्षोभ उत्तर हरियाणा और उससे सटे क्षेत्रों में सक्रिय है। इसके प्रभाव से शनिवार को पंजाब, हरियाणा, दिल्ली-एनसीआर और हिमालयी क्षेत्रों में बारिश और गरज-चमक जारी रहने की संभावना है। इस दौरान 40 से 50 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से तेज हवाएं चल सकती हैं।" उन्होंने बताया कि दिल्ली-एनसीआर के लिए शनिवार को येलो अलर्ट जारी किया गया है, जबकि राजस्थान और मध्य प्रदेश के कुछ हिस्सों के लिए ऑरेंज अलर्ट जारी किया गया है। नरेश कुमार ने कहा कि दिल्ली-एनसीआर में हल्की बारिश और तेज हवाओं की संभावना को देखते हुए येलो अलर्ट जारी किया गया है।

सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)
रामप्रकाश रघुवंशी
98272-78063
***
नरसिंहपुर (म.प्र.)
नवीन शुक्ला: 89894-36330

मुंगावली (म.प्र.)
भगवानदास चौबे
96854-88453
बलिया (उ.प्र.)
आर.एन. चौबे-94535-77732
पश्चिम बंगाल
राजेश नायक-98831-57482

उड़ीसा
समीर रंजन नायक
70422-31678
***
हापुड़ (उ.प्र.)
मयंक गौड़: 83848-66823

Online मंगाएं साहित्य

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका **मध्य भारत कृषक भारती** द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट **www.krishakbharti.in** पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 20 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 21 से 30 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है।

-संपादक

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in

मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सदस्यता एवं विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें
0751-4070802
▪ वार्षिक ₹ 400 ▪ द्विवार्षिक ₹ 750
▪ पंचवार्षिक ₹ 1800

▪ वर्ष 21 ▪ अंक 04 ग्वालियर, जुलाई 2026 मूल्य ₹ 30/-

: सम्पादक मण्डल :

प्रधान सम्पादक

राजू गुर्जर (MJC)

94251-01132

94245-22090

❖

प्रसार/मार्केटिंग टीम

डी.के. बरार

91791-85002, 70247-93010

महेश अहिरवार: 94251-48365

: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण :

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया
कृषि विश्वविद्यालय
***
डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव
(Assistant Professor)
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन
महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)
***
डॉ. आर.के.एस. तोमर
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि.
ग्वालियर (म.प्र.)
***
डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण),
डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि.,पूसा, समस्तीपुर

प्रो. (डॉ.) के. आर. मौर्य
पूर्व कुलपति, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय
पूसा (बिहार), एवं महात्मा ज्योति राव फूले
विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)
***
डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक)
पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा उद्यान महाविद्यालय,
नूरसराय (नालन्दा), बिहार कृषि वि.वि.,सबौर, भागलपुर
***
डॉ. भागचन्द जैन
प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी
कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि
विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)
***
डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना
कृषि वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)
कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया (म.प्र.)

डॉ. विनीता सिंह, अध्यक्ष
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
AKS विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)
***
तपस्या तिवारी पीएचडी शोधार्थी, मृदा विज्ञान और
कृषि रसायन विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि
और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)
***
बसंत कुमार दादरवाल
इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस
हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)
***
श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मोबाइल: 9907279542
***
डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा (असिस्टेंट प्रोफेसर)
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन
महाविद्यालय, महू, (म.प्र.)

अंदर के पन्नों पर

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

▪ जैविक फल उत्पादन 08
▪ पोस्टमार्टम (नेक्रोप्सी) पशुओं में रोग पहचान .. 09
▪ गर्मी का तनाव (हीट स्ट्रेस) :... 10
▪ लसोड़ा की खेती- मृदा, जलवायु, उन्नत किस्में.. 11
▪ बछड़ों में निमोनिया, कारण एवं रोकथाम 12
▪ सहजन: पोषण, स्वास्थ्य एवं सतत कृषि का 'ग्रीन गोल्ड' 13
▪ भारत का काला सोना-भैंस: .. 14
▪ विंध्य-रीवा के वनांचल कुशमी क्षेत्र में कृषि की चिंता.. 15
▪ मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना 16
▪ जुलाई में खरपतवार एवं कीट प्रबंधन: .. 17
▪ पशुओं में हर्बल एवं पारंपरिक औषधियों की भूमिका 18
▪ सहजन मुनगा के फायदे एवं उपयोगिता 19
▪ औषधीय गुणों से भरपूर धनिया की वैज्ञानिक खेती 20
▪ छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश के किसानों के लिए नई दिशा.. 21

उत्तर प्रदेश

▪ क्षारीय मृदा में जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीव का प्रबंधन एवं महत्व 22
▪ पशुओं में टीकाकरण का महत्व- रोगों से सुरक्षा की पहली ढाल 23
▪ फसल अवशेष प्रबंधन : पर्यावरण संरक्षण .. 24
▪ नाडेप कम्पोस्ट उत्पादन तकनीक: सस्ती, टिकाऊ .. 25
▪ धान की नर्सरी प्रबंधन :... 26
▪ जलवायु परिवर्तन का खाद्य सुरक्षा .. 27
▪ भविष्य की खाद्य प्रणालियां एवं खाद्य परिवर्तन.. 28
▪ सतत् कृषि विकास में फसल चक्र का महत्व .. 29
▪ जलवायु परिवर्तन का खाद्य सुरक्षा .. 30
▪ 'दुधारू पशुओं में थनैला (मैस्टाइटिस) रोग के कारण,.. 31
▪ बीज की सही पहचान कैसे करें, बीज कहां से खरीदें 32

राजस्थान

▪ फसल क्षेत्रों में भौतिक कीट प्रबंधन का महत्व 33
▪ निम्बू वर्गीय फलों के बागानों की स्थापना .. 34
▪ आधुनिक आम उत्पादन तकनीक अपनाएं,.. 35
▪ वृक्षायुर्वेद श्रृंखला : बीजोपचार एवं अंकुरण प्रबंधन 36
▪ सोयाबीन के मुख्य नाशीकीट एवं उनका प्रबन्धन 37
▪ सफलता की कहानी-मधुमक्खी पालन आधारित खेती.. 38
▪ एल नीनो की आहट और भारतीय कृषि : .. 39
▪ डिजिटल कृषि: मोबाइल ऐप और ऑनलाइन सेवाएं .. 40
▪ भैंसों में फूल दिखाना (प्रोलैप्स): कारण, नुकसान.. 41
▪ ग्रामीण कृषि ढांचे (सिंचाई, भंडारण) .. 42

हरियाणा

▪ खरगोश पालन-वैज्ञानिक प्रबंधन एवं आर्थिक संभावनाएं 43

बिहार

▪ फलों एवं सब्जियों के कटाई-पश्चात प्रबंधन .. 44
▪ जल संरक्षण और बेहतर उत्पादन का माध्यम: .. 45

पंजाब

▪ किचन गार्डन: पोषण सुरक्षा और स्वस्थ .. 46

उत्तराखण्ड

▪ फल फटने की समस्या, कारण, प्रभाव .. 47
▪ हॉर्टिकल्चर में खाद्य सुरक्षा और पोषण का योगदान 48

नई दिल्ली

▪ आधुनिक कृषि : आत्मनिर्भर, टिकाऊ .. 49

झारखण्ड

▪ अकोला मिनी दाल मिल: दलहन प्रसंस्करण, .. 50

कर्नाटक

▪ सुनहरी हल्दी: किसानों के खेतों से विश्व बाजार तक 51

हिमाचल प्रदेश

▪ सब्जी की खेती में महिला उद्यमिता:.. 52
▪ भिंडी के उत्पादन में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका 53

कृषि को उत्पादन से आगे बढ़ाकर मूल्य संवर्धन आधारित अर्थव्यवस्था से जोड़ा जाए : कृषि उत्पादन आयुक्त बर्णवाल

फसल बीमा, उर्वरक उपलब्धता, पैक्स सदस्यता, आधुनिक कृषि यंत्रों एवं डिजिटल कृषि सेवाओं के विस्तार के निर्देश

भोपाल। कृषि उत्पादन आयुक्त अशोक बर्णवाल ने कहा कि वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र की सफलता केवल उत्पादन वृद्धि तक सीमित नहीं रह सकती, बल्कि किसानों को उत्पादन से लेकर प्रसंस्करण, वैज्ञानिक भंडारण, मूल्य संवर्धन, ब्रांडिंग और विपणन तक की संपूर्ण मूल्य श्रृंखला से जोड़ना समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। उन्होंने अधिकारियों को निर्देश दिए कि कृषि, उद्यानिकी, सहकारिता, पशुपालन, डेयरी, मत्स्य पालन तथा अन्य संबद्ध विभाग समन्वित एवं परिणामोन्मुखी दृष्टिकोण के साथ कार्य करते हुए किसानों की आय में स्थायी वृद्धि सुनिश्चित करें तथा प्रत्येक जिले की भौगोलिक, जलवायु एवं बाजार आधारित विशेषताओं के अनुरूप दीर्घकालिक कृषि विकास रणनीति तैयार करें।

नर्मदा भवन, भोपाल में आयोजित भोपाल एवं नर्मदापुरम संभागों की रबी वर्ष 2025-26 की समीक्षा एवं खरीफ वर्ष 2026 की तैयारियों के लिए आयोजित बैठक में कृषि, उद्यानिकी, सहकारिता, पशुपालन, डेयरी एवं मत्स्य विभागों की योजनाओं एवं कार्यक्रमों की विस्तृत समीक्षा की गई। बैठक में प्रमुख सचिव सहकारिता श्री डी.पी. आहूजा, प्रमुख सचिव पशुपालन श्री उमाकांत उमराव, सचिव किसान कल्याण एवं कृषि विकास श्री निशांत बरबड़े, सचिव उद्यानिकी श्री जॉन किंग्सले, भोपाल संभागायुक्त श्री संजीव सिंह, नर्मदापुरम संभागायुक्त श्रीकांत बनोठ,सचिव मत्स्य विभाग स्वतंत्र कुमार सिंह, संचालक कृषि उमाशंकर भार्गव, संचालक मत्स्य विभाग श्री मनोज पथरोलिया, संचालक मत्स्य महासंघ श्री अनुराग चौधरी सहित दोनों संभागों के कलेक्टर्स, जिला पंचायतों के मुख्य कार्यपालन अधिकारी एवं वरिष्ठ अधिकारी उपस्थित रहे। बैठक को संबोधित करते हुए कृषि उत्पादन आयुक्त श्री बर्णवाल ने कहा कि उद्यानिकी का कृषि उत्पादन में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। बदलती बाजार परिस्थितियों में नई पीढ़ी के प्रगतिशील कृषक उच्च मूल्य वाली फसलों, औषधीय पौधों, पुष्पोत्पादन तथा व्यावसायिक उद्यानिकी की ओर तेजी से अग्रसर हो रहे हैं। ऐसे में प्रत्येक जिले में स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप सूक्ष्म नियोजन, क्लस्टर आधारित विकास तथा बाजारोन्मुख उत्पादन प्रणाली विकसित की जाए। उन्होंने स्पष्ट किया कि उद्यानिकी को पारंपरिक कृषि की सहायक गतिविधि नहीं, बल्कि एक सशक्त व्यावसायिक उद्यमशीलता मॉडल के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। बैठक में विभिन्न जिलों द्वारा मखाना उत्पादन, नदी तटीय क्षेत्रों में तरबूज एवं खरबूज की खेती, टमाटर, औषधीय फसलों एवं व्यावसायिक पुष्प उत्पादन जैसे नवाचारों की जानकारी प्रस्तुत की गई। उद्यानिकी क्षेत्र को मजबूत बनाने के लिए शेड नेट हाउस, प्री-कूलिंग यूनिट, राइपनिंग चैंबर, कोल्ड चेन, अनुदान आधारित रेफ्रिजरेटेड वाहनों तथा अन्य पोस्ट-हार्वेस्ट प्रबंधन अवसंरचनाओं के विकास पर विशेष बल दिया गया। स्थानीय स्तर पर खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों एवं वैज्ञानिक भंडारण सुविधाओं को बढ़ावा देकर कटाई उपरांत होने वाली क्षति कम करने तथा किसानों को बेहतर मूल्य उपलब्ध कराने की रणनीति पर भी विस्तार से चर्चा की गई। कृषि उत्पादन आयुक्त बर्णवाल ने कहा कि कृषि क्षेत्र की दीर्घकालिक स्थिरता के लिए प्राकृतिक खेती, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य संरक्षण एवं फसल विविधीकरण को व्यापक रूप से बढ़ावा दिया जाना।

मूंगफली उत्पादन के लिए लाभकारी होगा सीडहब

शिवपुरी। राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर के अधीन कार्यरत केवीके शिवपुरी पर कुलगुरु प्रोफेसर अरविंद कुमार शुक्ला की अध्यक्षता में मूंगफली उत्पादन के लिए लाभकारी सीडहब परियोजना के लिए नवीन यूनिट निर्माण हेतु भूमि पूजन का कार्य किया गया। इस अवसर पर निदेशक विस्तार सेवाएं डॉ वाई पी सिंह और कार्यपालन यंत्री इंजी. अखिलेश सिंह भी उपस्थित रहे। केवीके के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख डॉ पुनीत कुमार के निर्देशन में केंद्र पर संचालित गतिविधियों का अवलोकन करते हुए कुलगुरु द्वारा केंद्र पर पेवर्स रोड का शिलान्यास भी किया गया। शिवपुरी जिले में मूंगफली की फसल मध्य प्रदेश में सबसे अधिक क्षेत्रफल में ली जाने वाली तिलहनी फसल लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के भारतीय मूंगफली अनुसंधान संस्थान जूनागढ़ गुजरात के समन्वय में सीडहब तैयार कराया जा रहा है।

प्रो. बालिक दास राय
बन्टी राय
98276-11495
88715-18885

अमित राय
मै. माँ उर्वरक केन्द्र
रसायनिक एवं जैविक खाद बीज एवं दवाई के विक्रेता
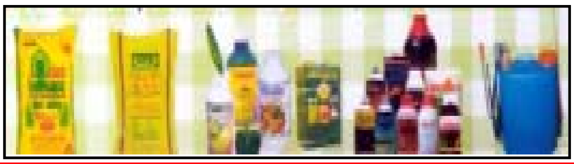
पताः भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)
03/2025-26

कृषि उद्यमी प्रशिक्षण की परीक्षा संपन्न, महिलाओं को मिला स्वरोजगार का मार्ग

कटनी। मध्य प्रदेश शासन के ग्रामीण आजीविका मिशन के सहयोग से महिलाओं को आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल के तहत कृषि उद्यमी प्रशिक्षण की परीक्षा सफलतापूर्वक संपन्न हुई। जनपद पंचायत रीठी अंतर्गत ग्राम पंचायत परोंहा पिपरिया की 35 बीपीएल वर्ग की स्व-सहायता समूह की महिलाओं को 13 दिवसीय कृषि उद्यमी प्रशिक्षण प्रदान किया गया था। यह प्रशिक्षण स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ग्रामीण स्वरोजगार प्रशिक्षण संस्थान द्वारा प्रबंधक पवन कुमार गुप्ता के मार्गदर्शन एवं प्रशिक्षण समन्वयक सुनील रजक के सहयोग से आयोजित किया गया। प्रशिक्षण पूर्ण होने के बाद परीक्षा का आयोजन ओम प्रकाश चतुर्वेदी (परीक्षा नियंत्रक एवं प्रमाणीकरण, रुडसेटी, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, भोपाल) के निर्देशन में किया गया।

परीक्षा में कृषि विषय से संबंधित मूल्यांकन परीक्षक रामसुख दुबे (कटनी) द्वारा तथा बैंकिंग एवं स्वरोजगार से जुड़े विषयों का मूल्यांकन प्रदीप नामदेव (दमोह) द्वारा किया गया। प्रशिक्षण के दौरान महिलाओं को जलवायु, भूमि के प्रकार, मिट्टी परीक्षण, जैविक खेती, जैविक खाद एवं कीटनाशक निर्माण, कीट एवं रोग नियंत्रण, दलहन-तिलहन एवं सब्जी फसलों की उन्नत तकनीक, स्प्रिंकलर एवं टपक सिंचाई प्रणाली, शुष्क भूमि कृषि, एकीकृत कृषि प्रणाली, पशुपालन, मछली पालन, मुर्गी पालन, बकरी पालन सहित नर्सरी प्रबंधन एवं पादप प्रसार तकनीकों की जानकारी दी गई। इसके साथ ही बैंकिंग सेवाओं, बीमा, विभिन्न खातों, शासन की योजनाओं एवं अनुदान की जानकारी भी दी गई, जिससे महिलाएं स्वरोजगार स्थापित कर आर्थिक रूप से सशक्त बन सकें। परीक्षा के सफल आयोजन में ग्राम के समाजसेवी गोवर्धन रजक का विशेष सहयोग रहा। प्रशिक्षण पूर्ण करने के बाद सभी प्रतिभागी महिलाओं को प्रमाण पत्र वितरित किए गए।

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

सागर। ज्ञानवीर विश्वविद्यालय, सागर के स्कूल ऑफ फार्मेसी एवं स्कूल ऑफ साइंसेज द्वारा 'नैनो-बायोमटेरियल्स एवं बायोकेमिकल इंजीनियरिंगः एप्लाइड साइंसेज के लिए नवाचार' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसे MPCST, भोपाल का प्रायोजन प्राप्त है। इस संगोष्ठी में विभिन्न संस्थानों से विशेषज्ञों एवं विद्यार्थियों ने सहभागिता की। उद्घाटन सत्र में डॉ. शुभम जैन एवं डॉ. शिखा जैन की कॉपीराइट प्राप्त अकादमिक कृति का लोकार्पण मुख्य अतिथियों द्वारा किया गया, जिसे शिक्षाविदों ने उच्च शिक्षा एवं शोध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि बताया। इस अवसर पर आयोजन सचिव डॉ. आशीष जैन ने संगोष्ठी की रूपरेखा प्रस्तुत की। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि प्रो. नवीन कांगो हेड, डिपार्टमेंट ऑफ माइक्रोबायोलॉजी एवं डिपार्टमेंट ऑफ एनवायरनमेंटल साइंसेज, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर रहे। सेमिनार के दौरान डॉ. मनीष चौरसिया (CSIR) ने बायोमटेरियल आधारित ड्रग डिलीवरी सिस्टम पर जानकारी दी। वहीं डॉ. प्रवीण कुमार जागा (JNKVV, jabalpur) ने कृषि क्षेत्र में नैनो-बायोमटेरियल्स के उपयोग एवं स्मार्ट डिलीवरी सिस्टम पर व्याख्यान दिया। द्वितीय दिवस पर प्रो. वंदना विनायक ने डायटम्स की भूमिका एवं उनके उपयोग पर चर्चा की, जबकि डॉ. कल्पतरु दास ने ग्रीन केमिस्ट्री के लाभ एवं भविष्य पर अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम का मंच संचालन डॉ. ईशा शर्मा द्वारा किया गया। सेमिनार मे पोस्टर प्रस्तुतीकरण भी आयोजित किया गया। पोस्टर प्रतियोगिता में रोशनी पटेल, नंदिनी यादव एवं मुस्कान अहिरवार ने उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए विजेता स्थान प्राप्त किया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के उपकुलगुरु प्रो. मनोज भाटिया ने अपने संबोधन में कहा कि विश्वविद्यालय लगातार अकादमिक उत्कृष्टता और शोध संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए इस प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करता रहेगा, जिससे विद्यार्थियों को वैश्विक स्तर की जानकारी प्राप्त हो सके। कुलाधिपति आदित्य सिंह राजपूत ने इस आयोजन को विद्यार्थियों के लिए ज्ञानवर्धक बताते हुए इसे शोध एवं नवाचार की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल बताया।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

आम की गुठलियों से बने वेस्ट-टू-वेल्थ उत्पादों ने बटोरी सराहना

जगदलपुर में आयोजित दो दिवसीय 'बस्तर आम महोत्सव-2026' में महंत बिसाहू दास उद्यानिकी महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, पेंड्रा-मरवाही ने जीते पुरस्कार

अमरपुरपेंड्रा। जगदलपुर में आयोजित दो दिवसीय 'बस्तर आम महोत्सव-2026' में महंत बिसाहू दास उद्यानिकी महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, पेंड्रा-मरवाही ने अपनी अभिनव प्रस्तुतियों से विशेष पहचान बनाई। महाविद्यालय ने आम तथा आम से तैयार विभिन्न उत्पादों की आकर्षक प्रदर्शनी लगाकर कुल सात पुरस्कार अपने नाम किए। महोत्सव में महात्मा गांधी उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़) के अंतर्गत संचालित 17 महाविद्यालयों के साथ-साथ सैकड़ों किसानों ने भी भागीदारी की।

महाविद्यालय के अधिष्ठाता डॉ. नारायण साहू के मार्गदर्शन में डॉ. निशा यादव, डॉ. शिवानी शिवसागर, अतिथि शिक्षक डॉ. योगेश कुमार तथा तृतीय वर्ष की छात्रा कुमारी पायल जैन ने आम की गुठलियों से निर्मित आकर्षक और उपयोगी उत्पादों का प्रदर्शन किया। महोत्सव में किसानों ने भी आम और उससे तैयार प्रसंस्कृत उत्पादों की प्रदर्शनी लगाई। जिले के इस नवाचार ने यह साबित किया कि आम केवल एक फल नहीं, बल्कि रोजगार, उद्यमिता और कला का प्रभावी माध्यम भी बन सकता है। विशेष रूप से आम की गुठलियों जैसे अपशिष्ट पदार्थों से तैयार उत्पादों ने 'वेस्ट-टू-वेल्थ' की अवधारणा को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया।

नवाचारी उत्पादों से मिली प्रशंसा

प्रदर्शनी में हेयर क्लिप, नेकलेस, की-रिंग, ईयररिंग, ब्रेसलेट, फ्लावर वास, सजावटी हैंगर सहित कई वेस्ट-टू-वेल्थ उत्पाद और मॉडल प्रदर्शित किए गए। इन नवाचारी उत्पादों ने दर्शकों और विशेषज्ञों का ध्यान आकर्षित करते हुए खूब प्रशंसा प्राप्त की।

कई श्रेणियों में पुरस्कार

महोत्सव में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में महाविद्यालय को कई श्रेणियों में पुरस्कार मिले। गुठली आधारित मॉडल एवं वेस्ट मटेरियल से निर्मित आभूषणों के लिए प्रथम पुरस्कार, पेंड्रा-मरवाही की देशी किस्म के आम से बने अचार के लिए प्रथम पुरस्कार, एकल किस्म के आमचूर के लिए तृतीय पुरस्कार, गुठली आधारित बोन्साई के लिए तृतीय पुरस्कार तथा टेबल पर्पज देशी आम श्रेणी में श्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त हुआ।

किसानों को प्रति एकड़ एक-एक बोरी डीएपी-यूरिया का बंधन नहीं, समितियों में भरपूर स्टॉक

रायपुर। खरीफ सीजन को देखते हुए रायपुर जिले की सहकारी समितियों में किसानों के लिए यूरिया और डीएपी खाद का पर्याप्त भंडारण किया गया है। कृषि विभाग ने साफ किया है कि किसानों पर प्रति एकड़ एक बोरी डीएपी या यूरिया लेने का कोई दबाव या बंधन नहीं है। खरीफ सीजन को देखते हुए रायपुर जिले की सहकारी समितियों में किसानों के लिए यूरिया और डीएपी खाद का पर्याप्त भंडारण किया गया है। कृषि विभाग ने साफ किया है कि किसानों पर प्रति एकड़ एक बोरी डीएपी या यूरिया लेने का कोई दबाव या बंधन नहीं है। नैनो उर्वरक भी पूरी तरह वैकल्पिक रहेंगे। कृषि विभाग के अनुसार जिले की समितियों में वर्तमान में 9102 मीट्रिक टन यूरिया और 3092 मीट्रिक टन डीएपी उपलब्ध है।

01/2025-26

जैविक फल उत्पादन

✍ **सुनित भदरगे** पीएच.डी. शोध छात्र (फल विज्ञान) बागवानी विभाग, स्कूल ऑफ एग्रीकल्चर, आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर-475001 (म.प्र.)

परिचय: जैविक फल उत्पादन वह कृषि पद्धति है जिसमें फलों का उत्पादन प्राकृतिक संसाधनों, जैविक खादों तथा जैविक कीट-रोग प्रबंधन तकनीकों के माध्यम से किया जाता है। इसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों एवं कृत्रिम वृद्धि नियामकों का प्रयोग नहीं किया जाता। इसका मुख्य उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण, मिट्टी की उर्वरता बनाए रखना, मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा तथा टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देना है। आज के समय में जैविक फलों की मांग तेजी से बढ़ रही है क्योंकि उपभोक्ता सुरक्षित एवं पोषक खाद्य पदार्थों को प्राथमिकता दे रहे हैं।

जैविक फल उत्पादन का महत्व

1.स्वास्थ्यवर्धक फल : रासायनिक अवशेषों से मुक्त फल प्राप्त होते हैं।

2.मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि : जैविक पदार्थों से मिट्टी की संरचना बेहतर होती है।

3.पर्यावरण संरक्षण : जल, वायु एवं भूमि प्रदूषण कम होता है।

4.जैव विविधता का संरक्षण : लाभकारी सूक्ष्मजीवों और कीटों की सुरक्षा होती है।

5.उच्च बाजार मूल्य : जैविक फलों को सामान्य फलों की तुलना में अधिक मूल्य मिलता है।

6.स्थायी कृषि प्रणाली : दीर्घकाल तक उत्पादन क्षमता बनी रहती है।

जैविक फल उत्पादन के सिद्धांत

* मिट्टी की उर्वरता का संरक्षण। * प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग। * रासायनिक पदार्थों से परहेज। * जैविक खादों का उपयोग। * जैविक कीट एवं रोग नियंत्रण। * पर्यावरण-अनुकूल कृषि तकनीकों का प्रयोग।

जैविक फल उत्पादन की प्रमुख विधियाँ

1. भूमि का चयन

* प्रदूषण मुक्त क्षेत्र का चयन करें। * भूमि में पर्याप्त जल निकास होना चाहिए। * मिट्टी का pH सामान्यतः 6.0 से 7.5 के बीच उपयुक्त माना जाता है।

2. जैविक खादों का उपयोग

गोबर की सड़ी हुई खाद (FYM)- मिट्टी में जैविक पदार्थ बढ़ाती है तथा पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराती है।

वर्मी कम्पोस्ट- केंचुओं द्वारा तैयार की गई उच्च गुणवत्ता वाली जैविक खाद।

हरी खाद- ढैंचा, सनई आदि फसलों को मिट्टी में मिलाकर उर्वरता बढ़ाई जाती है।

कम्पोस्ट खाद

कृषि एवं घरेलू जैविक अवशेषों से तैयार खाद।

3. जैव उर्वरकों का उपयोग

प्रमुख जैव उर्वरक- * एजोटोबैक्टर (Azotobacter) * एजोस्पिरिलम (Azospirillum) * फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (PSB) * माइकोराइजा (Mycorrhiza)

ये पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराने में सहायता करते हैं।

4. खरपतवार प्रबंधन

* हाथ से निराई-गुड़ाई * मल्चिंग (सूखी पत्तियाँ, भूसा, घास) * जैविक आवरण फसलें

मल्चिंग से नमी संरक्षण तथा खरपतवार नियंत्रण दोनों होते हैं।

जैविक कीट प्रबंधन

सांस्कृतिक उपाय- * स्वच्छ बाग प्रबंधन * रोगग्रस्त शाखाओं की छंटाई * फसल चक्र एवं मिश्रित खेती

जैविक उपाय

* नीम तेल का छिड़काव * नीम खली का उपयोग
* जैव कीटनाशक

उदाहरण- * बेसिलस थुरिंजिएन्सिस (Bt) * ट्राइकोडर्मा * ब्यूवेरिया बेसियाना

जैविक रोग प्रबंधन

1.रोगमुक्त पौध सामग्री का उपयोग। 2.उचित दूरी पर पौधरोपण। 3.जल निकास की व्यवस्था। 4.जैविक फफूंदनाशकों का उपयोग। 5.ट्राइकोडर्मा आधारित उपचार।

फलदार फसलों में जैविक उत्पादन

आम

* गोबर खाद एवं वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग। * फल मक्खी नियंत्रण हेतु फेरोमोन ट्रैप। * नीम आधारित जैविक कीटनाशक।

अमरूद

* मल्चिंग एवं जैव उर्वरकों का उपयोग। * फल मक्खी नियंत्रण के लिए ट्रैप।

अनार

* जैविक खादों का नियमित प्रयोग।* ड्रिप सिंचाई एवं मल्चिंग।

केला

* वर्मी कम्पोस्ट एवं जैव उर्वरकों का उपयोग। * जैविक रोग नियंत्रण उपाय।

जैविक प्रमाणीकरण (Organic Certification)

व्यावसायिक स्तर पर जैविक फल बेचने के लिए प्रमाणन आवश्यक होता है। भारत में जैविक प्रमाणन का कार्य मुख्यतः राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम (NPOP) के अंतर्गत किया जाता है।

प्रमाणीकरण के लाभ

* उपभोक्ताओं का विश्वास बढ़ता है।
* निर्यात के अवसर मिलते हैं।
* उत्पाद का बेहतर मूल्य प्राप्त होता है।

जैविक फल उत्पादन की चुनौतियाँ

* प्रारंभिक वर्षों में उत्पादन कम हो सकता है।
* जैविक खादों की अधिक आवश्यकता।
* कीट एवं रोग नियंत्रण अपेक्षाकृत कठिन।
* प्रमाणन प्रक्रिया में समय और लागत।

जैविक फल उत्पादन के लाभ

लाभ	विवरण
स्वास्थ्य	रसायन अवशेष मुक्त फल
पर्यावरण	प्रदूषण में कमी
मिट्टी	उर्वरता एवं जैविक सक्रियता में वृद्धि
अर्थव्यवस्था	उच्च बाजार मूल्य
स्थिरता	दीर्घकालीन उत्पादन क्षमता

निष्कर्ष

जैविक फल उत्पादन आधुनिक कृषि की एक टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल प्रणाली है। यह मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने, मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा करने तथा किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जैविक खादों, जैव उर्वरकों और जैविक कीट-रोग प्रबंधन तकनीकों के उचित उपयोग से उच्च गुणवत्ता वाले फल उत्पादित किए जा सकते हैं। भविष्य में बढ़ती जैविक उत्पादों की मांग को देखते हुए जैविक फल उत्पादन किसानों के लिए लाभकारी एवं संभावनाशील क्षेत्र है।

डॉ. अपूर्व पाण्डेय, डॉ. एम. जाटव
डॉ. वाई.वर्मा, डॉ. ए. दुबे, डॉ. एम. स्वामी
पशु विकृती विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

पोस्टमार्टम (नेक्रोप्सी) पशुओं में रोग पहचान का एक महत्वपूर्ण साधन

पशु किसान के जीवन में एक अहम भूमिका निभाते हैं वह किसान की सबसे बड़ी संपत्ति होते हैं और उनकी अचानक मृत्यु किसान के लिए बड़ा आर्थिक और मानसिक नुकसान बन जाती है। कई बार पशु अचानक बीमार होकर मर जाते हैं और किसान यह समझ नहीं पाते कि मृत्यु का वास्तविक कारण क्या था। ऐसी स्थिति में पोस्टमार्टम या नेक्रोप्सी एक अत्यंत महत्वपूर्ण निदानात्मक उपकरण सिद्ध होता है।

पोस्टमार्टम क्या है-पोस्टमार्टम वह वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें मृत पशु के शरीर की बाहरी एवं आंतरिक जांच करके मृत्यु के कारण का पता लगाया जाता है। इससे न केवल रोग की पहचान होती है बल्कि अन्य पशुओं को उसी बीमारी से बचाने में भी सहायता मिलती है।

मनुष्यों में मृत्यु के बाद की जांच को 'ऑटोप्सी' कहा जाता है जबकि पशुओं में इसे 'नेक्रोप्सी या पोस्टमार्टम' कहा जाता है। इसमें पशु के शरीर के विभिन्न अंगों जैसे फेफड़े, हृदय, यकृत, गुर्दे, आंतें तथा मस्तिष्क की जांच की जाती है। इस प्रक्रिया से यह पता लगाया जा सकता है कि मृत्यु किसी संक्रमणए विषाक्तताए पोषण की कमीए दुर्घटना या किसी अन्य बीमारी के कारण हुई है।

पोस्टमार्टम के प्रमुख उद्देश्य

मृत्यु के वास्तविक कारण का पता लगाना- कई बार पशु बिना किसी स्पष्ट लक्षण के मर जाते हैं। पोस्टमार्टम द्वारा यह पता लगाया जा सकता है कि मृत्यु का कारण क्या था। जैसे संक्रमण, जहरीला पदार्थ, फेफड़ों की बीमारी, पेट की समस्या या हृदय रोग।

बीमारी के फैलाव को रोकना-यदि पशु किसी संक्रामक रोग जैसे गलघोटू, एंथ्रेक्स, टीबी या रेबीज से मरा हो तो समय रहते जानकारी मिलने पर अन्य पशुओं को बचाया जा सकता है।

सही उपचार एवं प्रबंधन में सहायता-पोस्टमार्टम रिपोर्ट के आधार पर पशु चिकित्सक अन्य पशुओं के लिए सही दवाए टीकाकरण तथा प्रबंधन संबंधी सलाह देते हैं।

कानूनी एवं बीमा संबंधी कार्य-कई मामलों में पशु बीमा दावा या कानूनी जांच के लिए पोस्टमार्टम आवश्यक होता है। इससे मृत्यु का प्रमाणिक कारण उपलब्ध होता है।

नई बीमारी के संक्रमण की पहचान एवं उसकी रोगजनन को समझना- पोस्टमार्टम के माध्यम से नई या अज्ञात बीमारियों एवं संक्रमणों की पहचान की जा सकती है। साथ ही यह भी समझा जा सकता है कि रोग शरीर में कैसे विकसित हुआए किन अंगों को प्रभावित किया और किस प्रकार उसने पशु की मृत्यु का कारण बना। इससे भविष्य में ऐसे रोगों की रोकथामए नियंत्रण एवं प्रभावी उपचार की रणनीति बनाने में सहायता मिलती है।

पोस्टमार्टम से पहले आवश्यक सावधानियां

* सुनिश्चित कर लें कि पशु मर चुका है।

* पशु के मालिक से पोस्टमार्टम हेतु लिखित सहमति पत्र अवश्य लें * वेट्रो लीगल केस में सक्षम अधिकारी (इंस्पेक्टर/मजिस्ट्रेट) से अनुरोध पत्र प्राप्त करें * शव जो पूरी तरह सड चुका हो तथा जिसके अंग गल चुके हों का पोस्टमार्टम ना करें * एंथ्रेक्स रोग से मृत पशु का पोस्टमार्टम ना करें * पशु अनुसूचित या संकटग्रस्त प्रजाती का है तो इसकी सूचना संबंधित अधिकारीयों को दें * पशु की पहचान से संबंधित सभी जानकारीयाँ जैसे, पशु की प्रजाति, नस्ल, टैग नंबर, कलर, ब्रीड, ऐज, सेक्स, लेंथ, हाइट, सींगों के बीच की दूरी तथा सूचना देने वाले का नामए पताए केस हिस्ट्री, मौत का संभावित समय और पोस्टमार्टम की दिनांक वा समय पोस्टमार्टम रिकॉर्ड फार्म में दर्ज करें * संक्रमण से बचने हेतु एप्रन, ग्लोव्स, कैप और मास्क पहन कर ही पोस्टमार्टम करें * शव के टुकड़ों का पोस्टमार्टम ना करें, पूरा शव उपलब्ध हो तब ही पोस्टमार्टम करें * पोस्टमार्टम हमेशा दिन के उजाले में ही करेंए रात के समय लाइट में पोस्टमार्टम ना करें

पोस्टमार्टम की प्रक्रिया

चिकित्सकीय इतिहास एवं रोग इतिहास का रिकॉर्ड रखना- पोस्टमार्टम की प्रक्रिया शुरू करने से पहले पशु का पूरा इतिहास लेना अत्यंत आवश्यक होता है। इसमें पशु की उम्रए नस्लए आहारए प्रबंधन पद्धतिए टीकाकरण की स्थिति तथा हाल ही में हुई किसी बीमारी या उपचार की जानकारी शामिल होती है। साथ हीए पशु के जीवित रहते समय दिखाई देने वाले क्लिनिकल लक्षणों जैसे बुखारए भूख न लगनाए सांस लेने में कठिनाईए दस्तए खांसी या व्यवहार में परिवर्तन आदि का सही रिकॉर्ड रखना बहुत महत्वपूर्ण होता है। यह जानकारी पोस्टमार्टम के निष्कर्षों को समझने और मृत्यु के वास्तविक कारण तक पहुंचने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

बाहरी जांच- पोस्टमार्टम की प्रक्रिया में सबसे पहले पशु के शरीर की बाहरी जांच की जाती है। इस दौरान पशु के शरीर का आकारए उसकी पोषण स्थिति तथा शरीर की सामान्य बनावट का अवलोकन किया जाता है। साथ ही आंखए नाक एवं मुंह से निकलने वाले किसी भी असामान्य स्त्राव की जांच की जाती हैए क्योंकि यह कई संक्रामक या आंतरिक रोगों का संकेत हो सकता है। त्वचा पर उपस्थित घावए सूजनए चोट या किसी प्रकार के बाहरी परिवर्तन को भी ध्यानपूर्वक देखा जाता है। इसके अतिरिक्त शरीर में गैस भरनाए बदबू आना या सड़न की स्थिति का मूल्यांकन किया जाता हैए जिससे मृत्यु के समय और शव की अवस्था का अनुमान लगाया जा सके।

आंतरिक जांच- इसके बाद शरीर को वैज्ञानिक विधि से खोलकर विभिन्न आंतरिक अंगों की विस्तारपूर्वक जांच की जाती है।

* हृदय का परीक्षण करते समय उसमें रक्तस्राव, सूजन अथवा हृदय की कमजोरी जैसे परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है।

* फेफड़ों की जांच के दौरान निमोनिया, फेफड़ों में पानी भरना तथा संक्रमण के लक्षणों को देखा जाता है।

* यकृत (लीवर) में सूजन- विषाक्तता के संकेत एवं रंग में परिवर्तन का निरीक्षण किया जाता हैए क्योंकि ये कई रोगों और जहरीले पदार्थों के प्रभाव को दर्शाते हैं।

* पाचन तंत्र की जांच में आंतों में कीड़ों की उपस्थिति, अल्सर तथा विषैले पदार्थों के प्रभाव का मूल्यांकन किया जाता है।

* **इसी प्रकार गुर्दों में संक्रमण-** सूजन और उनकी कार्यक्षमता में कमी के संकेतों को देखा जाता है।

* मस्तिष्क की जांच से तंत्रिका संबंधी विकारों तथा रेबीज जैसी गंभीर बीमारियों के लक्षणों की पहचान करने में सहायता मिलती है। इन सभी अंगों की जांच से मृत्यु के वास्तविक कारण का वैज्ञानिक रूप से पता लगाया जा सकता है।

नन्दिनी इन्टरप्राइजेज खाद बीज एवं कीटनाशक

प्रो. रामदीन कुशवाह
84610-11860

हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती हैं

पता : चीनोर रोड, छीमक, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)

04/2025-26

गर्मी का तनाव (हीट स्ट्रेस): घरेलू पशुओं के लिए एक मूक संकट

डॉ. शेख टी. जे., डॉ. अमित कुमार झा
डॉ. राजीव रंजन., डॉ. राजेश रंजन
डॉ. बलेश्वरी दीक्षित, डॉ. कंचन वालवडकर
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश–486001

गर्मी का तनाव, जिसे अंग्रेजी में हीट स्ट्रेस कहते हैं, आज के समय में घरेलू पशुओं के लिए सबसे गंभीर पर्यावरणीय चुनौतियों में से एक बन गया है। बढ़ता वैश्विक तापमान, लू के थपेड़े और बढ़ती आर्द्रता ने पशुओं के स्वास्थ्य और उत्पादन को बुरी तरह प्रभावित किया है। गाय, भैंस, बकरी, भेड़ और सूअर जैसे घरेलू पशु, जो अक्सर खुले बाड़ों या कच्चे शेडों में रहते हैं, इस गर्मी का सबसे अधिक शिकार होते हैं। हीट स्ट्रेस केवल प्यास या पसीने की समस्या नहीं है, बल्कि यह एक जटिल शारीरिक अवस्था है जिसमें पशु का शरीर अपने सामान्य तापमान (लगभग 99 से 101 डिग्री फॉरेनहाइट) को बनाए रखने में असमर्थ हो जाता है।

गर्मी का तनाव क्या है और यह क्यों होता है?

गर्मी का तनाव तब उत्पन्न होता है जब पशु द्वारा उत्पादित गर्मी और पर्यावरण से मिलने वाली गर्मी का योग, उसके शरीर द्वारा इस गर्मी को बाहर निकालने की क्षमता से अधिक हो जाता है। घरेलू पशुओं में पसीने की ग्रंथियाँ बहुत सीमित होती हैं। गाय और भैंस सीमित मात्रा में पसीना बहाती हैं, लेकिन उनका मुख्य ताप विनियमन तंत्र है साँस लेने की दर को बढ़ाना और वाष्पीकरण द्वारा ठंडक प्राप्त करना। जब वातावरण में आर्द्रता अधिक होती है, तो यह वाष्पीकरण बाधित हो जाता है। उच्च तापमान (35 डिग्री सेल्सियस से अधिक) के साथ यदि सापेक्षिक आर्द्रता 60 प्रतिशत से ऊपर हो जाए, तो पशु के लिए ठंडा होना लगभग असंभव हो जाता है। इसके अलावा, तापमान-आर्द्रता सूचकांक को थीआई (टेम्परेचर ह्यूमिडिटी इंडेक्स) कहते हैं। जब थीआई 72 से ऊपर चला जाता है, तो पशु पर हल्का तनाव शुरू हो जाता है, और थीआई के 80 से अधिक होने पर गंभीर हीट स्ट्रेस उत्पन्न होता है।

पशुओं में गर्मी के तनाव के मुख्य लक्षण

गर्मी के तनाव को समय रहते पहचानना बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह अक्सर मूक रहता है। सबसे पहला और सामान्य लक्षण है पशु का सांस लेने की दर का बढ़ जाना। सामान्य अवस्था में गाय प्रति मिनट 10 से 30 बार साँस लेती है, लेकिन हीट स्ट्रेस में यह दर 80 से 120 बार प्रति मिनट तक पहुँच जाती है। पशु मुँह खोलकर, जीभ बाहर निकालकर भारी साँस लेता है और अत्यधिक लार टपकने लगती है। इसके अलावा, पशु की आँखें सुस्त और लाल हो जाती हैं। पशु अपना चारा-पानी छोड़ देता है और भूख में भारी कमी आ जाती है। वह अक्सर अकेले किसी छाया की तलाश में घूमता है या पानी में खड़ा रहना चाहता है। दूध देने वाले पशुओं में अचानक दूध उत्पादन में 10 से 30 प्रतिशत की गिरावट आ जाती है। उन्नत अवस्था में पशु को दस्त, कमजोरी, कांपना, चक्कर आना और यहाँ तक कि गिरकर बेहोश हो जाना जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। यदि तापमान 106 डिग्री फॉरेनहाइट से अधिक हो जाए और समय पर उपचार न मिले, तो बहु-अंग विफलता (मल्टीपल ऑर्गन फेलियर) के कारण पशु की मृत्यु हो सकती है।

गर्मी के तनाव का शारीरिक एवं आर्थिक प्रभाव

गर्मी के तनाव का सबसे गहरा प्रभाव पशुओं के अंतःस्रावी (हार्मोनल) तंत्र पर पड़ता है। जब पशु गर्मी का सामना करता है, तो उसके शरीर में कोर्टिसोल (तनाव हार्मोन) का स्तर बढ़ जाता है, जबकि थायरॉइड और वृद्धि हार्मोन का स्तर घट जाता है। इससे पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो जाती है और वह अन्य बीमारियों (जैसे फुफ्फुस निमोनिया, मास्टाइटिस) की चपेट में आ जाता है। गर्मी के तनाव का प्रजनन पर भी विनाशकारी असर होता है। नर पशुओं (बैल, बकरा) में शुक्राणुओं की गुणवत्ता घट जाती है और वीर्य में असामान्य शुक्राणुओं की संख्या बढ़ जाती है। मादा पशुओं (गाय, भैंस) में मद चक्र अनियमित हो जाता है, डिंबग्रहण (ओव्यूलेशन) विफल हो जाता है और गर्भधारण की दर में भारी कमी आती है। पहले से गर्भित पशु में गर्मी के कारण गर्भपात, समय से पहले प्रसव या कमजोर बच्चा पैदा होने का खतरा बढ़ जाता है। आर्थिक दृष्टिकोण से गर्मी का तनाव भारी नुकसान पहुँचाता है। एक अध्ययन के अनुसार, भारत में गर्मी के कारण दुग्ध उत्पादन में 15 से 40 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। इसके अलावा पशुओं की वृद्धि दर धीमी हो जाती है, मांस की गुणवत्ता घट जाती है और पशु अधिक समय तक खड़े रहने के बजाय लेटने या आराम करने में समय बिताते हैं, जिससे उत्पादकता घटती है।

गर्मी के तनाव से बचाव के उपाय (प्रबंधन रणनीति)

गर्मी के तनाव से बचाव के लिए पशुपालकों को कई स्तरों पर कार्य करना होता है। सबसे पहली और महत्वपूर्ण आवश्यकता है पशुशाला का उचित डिजाइन। पशुओं के रहने के स्थान की छतें गर्मी रोधी सामग्री, जैसे टाइल्स, सफेद रंग की छत या घास-फूस की बनी होनी चाहिए। छत पर सफेद चूना लगाना (व्हाइटवॉश) और टाट या चटाई लगाने से तापमान 5 से 6 डिग्री सेल्सियस कम किया जा सकता है। पशुशाला में पूर्व से पश्चिम दिशा में लंबी रिज लाइन और अधिक संख्या में खिड़कियाँ या जाली होनी चाहिए, जिससे हवा का आवागमन होता रहे। गर्मियों में कूलर, पंखे और फॉगर (महीन पानी के छिड़काव) का उपयोग बहुत प्रभावी है। दिन में सबसे गर्म समय (12 से 4 बजे) में पशुओं पर हर आधे या एक घंटे में 10-15 मिनट के लिए पानी का छिड़काव करना चाहिए। पशुओं के लिए पर्याप्त मात्रा में साफ और ठंडा पीने का पानी हर समय उपलब्ध रहना चाहिए। एक वयस्क गाय को गर्मी के दिनों में 150 से 200 लीटर पानी प्रतिदिन की आवश्यकता होती है। पानी की टंकियों को छाया में रखना चाहिए और दिन-रात पानी बदलते रहना चाहिए।

आहार और समय प्रबंधन

गर्मी के तनाव में पशुओं का आहार प्रबंधन भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। जब पशु कम चारा खाते हैं, तो उन्हें अधिक ऊर्जा और खनिज युक्त आहार देना चाहिए। हरे चारे का उपयोग बढ़ा देना चाहिए क्योंकि उसमें नमी अधिक होती है। सूखे चारे और सांद्रित खाद्य पदार्थों को दिन के ठंडे समय, जैसे शाम को या रात में खिलाना चाहिए। दिन में दूध दुहने का समय भी सुबह जल्दी या शाम को देर से करना चाहिए। पशुओं को चराने के लिए दिन के सबसे गर्म समय में बाहर नहीं निकालना चाहिए; बल्कि सुबह 7 बजे से पहले और शाम 6 बजे के बाद चरागाह पर भेजना उचित होता है। आहार में विटामिन-सी, विटामिन-ई, सेलेनियम, पोटेशियम और सोडियम बाइकार्बोनेट का समावेश करना चाहिए, क्योंकि ये तत्व शरीर के जल और इलेक्ट्रोलाइट संतुलन को बनाए रखने में सहायता करते हैं। पशु को ठंडा रखने के लिए उसके शरीर पर गीला कपड़ा लपेटना या समय-समय पर पंखे के नीचे खड़ा करना भी लाभदायक होता है।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

डॉ. राम कुमार राय, डॉ. सी.एस. पाण्डेय
उद्यानिकी विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर (म. प्र.) 488001

डॉ. स्वाति शुक्ला इंद्रिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ. ग.)

लसोड़ा की खेती- मृदा, जलवायु, उन्नत किस्में एवं कर्षण क्रियाए

परिचयः लसोड़ा (Cordia myxa L.) एक महत्वपूर्ण अल्प-उपयोगित (nderutilized) फल वृक्ष है, जो परिवार Boraginaceae का सदस्य है। यह भारत के शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। इसके फलों का उपयोग अचार, सब्जी, चटनी तथा विभिन्न आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण में किया जाता है। लसोड़ा एक मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष है, जिसकी ऊँचाई सामान्यतः 8-12 मीटर तक होती है। इसके फल गोलाकार, चिकने तथा पकने पर पीले-भूरे रंग के हो जाते हैं। कच्चे फलों में चिपचिपा गूदा पाया जाता है, जो अचार बनाने के लिए अत्यंत उपयुक्त माना जाता है। यह वृक्ष सूखा, उच्च तापमान तथा कम उर्वरता वाली भूमि को सहन करने की क्षमता रखता है, इसलिए जलवायु परिवर्तन एवं शुष्क क्षेत्रों की बागवानी में इसका विशेष महत्व है।

उत्पत्ति -लसोड़ा की उत्पत्ति का केन्द्र दक्षिण-पश्चिम एशिया माना जाता है। इसका मूल स्थान भारत, पाकिस्तान ईरान तथा आसपास के क्षेत्रों को माना जाता है। बाद में इसका प्रसार दक्षिण एशिया, पश्चिम एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका के विभिन्न देशों में हुआ। भारत में यह प्राकृतिक रूप से विशेषकर राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात एवं हरियाणा के शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है।

उपयुक्त मृदा- लसोड़ा की खेती के लिए बलुई दोमट से लेकर मध्यम काली मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। इसकी सफल खेती हेतु अच्छी जल निकास वाली भूमि सर्वोत्तम रहती है। यह फसल pH 6.5 से 8.5 तक की मिट्टी में अच्छी वृद्धि एवं उत्पादन देती है तथा क्षारीय एवं कम उर्वरता वाली भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

उपयुक्त जलवायु -लसोड़ा उष्ण एवं अर्ध-शुष्क जलवायु का महत्वपूर्ण फल वृक्ष है, जिसकी वृद्धि एवं फलन के लिए 20 से 40°C तापमान उपयुक्त माना जाता है। यह पौधा 45°C तक के उच्च तापमान को भी सहन करने की क्षमता रखता है। लसोड़ा की सफल खेती 500 से 800 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में की जा सकती है तथा इसकी उत्कृष्ट सूखा-सहनशीलता के कारण यह शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के लिए एक आदर्श फल फसल मानी जाती है।

उन्नत किस्में

मरु समृद्धिः लसोड़ा की एक उन्नत किस्म है, जिसे केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर द्वारा विकसित किया गया है। इस किस्म के फल आकार में बड़े होते हैं तथा इसकी उत्पादकता अधिक होती है। इसके फल अचार निर्माण हेतु विशेष रूप से उपयुक्त माने जाते हैं।

मरु गौरवः एक अन्य उन्नत किस्म है, जो नियमित फलन एवं उत्कृष्ट गुणवत्ता वाले फलों के लिए जानी जाती है। इसके फलों की बाजार में अच्छी मांग होने के कारण यह किसानों के लिए लाभकारी किस्म मानी जाती है। इसके अतिरिक्त, राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में लसोड़ा के कई उत्कृष्ट स्थानीय जर्मप्लाज्म उपलब्ध हैं। इन स्थानीय प्रकारों में बड़े फल, कम गुठली तथा अधिक गूदे वाले पौधों का चयन किया जाता है, जिससे उनकी व्यावसायिक एवं प्रसंस्करण उपयोगिता बढ़ जाती है।

रोपण

गड्ढे का आकारः 1 × 1 × 1 मीटर

रोपण समयः वर्षा ऋतु (जुलाई-अगस्त) सर्वोत्तम।

दूरीः 8 × 8 मीटर (156 पौध संख्या प्रति हेक्टेयर), 10 म 10 मीटर (वर्षा आधारित क्षेत्रों में)

खाद एवं उर्वरक

प्रति पौधा प्रति वर्षः

गोबर की खादः 20-30 किग्रा, **नाइट्रोजनः** 500 ग्राम

फॉस्फोरसः 250 ग्राम, **पोटाशः** 250 ग्राम

खाद को वर्षा प्रारंभ होने से पहले देना लाभकारी होता है।

सिंचाई * वर्षा आधारित क्षेत्रों में सामान्यतः अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता कम होती है।

* रोपण के बाद प्रारंभिक 2-3 वर्षों तक नियमित सिंचाई करनी चाहिए।

* गर्मियों में 15-20 दिन के अंतराल पर सिंचाई अधिक लाभदायक है।

कर्षण क्रियाएँ

खरपतवार नियंत्रण- * वर्ष में 2-3 बार निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। * पौधों के चारों ओर स्वच्छ कटोरा (basin) बनाए रखें।

मल्चिंग * सूखी घास, फसल अवशेष या पॉली मल्च का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि जैविक मल्च का विघटन जल्दी होता है और आगे चलकर खाद का काम करती है। * नमी संरक्षण एवं खरपतवार नियंत्रण में सहायक।

सधाई एवं छंटाई * प्रारंभिक वर्षों में मजबूत ढांचा विकसित करें। * सूखी, रोगग्रस्त एवं आपस में रगड़ खाने वाली शाखाओं को हटाएँ। * फल तुड़ाई के बाद हल्की छंटाई करें।

फलन एवं उपज

* बीजू पौधे 5-7 वर्ष में फलन देते है, जबकि कलमी पौधे 3-4 वर्ष में ही फलना प्रारंभ कर देते है। * पूर्ण विकसित वृक्ष से 50-100 किग्रा या उससे अधिक फल प्राप्त हो सकते हैं। बुंदेलखंड (उ.प्र.-म.प्र.) क्षेत्र हेतु विशेष अनुशंसा * लसोड़ा सूखा सहनशील होने के कारण बुंदेलखंड क्षेत्र के लिए अत्यंत उपयुक्त है। * खेत की मेड़ों, बंजर भूमि तथा एग्रोफॉरेस्ट्री मॉडल में लगाया जा सकता है। * ड्रिप सिंचाई एवं जैविक मल्चिंग से प्रारंभिक वृद्धि में सुधार होता है। * उच्च गुणवत्ता वाले स्थानीय जर्मप्लाज्म का चयन कर क्षेत्रीय किस्म विकास पर कार्य किया जा सकता है।

01/2025-26

बछड़ों में निमोनिया, कारण एवं रोकथाम

रवि सिकरोडिया, दलजीत छाबड़ा,
जोयसी जोगी, राखी गांगिल
राकेश शारदा पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, महू (म.प्र.)

बछड़ों में निमोनिया 'Pneumonia' एक महत्वपूर्ण एवं गंभीर श्वसन तंत्र संबंधी रोग है, जो मुख्यतः जन्म से छह माह तक की आयु के बछड़ों में अधिक पाया जाता है। यह रोग फेफड़ों तथा श्वसन मार्ग 'Respiratory Tract' में सूजन और संक्रमण उत्पन्न करता है, जिसके कारण बछड़ों को सांस लेने में कठिनाई होती है। डेयरी फार्मों में यह रोग बोवाइन रेस्पिरेटरी डिजीज कॉम्प्लेक्स (Bovine Respiratory Disease Complex) का प्रमुख घटक माना जाता है और विश्वभर में बछड़ों की बीमारी तथा मृत्यु के प्रमुख कारणों में से एक है। निमोनिया से प्रभावित बछड़ों में न केवल मृत्यु का खतरा बढ़ जाता है, बल्कि उनकी वृद्धि दर, भविष्य की दुग्ध उत्पादन क्षमता तथा प्रजनन क्षमता भी प्रभावित हो सकती है, जिससे पशुपालकों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

निमोनिया के प्रमुख कारण: बछड़ों में निमोनिया के विकास में अनेक कारक भूमिका निभाते हैं। सामान्यतः स्वस्थ श्वसन तंत्र में मौजूद प्राकृतिक सुरक्षा तंत्र रोगजनकों को फेफड़ों तक पहुंचने से रोकता है, लेकिन जब बछड़ा तनाव, कुपोषण, ठंड, नमी, भीड़भाड़ या अन्य रोगों से प्रभावित होता है, तब उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो जाती है। ऐसी स्थिति में जीवाणु, विषाणु एवं अन्य सूक्ष्मजीव आसानी से श्वसन तंत्र में प्रवेश कर संक्रमण उत्पन्न कर देते हैं। प्रमुख जीवाणु कारकों में Pasteurella multocida, Mannheimia haemolytica, Histophilus somni तथा Mycoplasma bovis शामिल हैं, जबकि प्रमुख विषाणुओं में बोवाइन हर्पीस वायरस-1 (IBR), बोवाइन रेस्पिरेटरी सिंशियल वायरस (BRSV), पैराइनफ्लुएंजा-3 (PI&3) तथा बोवाइन वायरल डायरिया वायरस 'BVDV' महत्वपूर्ण हैं। अधिकांश मामलों में वायरस प्रारंभिक संक्रमण उत्पन्न करते हैं और बाद में जीवाणु द्वितीयक संक्रमण के रूप में रोग को गंभीर बना देते हैं।

नवजात बछड़ों में खीस (Colostrum) का पर्याप्त सेवन न होना निमोनिया का एक प्रमुख जोखिम कारक है। जन्म के पहले 4-6 घंटों में पर्याप्त मात्रा में खीस न मिलने पर बछड़ों को मातृ प्रतिरक्षी 'Maternal Antibodies' नहीं मिल पाते, जिससे उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर रह जाती है। इसके अतिरिक्त पशुशाला में खराब वेंटिलेशन, अत्यधिक नमी, धूल, अमोनिया गैस का जमाव, अचानक तापमान में परिवर्तन, लंबे समय तक परिवहन, समूह परिवर्तन तथा दूध छुड़ाने जैसी परिस्थितियाँ भी रोग के प्रकोप को बढ़ाती हैं। वर्षा और सर्दी के मौसम में निमोनिया की घटनाएं अपेक्षाकृत अधिक देखी जाती हैं।

रोग के लक्षण: रोग के प्रारंभिक लक्षणों में हल्का बुखार, सुस्ती, भूख में कमी तथा नाक से पानी आना शामिल हो सकते हैं। जैसे-जैसे संक्रमण बढ़ता है, बछड़े में तेज बुखार (40-41°C), लगातार खांसी, नाक से श्लेष्मा या

मवादयुक्त स्राव, आंखों से पानी आना, तेज एवं कठिन श्वसन, मुंह खोलकर सांस लेना तथा कमजोरी जैसे लक्षण दिखाई देने लगते हैं। गंभीर मामलों में फेफड़ों की कार्यक्षमता कम हो जाती है और बछड़ा ऑक्सीजन की कमी से प्रभावित हो सकता है। यदि समय पर उपचार नहीं किया जाए, तो संक्रमण स्थायी फेफड़ों की क्षति, वृद्धि अवरोध तथा मृत्यु का कारण बन सकता है।

रोकथाम के उपाय: बछड़ों में निमोनिया की रोकथाम उपचार की अपेक्षा अधिक प्रभावी और आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होती है। रोग की रोकथाम का सबसे महत्वपूर्ण उपाय जन्म के तुरंत बाद बछड़े को पर्याप्त मात्रा में उच्च गुणवत्ता वाली खीस 'Colostrum' पिलाना है। खीस में प्रचुर मात्रा में प्रतिरक्षी 'Immunoglobulins' होते हैं, जो नवजात बछड़े को विभिन्न संक्रामक रोगों से बचाने में सहायता करते हैं। सामान्यतः जन्म के पहले 2-4 घंटों के भीतर बछड़े को उसके शरीर के भार के लगभग 10 प्रतिशत के बराबर खीस पिलानी चाहिए। पर्याप्त खीस प्राप्त करने वाले बछड़ों में रोग प्रतिरोधक क्षमता बेहतर विकसित होती है और उनमें निमोनिया सहित अन्य संक्रामक रोगों की संभावना कम हो जाती है।

बछड़ों के आवास का उचित प्रबंधन भी निमोनिया नियंत्रण में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पशुशाला को साफ, सूखा, हवादार एवं धूल-मुक्त रखना चाहिए। उचित वेंटिलेशन से हानिकारक गैसों, विशेषकर अमोनिया, की मात्रा कम होती है तथा ताजी हवा का संचार बना रहता है, जिससे श्वसन रोगों का जोखिम घटता है। बछड़ों को ठंडी हवाओं, वर्षा तथा अत्यधिक नमी से बचाने के लिए उपयुक्त बिछावन 'Bedding' और आश्रय की व्यवस्था करनी चाहिए। सर्दियों में विशेष रूप से नवजात बछड़ों को ठंड से बचाने हेतु अतिरिक्त सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि तापमान में अत्यधिक गिरावट उनके शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित कर सकती है। भीड़भाड़ भी निमोनिया के प्रसार का एक प्रमुख कारण है। अधिक संख्या में बछड़ों को सीमित स्थान में रखने से रोगजनकों का प्रसार तेजी से होता है और संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। इसलिए प्रत्येक बछड़े के लिए पर्याप्त स्थान उपलब्ध कराना आवश्यक है। यदि किसी बछड़े में खांसी, बुखार, नाक से स्राव या सांस लेने में कठिनाई जैसे लक्षण दिखाई दें, तो उसे तुरंत अन्य स्वस्थ बछड़ों से अलग कर देना चाहिए। इससे संक्रमण के प्रसार को रोका जा सकता है और प्रभावित बछड़े का समय पर उपचार संभव हो पाता है।

निष्कर्ष: बछड़ों में निमोनिया एक गंभीर लेकिन रोकथाम योग्य रोग है। उचित प्रबंधन, स्वच्छ वातावरण, संतुलित पोषण तथा समय पर चिकित्सकीय हस्तक्षेप द्वारा इस रोग से होने वाली आर्थिक हानि और बछड़ों की मृत्यु दर को कम किया जा सकता है। स्वस्थ बछड़े ही भविष्य में उत्पादक पशु बनते हैं, इसलिए उनके स्वास्थ्य की उचित देखभाल पशुपालकों की प्राथमिकता होनी चाहिए।

01/2025-26

डॉ. लोकेश यादव एवं एस. के. तिवारी
सहायक प्राध्यापक, कृषि विज्ञान संस्थान,
सेज विश्वविद्यालय, इंदौर (मध्य प्रदेश)

सहजन : पोषण, स्वास्थ्य एवं सतत कृषि का 'ग्रीन गोल्ड'

सहजन (Moringa oleifera) को विश्वभर में "मिरेकल ट्री" अथवा "ग्रीन गोल्ड" के नाम से जाना जाता है, क्योंकि यह पोषण, औषधीय गुणों तथा पर्यावरणीय लाभों का अद्वितीय संगम है। भारतीय उपमहाद्वीप में उत्पन्न यह बहुउपयोगी वृक्ष आज वैश्विक स्तर पर सुपरफूड के रूप में अपनी पहचान स्थापित कर चुका है। इसकी पत्तियाँ, फलियाँ, फूल एवं बीज उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, आवश्यक अमीनो अम्ल, विटामिन A, C एवं E, कैल्शियम, आयरन, पोटैशियम तथा शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट्स से भरपूर होते हैं, जो मानव स्वास्थ्य एवं पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

कुसुमित

फली

मोरिंगा केवल एक पौष्टिक सब्जी नहीं, बल्कि एक प्रभावी कार्यात्मक खाद्य (Functional Food) एवं प्राकृतिक स्वास्थ्य संवर्धक भी है। इसमें उपस्थित फ्लेवोनॉयड्स, फिनोलिक यौगिक, क्रेरसेटिन, क्लोरोजेनिक अम्ल तथा आइसोथायोसायनेट्स जैसे जैव-सक्रिय तत्व इसे सूजनरोधी, जीवाणुरोधी, एंटीऑक्सीडेंट, मधुमेहरोधी एवं हृदय-स्वास्थ्यवर्धक गुण प्रदान करते हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह प्रमाणित हुआ है कि मोरिंगा प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने, रक्त शर्करा एवं रक्तचाप को नियंत्रित करने तथा ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

कृषि दृष्टि से मोरिंगा एक अत्यंत लाभकारी एवं जलवायु-अनुकूल फसल है। इसकी सूखा-सहिष्णु प्रकृति, कम जल आवश्यकता तथा विभिन्न प्रकार की मृदाओं में अनुकूलन क्षमता इसे शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के किसानों के लिए आयवर्धन का उत्कृष्ट विकल्प बनाती है। उन्नत किस्मों एवं वैज्ञानिक प्रबंधन के माध्यम से प्रति हेक्टेयर 50-100 टन तक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है, जिससे किसानों को उच्च आर्थिक लाभ प्राप्त होता है।

मोरिंगा का महत्व केवल पोषण एवं स्वास्थ्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। इसकी गहरी जड़ प्रणाली मृदा अपरदन को रोकती है, भूमि की उर्वरता में सुधार करती है तथा कार्बन अवशोषण के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में सहायता करती है। यही कारण है कि इसे सतत कृषि, वनीकरण एवं भूमि पुनर्स्थापन कार्यक्रमों में विशेष महत्व दिया जा रहा है।

वर्तमान समय में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, जलवायु परिवर्तन तथा जीवनशैली जनित रोगों जैसी वैश्विक चुनौतियों के समाधान हेतु मोरिंगा एक संभावनाशील प्राकृतिक संसाधन के रूप में उभर रहा है। इसके पोषणात्मक, औषधीय एवं आर्थिक गुणों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि सहजन केवल एक फसल नहीं, बल्कि स्वस्थ समाज, समृद्ध किसान एवं टिकाऊ कृषि प्रणाली की दिशा में एक सशक्त कदम है। भविष्य में वैज्ञानिक अनुसंधान, मूल्य संवर्धन एवं प्रभावी विपणन के माध्यम से मोरिंगा भारत की कृषि अर्थव्यवस्था एवं पोषण सुरक्षा को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

01/2025-26

भारत का काला सोना–भैंस: संरक्षण एवं संवर्धन की आवश्यकता

✍ **डॉ. एस. एस. माहौर** (प्राध्यापक)
पशु प्रजनन एवं प्रसूति रोग विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु पालन महाविद्यालय, महू (म.प्र.)

भारत विश्व का सर्वाधिक दुग्ध उत्पादक देश है और इस उपलब्धि में भैंसों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारतीय भैंसों को प्रायः "काला सोना" (Black Gold of India) कहा जाता है क्योंकि वे देश के कुल दुग्ध उत्पादन में लगभग आधे से अधिक का योगदान देती हैं तथा उच्च गुणवत्ता वाले दूध का प्रमुख स्रोत हैं। मुर्रा, जाफराबादी, मेहसाना, भदावरी और निली-रावी जैसी भारतीय भैंस नस्लें विश्वभर में अपनी उत्पादक क्षमता के लिए प्रसिद्ध हैं।

यद्यपि भैंस भारतीय दुग्ध अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, फिर भी पशुपालन विकास कार्यक्रमों, अनुसंधान निवेश तथा जन-जागरूकता में इसे अपेक्षाकृत कम महत्व प्राप्त हुआ है। वर्तमान परिस्थितियों में भैंसों के संरक्षण, संवर्धन एवं वैज्ञानिक प्रबंधन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में भैंस का योगदान

भारत में भैंस केवल एक दुग्ध पशु नहीं बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार है। सीमांत एवं लघु कृषकों के लिए भैंस नियमित आय का प्रमुख स्रोत है। भैंसों की उच्च दुग्ध वसा के कारण दूध, घी, मक्खन, पनीर, खोया एवं मिठाई उद्योग को महत्वपूर्ण कच्चा माल प्राप्त होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक परिवारों की आर्थिक स्थिति सुधारने में भैंस पालन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कम संख्या में पशु रखकर भी किसान अपेक्षाकृत अधिक आय अर्जित कर सकते हैं।

भैंस के दूध की श्रेष्ठता

भैंस के दूध में सामान्यतः वसा (Fat), प्रोटीन, कैल्शियम एवं फॉस्फोरस, कुल ठोस पदार्थ (Total Solids) अधिक होते हैं। भैंस के दूध का स्वाद एवं गाढ़ापन उपभोक्ताओं द्वारा अधिक पसंद किया जाता है। घी एवं दुग्ध उत्पादों की रिकवरी अधिक प्राप्त होती है। भारत में पाली जाने वाली अधिकांश भैंसों का दूध A2 प्रकार के बीटा-केसिन प्रोटीन से युक्त माना जाता है, जिसके कारण स्वास्थ्य-जागरूक उपभोक्ताओं में इसकी मांग निरंतर बढ़ रही है।

रोग प्रतिरोधक क्षमता

भैंसों को सामान्यतः कठोर पर्यावरणीय परिस्थितियों के प्रति अधिक सहनशील माना जाता है। अनेक संक्रामक एवं चयापचय संबंधी रोगों के प्रति उनकी प्रतिरोधक क्षमता अपेक्षाकृत बेहतर देखी गई है। भैंसें निम्न गुणवत्ता वाले चारे का भी प्रभावी उपयोग कर सकती हैं, जिससे सीमित संसाधनों वाले किसानों के लिए उनका पालन लाभकारी सिद्ध होता है।

भैंस जनसंख्या संरक्षण की आवश्यकता

विगत वर्षों में दुग्ध उत्पादन प्रणालियों में तीव्र परिवर्तन, नगरीकरण, चरागाहों की कमी तथा विभिन्न आर्थिक कारणों से भैंस पालन अनेक क्षेत्रों में चुनौतियों का सामना कर रहा है।

यदि भैंसों की संख्या में निरंतर कमी आती है तो इसके निम्नलिखित परिणाम हो सकते हैं-

1. उच्च गुणवत्ता वाले भैंस दूध की उपलब्धता में कमी।
2. घी, पनीर एवं खोया जैसे दुग्ध उत्पादों की कीमतों में वृद्धि।
3. किसानों की आय पर प्रतिकूल प्रभाव।
4. देशी भैंस नस्लों की आनुवंशिक विविधता का ह्रास।
5. दुग्ध उद्योग के लिए गुणवत्तापूर्ण कच्चे माल की कमी।

अतः भैंसों की संख्या एवं उत्पादकता दोनों को बनाए रखना राष्ट्रीय दुग्ध सुरक्षा के लिए आवश्यक है।

भैंस का दूध गाय के दूध की तुलना में लगभग 50-80% अधिक वसा, 15-25% अधिक प्रोटीन, 30-60% अधिक कैल्शियम तथा अधिक कुल ठोस पदार्थ रखता है, जिसके कारण डेयरी प्रसंस्करण उद्योग में इसका विशेष महत्व है। इसी कारण भैंस को भारत की दुग्ध अर्थव्यवस्था का "Black Gold" (काला सोना) कहा जाता है।इसकी उच्च दुग्ध गुणवत्ता, बेहतर वसा एवं प्रोटीन स्तर, रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा किसानों की आय बढ़ाने की क्षमता इसे अत्यंत मूल्यवान पशुधन बनाती है। भारत की दुग्ध अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने तथा ग्रामीण समृद्धि को बढ़ावा देने के लिए भैंसों के संरक्षण, संवर्धन और वैज्ञानिक प्रबंधन को राष्ट्रीय प्राथमिकता बनाया जाना चाहिए।

समय की मांग है कि नीति निर्माता, पशु वैज्ञानिक, डेयरी उद्योग एवं किसान मिलकर भैंस पालन को प्रोत्साहित करें ताकि यह अमूल्य पशुधन आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रह सके और देश की आर्थिक प्रगति में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता रहे।

12/2025-26

विंध्य-रीवा के वनाचल कुशमी क्षेत्र में कृषि की चिंता एवं सूखे की आशंका

✍ **सोनू कुमार कोरी** उच्च माध्यामिक शिक्षक, शा. उच्च. माध्य. विद्यालय जूरी वि. खंड कुसमी जिला सीधी (म.प्र.)

इस साल बाजार में जितने जामुन दिख रहे हैं, उतने मैंने पिछले तीन दशकों में कभी नहीं देखे। जामुनों की जैसे बाढ़ आ गई है। जिन पेड़ों पर पिछले साल गिने-चुने फल आए थे, वे पेड़ भी इस बार जामुनों से लदे हैं। जिन पेड़ों पर फल आए थे, वहाँ तो जामुनों का ढेर लग गया है।

ये आखिर हो क्या रहा है?

* हमारी दादी बस यही कहती थीं कि "जिस गर्मी में जामुनों का ऐसा ढेर लगता है, उस साल सूखा पड़ता है"।
* दादी का ये पारंपरिक ज्ञान वनस्पति विज्ञान के हिसाब से बिल्कुल सही और सटीक है। विज्ञान में इस दिलचस्प और उतनी ही चौंकाने वाली प्रक्रिया को "मास्टिंग" (Masting) या "स्ट्रेस फ्रूटिंग" (Stress Fruiting) कहा जाता है।
* पेड़ों द्वारा खुद को झोंककर ज्यादा से ज्यादा फल देने की इस आखिरी कोशिश को कभी-कभी "सुसाइड फ्रूटिंग" (Suicide Fruiting) या "बंपर क्रॉप" भी कहते हैं।

ये आखिर है क्या और इसके पीछे का विज्ञान क्या कहता है, इसे आसान भाषा में समझते हैं-

1. 'सर्वाइवल इंस्टिंक्ट' - अस्तित्व की लड़ाई

जैसा प्रोफेसर मैडम ने बताया, ये प्रकृति का "अपने जीन आगे बढ़ाने का" नियम है। जब पेड़ को जमीन के नीचे पानी की कमी महसूस होने लगती है या मौसम में बड़े बदलावों के संकेत मिलते हैं, तो पेड़ "डिफेंस मोड" में चला जाता है।

पेड़ को आभास हो जाता है कि शायद वो आगे जी न पाए। ऐसे समय में खुद को बचाने के बजाय, अपनी प्रजाति को धरती पर बनाए रखने के लिए पेड़ अपनी पूरी ऊर्जा "बीज" यानी फल बनाने में लगा देता है।

2. नई पत्तियों-डालियों पर रोक

ऐसे साल में पेड़ नई पत्तियाँ फूटना या डालियाँ बढ़ाना पूरी तरह रोक देता है। क्योंकि नई पत्तियों को जिंदा रखने के लिए ज्यादा पानी और पोषण चाहिए। पेड़ वो ऊर्जा बचाकर सिर्फ और सिर्फ जामुन का उत्पादन बढ़ाने पर लगाता है। इसी वजह से पिछले साल जिन पेड़ों पर थोड़े-बहुत फल थे, वे भी इस साल फलों से भर गए हैं।

3. दादी की भविष्यवाणी और विज्ञान-सूखे से संबंध

* दादी का अवलोकन बिल्कुल सटीक है, क्योंकि पेड़-पौधे मौसम में बदलाव को इंसानों से कहीं पहले और ज्यादा संवेदनशीलता से पहचानते हैं।
* जामुन की जड़ "तप जड़" (Taproot) होती है, जो जमीन की काफी गहराई तक जाती है।
* जब भूजल का स्तर बहुत ज्यादा नीचे चला जाता है, तभी इन जड़ों को तनाव (Water Stress) महसूस होता है।
* यही पानी का तनाव आने वाले सूखे या कड़ी गर्मी का संकेत होता है।
* इसलिए, जिस साल गर्मी में जामुनों का ऐसा अभूतपूर्व ढेर लगता है, वो प्रकृति की तरफ से आने वाले सूखे समय की चेतावनी होती है।

संक्षेप में कहें तो...

जामुन का पेड़ आत्महत्या नहीं कर रहा, बल्कि अपना बलिदान देकर अपनी अगली पीढ़ी यानी बीजों को जन्म देने की कोशिश कर रहा है। प्रकृति का ये चक्र वाकई हैरान करने वाला है। दादी का पीढ़ियों पुराना अवलोकन और विज्ञान के सिद्धांत यहाँ बिल्कुल मिल जाते हैं। इस साल जामुन का स्वाद जरूर लें, लेकिन प्रकृति के इस "सूखे" के संकेत को गंभीरता से लें और पानी व संसाधनों का इस्तेमाल सोच-समझकर करें, यही इससे समझ आता है।

अक्षिता एग्रो

राघवेन्द्र सिंह
8959728253
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता
हमारे यहां सभी प्रकार के बीज एवं कीटनाशक दवाएं एवं खरपतवार नाशक दवाएं और अधिक उपज की दवाएं उचित दामों पर मिलती हैं
पता : अरैया रोड, आंतरी, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
01/205-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

गुलशन सैयम, डॉ. नवनीत मौर्य,
योगेश मेश्राम, युवराज परते
सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट (म.प्र.)

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना भारत सरकार द्वारा 19 फरवरी 2015 को शुरू की गई थी। इसका उद्देश्य किसानों को उनकी मिट्टी की पोषण स्थिति की जानकारी देना, उर्वरकों का सही उपयोग सुनिश्चित करना और कृषि उत्पादकता को बढ़ाना है।

इसमें 12 प्रमुख पोषक तत्वों आधार पर मृदा स्वास्थ्य या फसल उपज में सुधार के लिए उर्वरको के जैविक अदानो एवं अन्य उपचार की सिफारिश शामिल है। ये कार्ड प्रत्येक किसान को उसकी भूमि के आधार पर जारी किया जाता है और समय के साथ होने वाले बदलाव पर नज़र रखने के लिए प्रत्येक 2 साल में परीक्षण कराने की सलाह दी जाती है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड क्या प्रदान करता है ?

मृदा स्थिति

यह कार्ड 12 मानदंड पर आदर्श मृदा की स्थिति की रिपोर्ट जिसमें दीर्घ पोषक तत्व (N, P, K, S) सूक्ष्म पोषक तत्व (Zn, Fe, Cu, Mn, Bo) तथा अन्य जैसे PH, कार्बनिक, कार्बन, या विद्युत चालकता शामिल है।

सिफारिश

मृदा स्वास्थ्य में सुधार के लिए आवश्यक उर्वरक, जैव उर्वरक या जैविक उर्वरक के लिए उचित मात्रा के अनुसार मार्गदर्शन देना है।

सुधार सलाह

मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने और समय के साथ उसकी गुणवत्ता बनाए रखने हेतु मिट्टी सुधार के उपाय बताना।

किस प्रकार कार्य करता है ?

मिट्टी का नमूना संग्रह

खेत के विभिन्न स्थानों से नमुने के लिए जाते हैं उसके बाद में उन सभी को मिलाकर एक नमुना तैयार किया जाता है। उसके बाद सरकार द्वारा निर्धारित केंद्र पर मिट्टी के नमूने जमा कर सकते हैं।

मृदा परीक्षण

पोषक तत्व की स्थिति या अन्य विशिष्टताओं का निर्धारण करने के लिए नमुनो का परीक्षा प्रयोगशाला में किया जाता है।

कार्ड जारी करना

परीक्षण के परिणाम के आधार पर मृदा स्वास्थ्य कार्ड तैयार किया जाता है जो प्रायः ऑनलाइन माध्यम से प्रमाणित होता है।

आवधिक अद्यतन

इस कार्ड को 2-3 साल की वैधता के लिए जारी किया जाता है, जिसे समय-समय पर मापा जाता है, जानकारी दी जाती है, जिससे मिट्टी में होने वाले परिवर्तन पर नजर रखी जा सके।

किसानो के लिए लाभ

बेहतर फसल उपज

पोषक तत्वों की सही मात्रा का उपयोग।

सही निर्णय लेना

मिट्टी की जाँच से किसान ये निर्णय ले सकता है कि कौन सी फसल लेनी है, उर्वरक की कितनी मात्रा का उपयोग करना है।

मृदा संरक्षण

ये योजना टिकाऊ प्रबंधन के लिए बढ़ावा देती है, मृदा गुणवत्ता में सुधार करती है।

01/2025-26

जुलाई में खरपतवार एवं कीट प्रबंधन: फसल उत्पादन बढ़ाने का संपूर्ण मार्गदर्शन

✍ **नरेन्द्र पाटीदार** एमडीओ (मैनकाइंड एग्रीटेक), दलौदा, मंदसौर (म.प्र.)

प्रस्तावना: खरीफ की फसलों के लिए जुलाई का महीना बेहद अहम होता है। इस समय खेतों में नमी और हरियाली चरम पर होती है, लेकिन यही वह समय है जब खरपतवार और कीट-पतंगे भी सबसे अधिक सक्रिय हो जाते हैं। अगर इस महीने सही प्रबंधन किया जाए, तो फसल की पैदावार में कई गुना बढ़ोतरी हो सकती है। मैंकाइंड एग्रीटेक किसानों के लिए कई प्रभावी और नवीन उत्पाद लेकर आया है, जिनकी मदद से फसलों को खरपतवारों और कीटों से बचाना आसान हो गया है। आइए जानते हैं कि जुलाई में कैसे करें खरपतवार और कीटों का प्रभावी प्रबंधन और किन मैंकाइंड एग्रीटेक उत्पादों का उपयोग करें।

खरपतवार: फसल का सबसे बड़ा दुश्मन-खरपतवारों को फसलों का "साइलेंट किलर" कहा जाए तो गलत नहीं होगा। ये अनचाहे पौधे मिट्टी से पोषक तत्व, पानी, धूप और जगह को अपने में झोंक लेते हैं, जिससे मुख्य फसल कमजोर पड़ जाती है। भारत में अकेले खरपतवारों के कारण किसानों को हर साल लगभग 91,000 करोड़ रु. का नुकसान होता है। धान की फसल में 36,000 करोड़, गेहूं में 28,000 करोड़ और सोयाबीन में 13,000 करोड़ रुपये से अधिक का नुकसान सिर्फ इन्हीं के कारण होता है। ये खरपतवार मिट्टी से 47% नाइट्रोजन, 42% फास्फोरस और 50% पोटाश जैसी आवश्यक ताकत खींच लेते हैं। अगर समय पर इन्हें नियंत्रित न किया जाए तो खरीफ की फसलों की पैदावार 15% से 76% तक गिर सकती है। उदाहरण हेतु, मूंगफली में 35.8%, सोयाबीन में 31.4% और मक्का में 25.3% तक की कमी आ सकती है।

जुलाई में खरपतवार प्रबंधन की रणनीति

फसल-विशिष्ट खरपतवार नियंत्रण

धान (पैडी): धान की फसल में जुलाई के पहले पखवाड़े में रोपाई पूरी कर लेनी चाहिए। रासायनिक खरपतवार नाशकों के अलावा, निराई-गुड़ाई का भी विशेष ध्यान रखें। पहली निराई 2-3 सप्ताह और दूसरी 4-6 सप्ताह पर करें। फसल स्थापना के 20-50 दिनों के भीतर खरपतवार सबसे अधिक नुकसान करते हैं, इसलिए इस अवधि में विशेष सतर्कता बरतें।

मक्का: मक्का की फसल मध्य जून से जुलाई के पहले सप्ताह तक बोनी चाहिए। खरपतवार नियंत्रण के लिए: * मैंकाइंड एग्रीटेक के Agrikind Temtra (एट्राजीन 50% WP) का उपयोग करें। यह हल्की मिट्टी में 400-500 ग्राम और भारी मिट्टी में 600-800 ग्राम प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें। इसका उपयोग पूर्व-उद्भव (pre-emergence) के रूप में किया जाता है। * मैंकाइंड एग्रीटेक का Atrahuge (Mesotrione 2.27% + Atrazine 22.7% SC) एक प्रभावी पोस्ट-इमर्जेंस herbicide है। यह मक्का में 1400 ml/एकड़ की दर से प्रयोग करें और दोहरी क्रियाविधि के कारण यह खरपतवारों पर त्वरित परिणाम देता है। * मैंकाइंड एग्रीटेक का Agrikind Maizer (Topramezone 33.6% SC) भी मक्का में विभिन्न प्रकार के खरपतवारों के लिए प्रभावी है। 30-40 ml प्रति एकड़ + MSO adjuvant @ 2ml/लीटर पानी के साथ इसका छिड़काव करें।

सोयाबीन: सोयाबीन की बुवाई 20 जून से 5 जुलाई के बीच करें। खरपतवार प्रबंधन के लिए बुवाई के तुरंत बाद पेंडीमेथालिन का प्री-इमर्जेंस छिड़काव करें। फसल के 15-20 दिनों बाद इमेज़ाथापायर का पोस्ट-इमर्जेंस छिड़काव करें।

अन्य फसलों में खरपतवार नियंत्रण:

* **गन्ना:** Agrikind Temtra (एट्राजीन 50% WP) का 400 gm–1.6 Kg प्रति एकड़ प्रयोग करें। Atrahuge (Mesotrione 2.27% + Atrazine 22.7% SC) गन्ने में भी प्रभावी है और 1400 द्द्य/एकड़ की दर से प्रयोग किया जाता है।

गेहूं: खरीफ के बाद गेहूं की फसल में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए Amihuge (2,4-D Dimethyl Amine salt 58% SL) का पोस्ट-इमर्जेंस छिड़काव करें। यह मैंकाइंड एग्रीटेक का उत्पाद है जो विभिन्न फसलों में वार्षिक और बारहमासी चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करता है।

बिना रसायन के खरपतवार नियंत्रण के उपाय- रासायनिक खरपतवारनाशकों का उपयोग हमेशा अंतिम विकल्प के रूप में करें। इसके बजाय ये प्राकृतिक तरीके अपनाएं:

1.गहरी जुताई: मई-जून में खेत की गहरी जुताई करें और कुछ दिन खुला छोड़ दें। तेज धूप से खरपतवारों के बीज और जड़ें जल जाती हैं।

2.फसल चक्र: हर साल एक ही फसल न बोएं। फसल चक्र अपनाने से उस फसल के साथ उगने वाले खरपतवारों की संख्या घट जाती है।

3.स्वच्छ बीज: बुवाई के लिए हमेशा प्रमाणित और खरपतवार-रहित बीजों का उपयोग करें।

4.पकी खाद: कच्ची गोबर की खाद न डालें, क्योंकि इसमें खरपतवारों के बीज जीवित रहते हैं। हमेशा अच्छी तरह सड़ी हुई खाद या वर्मी कंपोस्ट का उपयोग करें।

कीट प्रबंधन: जुलाई में सावधानी जरूरी-जुलाई में नमी और गर्मी बढ़ने से कीट-पतंगों का प्रकोप भी बढ़ जाता है। फसलों को कीटों से बचाने हेतु नियमित निगरानी और समय पर उपचार जरूरी है। मैंकाइंड एग्रीटेक के पास भी कीट प्रबंधन के लिए प्रभावी उत्पाद हैं।

मक्का में कीट प्रबंधन

तना छेदक और फॉल आर्मीवर्म: फॉल आर्मीवर्म मक्का की पत्तियों को गंभीर नुकसान पहुंचाता है। एमामेक्टिन या एनपीवी का छिड़काव करें और बीज को साइंट्रानिलिप्रोल + थायमेथोक्साम से उपचारित करें। ट्राइकोग्रामा जैविक एजेंट का भी उपयोग करें।

सोयाबीन में कीट प्रबंधन: सफेद मक्खी हेतु 30-40 पीला चिपचिपा जाल प्रति एकड़ लगाएं। स्पोडोप्टेरा (इल्ली) हेतु पहला छिड़काव एज़ाडिरैक्टिन 1500 ppm (1 लीटर/हे.) का करें।

अन्य फसलों में कीट प्रबंधन

सब्जियों में कीट प्रबंधन: * Mankind Imida 70 (Imidacloprid 70% WG) भिंडी में जैसिड, एफिड और थ्रिप्स के लिए 12-14 ग्राम/एकड़। * खीरे में एफिड और जैसिड के लिए 14 ग्राम/एकड़। * टमाटर में थ्रिप्स और सफेद मक्खी के लिए 20 ग्राम/एकड़। * आलू में एफिड और सफेद मक्खी के लिए 36 ग्राम/एकड़।

गन्ना: प्रारंभिक तना छेदक के लिए प्रभावित शूट हटाएं, क्लोरपाइरीफॉस 20 EC (5 मिली/लीटर) का उपयोग करें।

फसल वृद्धि के लिए पोषक तत्व प्रबंधन

खरपतवार और कीट नियंत्रण के साथ-साथ फसलों को समय पर पोषक तत्व देना भी जुलाई में महत्वपूर्ण है:

धान: रोपाई के 3 और 6 सप्ताह बाद क्रमशः 30 किलो यूरिया प्रति एकड़ डालें। पीएयू-लीफ कलर चार्ट का उपयोग करके नाइट्रोजन की आवश्यकता का आकलन करें।

मक्का: घुटने की ऊंचाई (नॉक हाई) अवस्था पर नाइट्रोजन की दूसरी मात्रा डालें।

कपास: फूल आने पर 2% यूरिया और बॉल अवस्था पर 2% डीएपी का पर्णीय छिड़काव करें। मैंकाइंड एग्रीटेक पोषक तत्व प्रबंधन हेतु भी समाधान प्रदान करता है, जिसमें Nurturkind Uan 32% N, Cytocell, Nurturkind Nano Zn, Nurturkind Care & Blue Sure जैसे उत्पाद शामिल हैं। कंपनी प्लांट न्यूट्रिशन और प्लांट ग्रोथ रेगुलेटर (PGR) सेगमेंट में भी सक्रिय है।

फफूंद रोगों से बचाव- जुलाई में नमी के कारण फफूंद रोगों का खतरा भी बढ़ जाता है। मैंकाइंड एग्रीटेक के Mankind COC (Copper O&ychloride) का उपयोग करें:

* यह एक मल्टी-साइट कॉन्टैक्ट फफूंदनाशक है जो फफूंद और जीवाणु कोशिकाओं में एंजाइम प्रणाली और प्रोटीन संश्लेषण को बाधित करता है। * आलू में अर्ली ब्लाइट और लेट ब्लाइट के लिए 300-400 ग्राम/एकड़। * टमाटर में अर्ली ब्लाइट, लेट ब्लाइट और लीफ स्पॉट के लिए 300-400 ग्राम/एकड़। * अंगूर में डाउनी मिल्ड्यू के लिए 300-400 ग्राम/एकड़। * आम और नींबू वर्गीय फलों में लीफ स्पॉट और कैंकर के लिए 300-400 ग्राम/एकड़।

विशेष सावधानियां

1.जलभराव से बचें: जुलाई में भारी बारिश होती है, इसलिए खेतों में जल निकासी का उचित प्रबंध करें। कपास, मक्का और दलहनी फसलें अधिक पानी में खड़ी नहीं रह सकतीं।

2.समय पर निराई: फसल स्थापना के 20-50 दिनों के भीतर खरपतवार सबसे अधिक नुकसान करते हैं। पहली निराई 2-3 सप्ताह और दूसरी 4-6 सप्ताह पर करें।

3.जैविक एजेंटों का उपयोग: रासायनिक कीटनाशकों से पहले नीम आधारित उत्पादों (5% NSKE) और ट्राइकोग्रामा जैसे जैविक नियंत्रकों का उपयोग करें।

4.फेरोमोन ट्रैप: कीटों की मौजूदगी की पहचान के लिए 2-3 फेरोमोन ट्रैप प्रति एकड़ लगाएं।

5.सुरक्षा सावधानियाँ: रासायनिक उत्पादों का उपयोग करते समय दस्ताने, मास्क और सुरक्षात्मक कपड़े पहनें। निर्देशानुसार ही मात्रा का उपयोग करें और अधिक मात्रा से बचें।

निष्कर्ष: जुलाई का महीना खरीफ फसलों की पैदावार तय करने वाला होता है। समय पर और सही तरीके से खरपतवार एवं कीट प्रबंधन करके आप न केवल फसल को नुकसान से बचा सकते हैं बल्कि उत्पादन में भी उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। मैंकाइंड एग्रीटेक के उत्पाद जैसे Agrikind Temtra (Atrazine 50% WP), Atrahuge (Mesotrione 2.27% + Atrazine 22.7% SC), Agrikind Maizer (Topramezone 33.6% SC), Amihuge (2,4-D Dimethyl Amine salt 58% SL), Mankind Imida 70 (Imidacloprid 70% WG), और Mankind COC (Copper Oxychloride) आधुनिक कृषि में किसानों के लिए वरदान साबित हो रहे हैं। खेत की नियमित निगरानी, समय पर उपचार और संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन - ये तीनों मिलकर आपकी फसल को बेहतरीन उपज देंगे।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

पशुओं में हर्बल एवं पारंपरिक औषधियों की भूमिका

डॉ. आयुषी चौरसिया
डॉ. राजेश कुमार शर्मा
डॉ. क्षेमंकर श्रमण पशु भेषज एवं विष विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भारत में पशुपालन केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि ग्रामीण संस्कृति और अर्थव्यवस्था का आधार भी है। देश के करोड़ों किसान गाय, भैंस, बकरी, भेड़, मुर्गी तथा अन्य पशुओं पर निर्भर हैं। पशुओं का स्वास्थ्य सीधे तौर पर किसानों की आय, पोषण और जीवन स्तर को प्रभावित करता है। वर्तमान समय में पशु चिकित्सा विज्ञान ने उल्लेखनीय प्रगति की है और अनेक आधुनिक दवाएं उपलब्ध हैं, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में हर्बल एवं पारंपरिक औषधियों का महत्व बना हुआ है।

सदियों से भारतीय ग्रामीण समाज में पशुओं की बीमारियों के उपचार के लिए विभिन्न औषधीय पौधों, जड़ी-बूटियों और घरेलू नुस्खों का उपयोग किया जाता रहा है। यह ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से हस्तांतरित होता रहा है। आज जब एंटीबायोटिक प्रतिरोध, दवा अवशेष तथा उपचार की बढ़ती लागत जैसी चुनौतियां सामने हैं तब हर्बल एवं पारंपरिक औषधियों की उपयोगिता पर पुनः ध्यान दिया जा रहा है।

एथ्नोवेटरिनरी चिकित्सा क्या है?: पशुओं के उपचार में स्थानीय समुदायों द्वारा विकसित पारंपरिक ज्ञान और प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को "एथ्नोवेटरिनरी मेडिसिन" कहा जाता है। इसमें औषधीय पौधों, खनिज पदार्थों और कुछ पारंपरिक उपचार विधियों का समावेश होता है। भारत के विभिन्न राज्यों में पशुपालकों के पास स्थानीय पौधों के उपयोग का समृद्ध ज्ञान है। राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, छत्तीसगढ़ और उत्तराखंड जैसे राज्यों में आज भी अनेक पारंपरिक उपचार प्रचलित हैं।

प्राचीन भारत में पशु चिकित्सा का इतिहास: भारत में पशु चिकित्सा का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। प्राचीन ग्रंथों में पशुओं के रोगों और उनके उपचार का उल्लेख मिलता है। विशेष रूप से घोड़ों, हाथियों तथा गौवंश के स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए औषधीय पौधों का उपयोग किया जाता था। आयुर्वेद में वर्णित अनेक वनस्पतियाँ आज भी पशु चिकित्सा में उपयोग की जाती हैं। आधुनिक शोध इन पौधों के औषधीय गुणों की वैज्ञानिक पुष्टि करने का प्रयास कर रहे हैं।

पशु चिकित्सा में उपयोगी प्रमुख औषधीय पौधे

1. नीम: प्रकृति का बहुउपयोगी चिकित्सक

नीम को भारतीय चिकित्सा परंपरा में विशेष स्थान प्राप्त है। इसकी पत्तियाँ, छाल और बीज अनेक औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं।

उपयोग: त्वचा रोगों में, घावों की सफाई में, बाहरी परजीवियों के नियंत्रण में और कीट प्रतिरोधी के रूप में । ग्रामीण क्षेत्रों में पशुओं को नीम की पत्तियों के पानी से स्नान कराया जाता है, जिससे त्वचा संक्रमण और कीटों की समस्या कम हो सकती है।

2. हल्दी: प्राकृतिक रोगरोधी औषधि -हल्दी में पाया जाने वाला करक्यूमिन शक्तिशाली सूजनरोधी और एंटीऑक्सीडेंट (वो पदार्थ होते हैं जो फ्री रेडिकल्स के कारण कोशिकाओं को होने वाले नुकसान को रोकते एवं देरी करते हैं) गुणों का स्रोत है।

उपयोग: घावों पर लेप के रूप में, सूजन कम करने में, त्वचा संक्रमणों में और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में। ग्रामीण क्षेत्रों में हल्दी और सरसों के तेल का मिश्रण घावों पर लगाने की परंपरा लंबे समय से चली आ रही है।

3. तुलसी

तुलसी को औषधीय पौधों की रानी कहा जाता है।

उपयोग: श्वसन रोगों में, सर्दी-जुकाम जैसी समस्याओं में और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में। तुलसी की पत्तियों का उपयोग कुछ क्षेत्रों में पशुओं को हर्बल पूरक के रूप में किया जाता है।

4. **एलोवेरा-** एलोवेरा अपनी त्वचा उपचार क्षमता के लिए प्रसिद्ध है।

उपयोग: घाव भरने में, त्वचा की जलन में और कटने या छिलने की स्थिति में।

5. लहसुन

लहसुन में प्राकृतिक रोगाणुरोधी गुण पाए जाते हैं।

उपयोग: पाचन स्वास्थ्य में सहायता, कुछ परजीवी समस्याओं में सहायक उपयोग और सामान्य स्वास्थ्य संवर्धन।

6. **अश्वगंधा-**अश्वगंधा को शक्ति और रोग प्रतिरोध बढ़ाने वाली औषधि माना जाता है।

उपयोग: तनाव कम करने में, दुर्बल पशुओं के स्वास्थ्य सुधार में और रोगों से उबरने के दौरान।

ग्रामीण भारत में प्रचलित कुछ पारंपरिक उपचार

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक लोक उपचार प्रचलित हैं:

घावों का उपचार: हल्दी, नीम और कुछ अन्य औषधीय पौधों के लेप का उपयोग घावों पर किया जाता है।

अपच एवं पाचन विकार: अजवाइन, अदरक और कुछ स्थानीय पौधों का उपयोग पाचन संबंधी समस्याओं में किया जाता है।

त्वचा रोग: नीम की पत्तियों का उबला हुआ पानी पशुओं को नहलाने के लिए प्रयोग किया जाता है।

बाहरी परजीवियों का नियंत्रण: नीम तेल और अन्य वनस्पति उत्पादों का उपयोग टिक एवं जुओं के नियंत्रण में किया जाता है।

आधुनिक समय में हर्बल औषधियों का बढ़ता महत्व

एंटीबायोटिक प्रतिरोध की चुनौती- विश्वभर में एंटीबायोटिक प्रतिरोध एक गंभीर समस्या बन चुका है। बार-बार और अनियंत्रित एंटीबायोटिक उपयोग से रोगजनक जीवाणु दवाओं के प्रति प्रतिरोधी बन जाते हैं। इस परिस्थिति में शोधकर्ता ऐसे प्राकृतिक विकल्पों की तलाश कर रहे हैं जो संक्रमण नियंत्रण और रोग प्रतिरोध बढ़ाने में सहायक हो सकें।

दवा अवशेषों की समस्या- दूध, मांस और अंडों में दवा अवशेष उपभोक्ताओं के लिए चिंता का विषय हैं। प्राकृतिक उपचारों के विवेकपूर्ण उपयोग से कुछ परिस्थितियों में दवाओं पर निर्भरता कम की जा सकती है।

जैविक पशुपालन का विस्तार-जैविक पशुपालन प्रणालियों में प्राकृतिक एवं हर्बल उत्पादों की मांग बढ़ रही है। उपभोक्ता भी रसायनों के कम उपयोग वाले पशु उत्पादों को प्राथमिकता दे रहे हैं।

वैज्ञानिक शोध क्या कहते हैं?-हाल के वर्षों में अनेक शोधों ने संकेत दिया है कि कुछ औषधीय पौधों में जीवाणुरोधी, विषाणुरोधी, सूजनरोधी तथा एंटीऑक्सीडेंट गुण मौजूद हैं। हालाँकि यह समझना आवश्यक है कि सभी पारंपरिक उपचार वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित नहीं हैं। कई उपचारों पर अभी और अनुसंधान की आवश्यकता है। वैज्ञानिक परीक्षणों के बिना किसी उपचार को पूर्णतः सुरक्षित या प्रभावी नहीं माना जा सकता।

हर्बल औषधियों की सीमाएं

यद्यपि इनके अनेक लाभ हैं, फिर भी कुछ महत्वपूर्ण सीमाएं हैं:

खुराक का अभाव: अधिकांश पारंपरिक उपचारों में निश्चित खुराक निर्धारित नहीं होती।

गुणवत्ता में अंतर: पौधे की किस्म, मिट्टी, मौसम तथा प्रसंस्करण विधि के अनुसार औषधीय प्रभाव बदल सकता है।

गंभीर रोगों में सीमित उपयोगिता: गंभीर जीवाणु संक्रमण, विषाक्तता, प्रसूति जटिलताओं और शल्य चिकित्सा संबंधी स्थितियों में आधुनिक पशु चिकित्सा आवश्यक होती है।

संभावित विषाक्तता: कुछ पौधे अधिक मात्रा में हानिकारक प्रभाव भी उत्पन्न कर सकते हैं।

पशुपालकों के लिए आवश्यक सावधानियां-1. गंभीर बीमारी में केवल घरेलू उपचारों पर निर्भर न रहें। 2.पशु चिकित्सक की सलाह अवश्य लें। 3.गर्भवती पशुओं में विशेष सावधानी बरतें। 4.अज्ञात पौधों का प्रयोग न करें। 5.उपचार के बाद किसी प्रतिकूल प्रभाव पर तुरंत चिकित्सकीय सहायता लें। 6.स्वच्छता और संतुलित पोषण को प्राथमिकता दें।

पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण क्यों आवश्यक है?- भारत के अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में बुजुर्ग पशुपालकों के पास अमूल्य पारंपरिक ज्ञान उपलब्ध है। आधुनिकता के प्रभाव से यह ज्ञान धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है। यदि इस ज्ञान का वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण और परीक्षण किया जाए, तो नई औषधियों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान मिल सकता है। साथ ही स्थानीय संसाधनों पर आधारित किफायती उपचार विकल्प भी विकसित किए जा सकते हैं।

निष्कर्ष- हर्बल एवं पारंपरिक औषधियां भारतीय पशुपालन की बहुमूल्य धरोहर हैं। इनमें स्थानीय उपलब्धता, कम लागत और संभावित चिकित्सीय लाभ जैसे अनेक सकारात्मक पहलू हैं। दूसरी ओर, इनके सुरक्षित और प्रभावी उपयोग के लिए वैज्ञानिक प्रमाण, उचित खुराक और गुणवत्ता नियंत्रण भी आवश्यक हैं। भविष्य की पशु चिकित्सा में आधुनिक विज्ञान और पारंपरिक ज्ञान का समन्वय महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यदि इन दोनों दृष्टिकोणों का संतुलित उपयोग किया जाए, तो पशुओं के स्वास्थ्य, किसानों की आय और टिकाऊ पशुपालन को नई दिशा मिल सकती है।

"प्रकृति और विज्ञान का संगम ही स्वस्थ पशुधन और समृद्ध किसान का आधार बन सकता है।"

डॉ. सरिता सिंह (वैज्ञानिक)
डॉ. निधि प्रजापति (वैज्ञानिक)
डॉ. रूपेन्द्र कुमार झाड़े (वैज्ञानिक)
डॉ चंचल भार्गव (वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी)
कृषि विज्ञान केन्द्र चंदनगांव छिंदवाड़ा (म.प्र.)

सहजन मुनगा के फायदे एवं उपयोगिता

सहजन के फायदे

दुनिया का सबसे ताकतवर पोषण पूरक आहार है- सहजन (मुनगा)। इसकी जड़ से लेकर फूल, पत्ती, फल्ली, तना गोंद हर चीज उपयोगी होती है। आयुर्वेद में सहजन से तीन सौ रोगों का उपचार संभव है।

सहजन के पौष्टिक गुणों की तुलना:- विटामिन सी-संतरे से सात गुना अधिक। विटामिन ए-गाजर से चार गुना अधिक। कैलशियम दूध से चार गुना अधिक। पोटेशियम- केले से तीन गुना अधिक। प्रोटीन-दही की तुलना में तीन गुना अधिक। स्वास्थ्य के हिसाब से इसकी फली, हरी और सूखी पत्तियों में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, कैल्शियम, पोटेशियम, आयरन, मैग्नीशियम, विटामिन-ए,सी और बी-काम्प्लेक्स प्रचुर मात्रा में पाई जाते हैं। इनका सेवन कर कई बीमारियों को बढ़ने से रोका जा सकता है, इसका बॉटेनिकल नाम 'मोरिंगा ओलिफेरा' है। हिंदी में इसे सहजन, सुजना, सेंजन और मुनगा नाम से भी जानते हैं, जो लोग इसके बारे में जानते हैं, वे इसका सेवन जरूर करते हैं।

सहजन का फूल पेट और कफ रोगों में, इसकी फली वात व उदशूल में, पत्ती नेत्ररोग, मोच, साटिका, गठिया आदि में उपयोगी है। इसकी छाल का सेवन साइटिका,गठिया, लीवर में लाभकारी होता है। सहजन के छाल में सहद मिलाकर पीने से वात और कफ रोग खत्म हो जाते हैं।

सहजन की पत्ती का काढ़ा बनाकर पीने से गठिया, साइटिका, पक्षाघात, वायु विकार में शीघ्र लाभ पहुंचता है। साइटिका के तीव्र वेग में इसकी जड़ का काढ़ा तीव्र गति से चमत्कारी प्रभाव दिखाता है। मोच इत्यादि आने पर सहजन की पत्ती की लुगदी बनाकर सरसों तेल डालकर आंच पर पकाएं और मोच के स्थान पर लगाने से जल्दी ही लाभ मिलने लगता है। सहजन के फली की सब्जी खाने से पुराने गठिया, जोडों के दर्द, वायु संचय, वात रोगों में लाभ होता है। इसके ताजे पत्तों का रस कान में डालने से दर्द ठीक हो जाता है साथ ही इसकी सब्जी खाने से गुर्दे और मूत्राशय की पथरी कटकर निकल जाती है। इसकी जड़ की छाल का काढ़ा सेंधा नमक और हींग डालकर पीने से पित्ताशय की पथरी में लाभ होता है। सहजन के पत्तों का रस बच्चों के पेट के कीड़ निकालता है और उल्टी-दस्त भी रोकता है। ब्लड प्रेशर और मोटापा कम करने में भी कारगर सहजन का रस सुबह-शाम पीने से हाई ब्लड प्रेशर में लाभ होता है। इसकी पत्तियों के रस के सेवन से मोटापा धीरे-धीरे कम होने लगता है। इसकी छाल के काढ़े से कुल्ला करने पर दांतों के कीड़े नष्ट होते हैं और दर्द में आराम मिलता है। सहजन के कोमल पत्तों का साग खाने से कब्ज दूर होता है, इसके अलावा इसकी जड़ के काढ़े को सेंधा नमक और हींग के साथ पीने से मिर्गी के दौरों में लाभ होता है। इसकी पत्तियों को पीसकर लगाने से घाव और सूजन ठीक होते हैं।

सहजन के बीज से पानी को काफी हद तक शुध्द करके पेयजल के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसके बीज को चूर्ण के रूप में पीसकर पानी में मिलाया जाता है। पानी में घुल कर यह एक प्रभावी नेचुरल क्लोरीफिकेशन एजेंट बन जाता है। यह न सिर्फ पानी को बैक्टीरिया रहित बनाता है, बल्कि यह पानी की सांद्रता को भी बढ़ाता है। कैंसर तथा शरीर के किसी हिस्से में बनी गांठ, फोड़ा आदि में सहजन की जड़ का अजवाइन, हींग और सौंठ के साथ काढ़ा बनाकर पीने का प्रचलन है। यह काढ़ा साइटिका (पैरों में दर्द) जोड़ों में दर्द, लगता, दमा, सूजन, पथरी आदि में भी लाभकारी है।

सहजन के गोंद को जोड़ों के दर्द दमा आदि रोगों में लाभदायक माना जाता है। आज भी ग्रामीणों की ऐसी मान्यता है कि सहजन के प्रयोग से वायरस से होने वाले रोग, जैसे चेचक आदि के होने का खतरा टल जाता है।

सहजन में अधिक मात्रा में ओलिक एसिड होता है, जो कि एक प्रकार का मोनोसैच्युरेटेड फैट है और यह शरीर के लिए अतिआवश्यक है। सहजन में विटामिन-सी की मात्रा बहुत होती है। यह शरीर के कई रोगों से लड़ता है। यदि सर्दी की वजह से नाक-कान बंद हो चुके हैं तो, सहजन को पानी में उबालकर उस पानी का भाप लें। इससे जकड़न कम होती है। सहजन में कैल्शियम की मात्रा अधिक होती है, जिससे हड्डियां मजबूत बनती हैं। इसका जूस गर्भवती को देने की सलाह दी जाती है, इससे डिलवरी में होने वाली समस्या से राहत मिलती है और डिलवरी के बाद भी मां को तकलीफ कम होती है, गर्भवती महिला को इसकी पत्तियों का रस देने से डिलीवरी में आसानी होती है।

सहजन के फली की हरी सब्जी को खाने से बुढ़ापा दूर रहता है इससे आंखो की रोशनी भी अच्छी होती है। सहजन को सूप के रूप में भी पी सकते हैं, इससे शरीर का खून साफ होता है।

सहजन का सूप पीना सबसे अधिक फायदेमंद होता है। इसमें भरपूर मात्रा में विटामिन सी पाया जाता है। विटामिन सी के अलावा यह बीटा कैरोटीन, प्रोटीन और कई प्रकार के लवणों से भरपूर होता है, यह मैग्नीज, मैग्नीशियम, पौटेशियम और फाइबर से भरपूर होते हैं। यह सभी तत्व शरीर के पूर्ण विकास के लिए बहुत जरूरी हैं। कैसे बनाएं सहजन का सूप सहजन की फली को कई छोटे-छोटे टुकडों में काट लेते हैं। दो कप पानी लेकर इसे धीमी आंच पर उबलने के लिए रख देते हैं, जब पानी उबलने लगे तो इसमें कटे हुए सहजन की फली के टुकड़े डाल देने हैं, इसमें सहजन की पत्तियां भी मिलाई जा सकती हैं, जब पानी आधा बचे तो सहजन की फलियों के बीच का गूदा निकालकर उपरी हिस्सा अलग कर लेते हैं, इससें थोड़ा सा नमक और काली मिर्च मिलाकर पीना चाहिए।

1. सहजन के सूप के नियमित सेवन से सेक्सुअल हेल्थ बेहतर होती है. सहजन महिला और पुरूष दोनों के लिए समान रूप् से फायदेमंद है।
2. सहजन में एंटी-बैक्टीरियल गुण पाया जाता है जो कई तरह के संक्रमण से सुरक्षित रखने में मददगार है. इसके अलावा इसमें मौजूद विटामिन सी इम्यून सिस्टम को बूस्ट करने का काम करता है।
3. सहजन का सूप पाचन तंत्र को भी मजबूत बनाने का काम करता है, इसमें मौजूद फाइबर्स कब्ज की समस्या नहीं होने देते है।
4. अस्थमा की शिकायत होने पर भी सहजन का सूप पीना फायदेमंद होता है. सर्दी-खांसी और बलगम से छुटकारा पाने के लिए इसका इस्तेमाल घरेलू औषधि के रूप् में किया जाता है।
5. सहजन का सूप खून की सफाई करने में भी मददगार है, खून साफ होने की वजह से चेजरे पर भी निखार आता है।
6. डायबिटीज कंट्रोल करने के लिए भी सहजन के सेवन की सलाह दी जाती है।

डॉ. सत्यनारायण सिंह (अतिथि वैज्ञानिक, सस्य-विज्ञान)
डॉ. संदीप कुमार पैकरा (सहायक प्रध्यापक, सस्य-विज्ञान)
डॉ. सुष्मिता कश्यप (अतिथि वैज्ञानिक, कीट-विज्ञान)
डॉ. ज्योति साहू (अतिथि वैज्ञानिक, आनुवंशिकी एवं पादप-प्रजनन)
डॉ. ए.के. सिंह (प्रमुख वैज्ञानिक, पौध-रोग विज्ञान)
(कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, रायगढ़, छत्तीसगढ़)

औषधीय गुणों से भरपूर धनिया की वैज्ञानिक खेती

धनिया का वैज्ञानिक नाम कोरिएन्ड्रम सेटाइवम है। यह अम्बेलीफेरी कुल का पौधा है कोरिएन्ड्रम वंश की दो जातियां पाई जाती हैं जिनमें से कोरिएन्ड्रम सेटाइवम ही खेती योग्य है। इसकी उत्पत्ति भूमध्य सागरीय क्षेत्र से हुई है। यह मोरोक्को, रूमानिया, फ्रांस, स्पेन, इटली, हालैंड, यूगोस्लाविया, सोवियत रूस, भारत व मिस्र तथा सीमित क्षेत्र भी उगाया जाता है। इसका पौधा एक वर्षीय अर्ध-उर्ध्वस्तंभीय होता है जिसकी ऊंचाई 20 से 90 सें.मी. तक होती है। इसका तना रोम रहित, गोलाकार व खोखला होता है। तने के कमजोर होने के कारण पूर्ण विकसित पौधा झुक जाता है। तने का रंग हल्का या बैंगनी होता है। पुष्प बहुत छोटे व सफेद या गुलाबी रंग के होते हैं। ये पुष्प संयुक्त छत्रक में स्थिर होते हैं जो 5 से 7 पुष्प छत्रकों से बनते हैं। धनिया बहुधा पर-परागी पौधा है। इसके साथ ही धनिया के खेती के साथ शहद उत्पादन भी किया जा सकता है।

धनिया की खेती इसकी सुगंधित पत्तियों और मसालों के रूप में इस्तेमाल होने वाले बीजों दोनों के लिए की जाती है जिसका उपयोग कई संस्कृतियों में पाककला और औषधीय दोनों रूपों में किया जाता रहा है। औषधीय रूप से इसका उपयोग पाचन में सहायता, रक्तशर्करा और रक्त चाप को कम करने और एक सूजन रोधी और एंटी ऑक्सीडेंट के रूप में किया जाता है। इसके पारंपरिक उपयोगों में चिंता, संक्रमण और त्वचा संबंधी समस्याओं का इलाज शामिल है।

प्रमुख औषधीय उपयोग एवं लाभ

रक्त शर्करा प्रबंधन: धनियां के बीज और अर्क एंजाइम गतिविधि का बढ़ावा देकर और इंसुलिन स्त्राव को बढ़ाकर रक्त शर्करा के स्तर को कम करने में मदद कर सकते है। जो शर्करा के उचित विघटन में सहायता करता है।

हृदय स्वास्थ्य: यह जड़ी बूटी एक प्राकृतिक मूत्रवर्धक के रूप में कार्य करती है। जो शरीर से अतिरिक्त सोडियम और पानी को बाहर निकालने में मदद करती है जिससे रक्तचाप कम करने में मदद मिल सकती है। यह खराब कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने और अच्छे कोलेस्टॉल को बढ़ाने मदद करती है जिससे समग्र हृदय स्वास्थ्य को बढावा मिलता है।

पाचन स्वास्थ्य: धनिया का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा में अपच, गैस, पेट फूलना, दस्त और इरिटेबल बाउल सिंडोम, सहित विभिन्न पाचन संबंधी बीमारियों के इलाज हेतु व्यापक रूप से किया जाता है इसके आवश्यक तेल भूख बढ़ाने और पेट दर्द से राहत दिलाने में मदद कर सकता है।

संक्रमण से लड़ना: डोडेसेनल जैसे रोगाणु रोधी यौगिकों से युक्त धनिया विभिन्न जीवाणु, फंगल और खाध जनित बीमारियों से लडने में मदद कर सकता है जिसमें साल्मोनेला और मूत्र पथ के संक्रमण यूटी आई, शामिल है।

त्वचा स्वास्थ्य: धनिया में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट और सूजनरोधी गुण त्वचा को बढ़ती उम्र, धूप से होने वाले नुकसान, मुंहासों और डर्मेटाइटिस व एक्जिमा जैसी अन्य त्वचा संबंधी समस्याओं से बचा सकते हैं। इसके पत्तों का पेस्ट अक्सर चेहरे में ग्लो लाने और मुंह के छालों के घरेलू उपचार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

मस्तिष्क स्वास्थ्य: अपने शक्तिशाली सूजन रोधी गुणों के कारण, पार्किंसंस और अल्जाइमर रोग जैसी मस्तिष्क संबंधी बीमारियों के खिलाफ धनिया के संभावित तंत्रिका सुरक्षात्मक प्रभावों पर शोध चल रहा है। अध्ययनों से पता चलता है कि यह चिंता को नियंत्रित करने और याददाश्त में सुधार करने में भी मदद कर सकता है।

हड्डियों का स्वास्थ्य: धनिया विटामिन, कैल्शियम और फॉस्फोरस का एक अच्छा स्त्रोत है, हड्डियों के विकास मजबूती और ऑस्टियोपोरोसिस जैसी स्थितियों की रोकथाम के लिए सभी आवश्यक पोषक तत्व हैं।

प्रतिरक्षा प्रणाली को सहायता: प्रतिरक्षा बढ़ाने वाले विटामिन ए, सी और ई के साथ-साथ एंटी ऑक्सीडेंट से भरपूर धनिया मुक्त कणों से होने वाली क्षति से कोशिकाओं की रक्षा करने में मदद करता है और शरीर की प्राकृतिक रक्षा प्रणाली को सहायता प्रदान करता है।

उपयोग एवं गुण

पाककला-पत्तियों और बीजो दोनो का उपयोग खाना पकाने में ब्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। पत्तियों का उपयोग सलाद, सूप और सॉस में किया जाता है, जबकि सुखे बीजो का उपयोग कड़ी पाउडर, अचार और अन्य मसालो के मिश्रण में किया जाता है।

सुगंध -पौधे की सुगंध होती है हालाकि ताजे पौधे में त्रीव गंध हो सकती है जो सुखने के बाद गर्म अखरोट जैसी और मसाले दार खुशबु में बदल जाती है। औषधीय-बीजो का उपयोग औषधीय उदेश्य के लिय किया जाता है जैसे की पाचन सहायता के लिए और उनके वातहर मूत्र वर्धक और शीतलक गुणो के लिय किया जाता है। औद्योगिक-बीजो से प्राप्त आवश्यक तेलो का उपयोग शराब को स्वादिष्ट बनाने, इत्र बनाने और औषधियो में गंध को छिपाने के लिय किया जाता है

रासायनिक सघंटक

बीज

वाष्पशील तेल: इसमें लिनालूल (58.0-80.3%) की प्रधानता होती है तथा अन्य घटक होते है जिनमें y-टेरपीनीन (0.3-11.2:), पीनीन (0.2-10.9%), पी-साइमीन (0.1-8.1:), कपूर (3.5-1.5:) और जेरानिल एसीटेट (0.2-5.4%), शामिल है।

पोषक तत्व: इसमें स्टार्च (11 ग्रा. 100 ग्रा.), वसा (20 ग्रा. 100 ग्रा.), प्रोटीन (100 ग्रा.) और अच्छा फाइबर (30 ग्रा. 100 ग्रा.) शामिल है

ताजी पत्तियां

पोषक तत्व: मुख्य रूप से नमी (87.9 ग्रा. 100 ग्रा.), प्रोटीन (3.3 ग्रा. 100 ग्रा.), और कार्बोहाइडेट (6.5 ग्रा.. 100 ग्रा.) से बना है।

विटामिन: विटामिन सी (135 मिलीग्राम. 100 ग्राम) और विटामिन ए (10,460 I.U/100 ग्राम), का एक अच्छा स्त्रोत है।

खनिज: इसमें कैल्शियम (0.14ग्राम.100 ग्राम), फास्फोरस (0.06 ग्राम. 100 ग्राम) और लोहा (0.01ग्राम.100 ग्राम) शामिल है।

अन्य घटक

फेनोलिक यौगिक: बीज और पत्तियो दोनो में फेनोलिक यौगिक होते है, जिनमें फलेवोनोइटडस, कौमारिन और फेनोल काबौक्सिलिक एसिड जैसे एपिजेनिन, ल्यूटोलिन, फेरूलिक एसिड और गैलिक एसिड शामिल है।

अन्य यौगिक: अन्य पहचाने गए यौगिका में 2,4-एपिऑक्सी-3,4,5,6,7,8- हेक्साहाइडो-2,5,5,8 a टेटामेथिल-2h-बेंजोफयूरान, 2-मेंथायोक्सी-4-विनाइलफेनोल औरडोडेकेलनोइक एसिड शामिल है, जो पौधो के भाग और उत्पति के आधार पर अलग-अलग सांद्रता में पाए जा सकते है।

उन्नतशील किस्में: धनिया की पंत हरितिमा किस्म हरी पत्ती के लिय तथा गुजरात धनियां 1 एवं 2, सिन्धु, राजेन्द, स्वाति बीज उत्पादन के लिय और कोयम्बटूर 1, 2 एवं छत्तीसगढ़ धनियां 1 बीज तथा छत्तीसगढ़ धनिया-2, चन्द्रहासिनी, गुजरात पत्ती के लिय अच्छी पाई गई है।

भूमि: जिवाशं युक्त 6.5 से 7.5 पी.एच. वाली अच्छी जल निकास वाली, दोमट भूमि अच्छा उत्पादन में सहायक है। वर्षा आधारित खेती के लिय चिकनी मिट्टी उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी: एक बार मिटी पलटने वाले हल से जुताई फिर चार बार देशी हल या कल्टी वेटर से आड़ी खडी जुताई द्वारा खेत की तैयारी किया जाना चाहिए और बाद में पाटा चलाकर मृदा को भुरभरी बनाना लाभप्रद होता है।

बीज दर एवं बीजोपचार: धनिया के एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 15 से 20 किलो ग्राम बीज पर्याप्त रहता है तथा बीज उपचार के लिय कार्बेन्डाजिम (3 ग्राम दवा/किलो बीज) का प्रयोग किया जा सकता है।

बुआई का समय और तरीका: सामान्यतः धनिया को 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक बो देना चाहिए। ताकि उत्पादन प्रभावित न हो। धनिया के बीज को पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेंमी. तथा पौध से पौध की दूरी 10 सेंमी. और बीज की गहराई 1 से 2 सेंमी. ही रखें।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन: धनिया की फसल में अधिक पैदावार लेने के लिये 5 से 10 टन गोबर खाद या कम्पोस्ट, इसके साथ ही साथ 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेण् दिया जाना चाहिए, गोबर खाद, नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पुरी मात्रा बोनी के समय कतार/कूडों में दिया जाना उपयुक्त होता है। नाइट्रोजन की शेष मात्रा को दो बराबर भागों में बाटकर बोनी के क्रमशः 20 एवं 40 दिन बाद नमी की स्थिति में दिया जा सकता है।

सिंचाई एवं जल निकास: बुआई के पश्चात सिंचाई तथा बाद में मौसम एवं भूमि के आवश्यकतानुसार 15-20 दिन के अंतराल से सिंचाई करना चाहिए। खेत में अनावश्यक पानी जमा न होने दे।

खरपतवार प्रबंधन: रासायनिक विधि में साधारण पेंडीमेथेलीन (2.5 - 3.3 ली.हे.) को बुआई के साथ सिंचाई के दो दिन बाद देना चाहिए। बोनी के 15 से 40 दिन बाद हाथ से निंदाई कर खेत को खरपतवार रहित रखें।

कटाई: फसल के दाने पीला पड़कर भूरा रंग के होने लगे तब कटाई करें। सामान्यतया फसल की पकने के अवधि अनुसार करते हैं।

रोग नियंत्रण

1. तना पिटिका या स्टैमगाल बीमारी: प्रोटोमाइसिस मैकोस्पोरस कवक से उत्पन्न होने वाले इस रोग के लक्षण पौधे के तना, फल एवं फुल पर प्रदर्शित होते हैं। शुरूआती अवस्था में रोग के प्रभाव से तना पीला होने लगता है मिटटी के पास से प्रभावित तने पर छोटी-छोटी उभरी हुई पिटिकायें दिखाई देने लगती है। कुछ समय के बाद भूरे रंग की हो जाती है। साथ ही फसल की बढ़वार के साथ-साथ बढ़ती जाती है। रोग से प्रभावित पौधे हंस की गर्दन की तरह हो जाते हैं पत्तियों पर रोग के प्रभाव होने से पर्णवन्त एवं शिराएं सामान्य से मोटी एवं उभरी हुई दिखाई देती है और फूल कम बनते हैं। फलों का आकार सामान्य से बड़ा हो जाता है तैयार बीज उपयोग के लायक नहीं रहता है।

बचाव: (1) खड़ी फसल में रोग आने की स्थिति में किसी भी रसायन का उपयोग लाभकारी नहीं होता है (2) फसल की बुआई अक्टुबर के प्रथम सप्ताह में करने से रोग का प्रकोप कम लगता है (3) बोने से पूर्व बीज का उपचार कार्बेन्डाजिम से करना चाहिए (4) रोग से ग्रसित पौधों को उखाड़ कर जला देना चाहिए (5) रोग ग्रसित खेत में फसल चक्र अपनाना चाहिए।

2. ग्लानि या उकठा रोग: रोग से प्रभावित पौधे शुरू में पीले पड़ने लगते हैं और कुछ ही दिनों में इनका शीष मुरझाकर सुख जाता है और पौधा मर जाता है इन पौधे में बीज बनने के बावजूद बीज अपरिपक्र एवं हल्के रहते हैं जिससे बीज का उपयोग अगली फसल के लिये नहीं किया जा सकता एवं बीजो का उपयोग मसालों के रूप में भी नहीं होता है। यह रोग फयुजेरीयम ऑक्सीस्पोरम स्पेण्केरियंडाई द्वारा होता है।

बचाव: (1) फसल चक्र अपनाना चाहिए (2) बुआई से पूर्व बीजोपचार करना चाहिए। खेत में लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम का छिड़काव करें (3) एक किलोग्राम टाईकोडर्माको 2.5 क्विंटल सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर 10 दिन रखने के पश्चात खेत में अच्छी तरह मिलाकर बुआई करें (4) गर्मी की जुताई करने के बाद खेत को खाली छोड़ दें।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

डॉ. सुमन रावटे (वैज्ञानिक)
डॉ. ज़ेनू झा (समन्वयक), कृषि-औद्योगिक जैव प्रौद्योगिकी में उत्कृष्टता केंद्र (सीओई-एआईबी), इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश के किसानों के लिए नई दिशा

शुगरकेन टिशू कल्चर: अधिक उत्पादन, कम समय

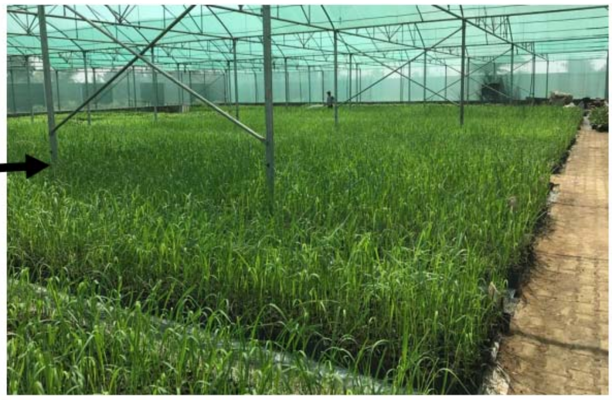

गन्ना भारत की सबसे महत्वपूर्ण नकदी फसलों में से एक है, जो चीनी, गुड़ और एथेनॉल उत्पादन में अहम भूमिका निभाता है। छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश के किसान लंबे समय से गन्ने की पारंपरिक खेती करते आ रहे हैं, लेकिन इस पद्धति में कई चुनौतियाँ हैं। पारंपरिक खेती में फसल तैयार होने में 12 से 18 महीने का समय लगता है, साथ ही लाल सड़न और स्मट जैसे रोगों से उत्पादन प्रभावित होता है। पौधों का अंकुरण असमान होता है और गन्ने की मोटाई व शर्करा प्रतिशत में भिन्नता रहती है। इन कारणों से किसानों को अधिक लागत और कम लाभ का सामना करना पड़ता है।

टिशू कल्चर तकनीक इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है। इस विधि से तैयार पौधे रोगमुक्त होते हैं और उनकी वृद्धि समान रूप से होती है। कम समय में बड़ी संख्या में पौधे तैयार किए जा सकते हैं, जिससे किसानों को जल्दी फसल मिलती है। टिशू कल्चर गन्ने में शर्करा प्रतिशत अधिक और स्थिर रहता है, जिससे चीनी मिलों को बेहतर गुणवत्ता का गन्ना मिलता है। पारंपरिक खेती की तुलना में प्रति हेक्टेयर उत्पादन 20 से 30 प्रतिशत तक अधिक होता है।

किसानों के लिए यह तकनीक आर्थिक दृष्टि से भी लाभकारी है। रोगमुक्त पौधों के कारण कीटनाशक और उपचार पर खर्च कम होता है। फसल जल्दी तैयार होने से किसानों को शीघ्र आय प्राप्त होती है। उच्च शर्करा प्रतिशत और समान गुणवत्ता के कारण गन्ने को बाजार में बेहतर मूल्य मिलता है। इससे किसानों की आय स्थिर होती है और उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होती है।

छत्तीसगढ़ के रायपुर, बिलासपुर और महासमुंद जिलों में टिशू कल्चर गन्ने की खेती से किसानों को अधिक उत्पादन और बेहतर मूल्य मिल रहा है। वहीं मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर और होशंगाबाद क्षेत्र में इस तकनीक ने किसानों की आय बढ़ाई है और चीनी उद्योग को स्थिर कच्चा माल उपलब्ध कराया है।

गन्ने की टिशू कल्चर तकनीक किसानों के लिए केवल उत्पादन बढ़ाने का साधन नहीं है, बल्कि यह खेती को अधिक टिकाऊ और सुरक्षित भी बनाती है। पारंपरिक खेती में बार-बार बीज सामग्री बदलने और रोगों के कारण फसल की स्थिरता प्रभावित होती है। टिशू कल्चर से तैयार पौधे एक समान और रोगमुक्त होते हैं, जिससे खेत में पौधों की संख्या और गुणवत्ता दोनों स्थिर रहती हैं। यह स्थिरता किसानों को लंबे समय तक भरोसेमंद उत्पादन देती है और उन्हें बार-बार बीज खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके अलावा, यह तकनीक ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर भी पैदा करती है। टिशू कल्चर प्रयोगशालाओं और नर्सरी में स्थानीय युवाओं को प्रशिक्षण देकर उन्हें रोजगार से जोड़ा जा सकता है। इससे किसानों को पौध सामग्री आसानी से उपलब्ध होती है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूती मिलती है। छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश जैसे राज्यों में, जहाँ गन्ना उद्योग पहले से ही महत्वपूर्ण है, टिशू कल्चर अपनाने से न केवल किसानों की आय बढ़ेगी बल्कि चीनी मिलों और सहायक उद्योगों को भी स्थिर कच्चा माल मिलेगा। इस प्रकार यह तकनीक खेती, उद्योग और ग्रामीण विकास तीनों को एक साथ आगे बढ़ाने की क्षमता रखती है।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

प्रशांत नारायण, शिवेन्द्र कुमार सिंह
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या-224229 उत्तर प्रदेश

राघवेन्द्र कुमार कुशवाहा मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान विभाग बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा, उत्तर प्रदेश- 210001

क्षारीय मृदा में जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीव का प्रबंधन एवं महत्व

परिचयः क्षारीय मृदा का pH सामान्यतः 7.5 से अधिक होता है तथा इसमें सोडियम लवणों की मात्रा अधिक पाई जाती है और अधिक सोडियम के कारण मृदा की संरचना खराब हो जाती है जिसे जल का अवशोषण एवं निकास प्रभावित होते हैं और ऐसी मृदाओं में पौधों की जड़ों का विकास बाधित होता है, जिससे फसल उत्पादन कम हो जाता है और उच्च pH के कारण नाइट्रोजन, फास्फोरस, जिंक और आयरन जैसे आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता घट जाती है जिसे क्षारीयता बढ़ने से मृदा में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की सक्रियता भी कम हो जाती है और गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद एवं फसल अवशेष जैसे जैविक पदार्थ मृदा सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जिसे जैविक पदार्थों के विघटन से बनने वाले कार्बनिक अम्ल मृदा की क्षारीयता को कम करने में सहायक होते हैं।

सूक्ष्मजीव पोषक तत्वों के चक्रण, नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं फास्फोरस घुलनशीलता में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं और राइजोबियम, एजोटोबैक्टर एवं फास्फेट घुलनशील जीवाणु जैसे जैव उर्वरक मृदा की उर्वरता बढ़ाते हैं जिसे जैविक पदार्थों और सूक्ष्मजीवों का संतुलित प्रबंधन क्षारीय मृदा की उत्पादकता बढ़ाने तथा टिकाऊ कृषि को प्रोत्साहित करने का प्रभावी उपाय है। जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीव कैसे तैयार कैसे करें ?

कम्पोस्ट बनाना

कम्पोस्ट बनाने के लिए 1-1.5 मीटर गहरा गड्ढा खोदें। सबसे पहले सूखे कचरे (पत्तियां आदि) की परत डालें, फिर उसके ऊपर गीले कचरे (छिलके, गोबर आदि) की परत बिछाएं। खाद में नमी हमेशा 60-70% बनाए रखें तथा हर परत पर थोड़ा पानी छिड़कें। 15-20 दिन में एक बार पलटाई करें। लगभग 40-60 दिन में कम्पोस्ट खाद तैयार हो जाती है।

वर्मी कम्पोस्ट

वर्मी कम्पोस्ट केंचुओं की सहायता से तैयार किया जाता है। इसके लिए छायादार स्थान पर बेड बनाएं तथा उसमें गोबर और सूखी पत्तियां डालें। इसके बाद केंचुए छोड़ दें। नमी हमेशा 60-70% बनाए रखें और समय-समय पर पानी का छिड़काव करते रहें। लगभग 30-45 दिन में वर्मी कम्पोस्ट तैयार हो जाता है।

गोबर खाद

गोबर + पशुओं का बिछावन (भूसा) इकट्ठा करें ढेर बनाकर 2-3 महीने तक सड़ने दें और नमी हमेशा 60-70% रखें

हरी खाद

हरी खाद जैसे - ढैंचा, सन, मूंग जैसी फसलें बोएं 40-45 दिन बाद इसे खेत में इसकी जुताई कर दें.

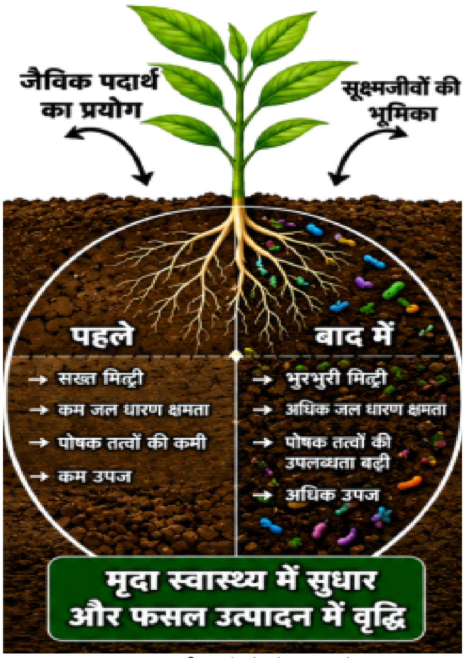

सूक्ष्मजीव कैसे तैयार करें

जीवामृत- 10 लीटर गोमूत्र, 10 किलो गोबर, 2 किलो गुड़, 2 किलो बेसन और 200 लीटर पानी को अच्छी तरह मिलाकर 2-3 दिन तक छाया में रखें तथा रोज़ हिलाते रहें। तैयार घोल का 200 लीटर प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें।

घनजीवामृत

यह विधि भी बिल्कुल जीवामृत बनाने की तरह ही है इसमें जब जीवामृत तैयार हो जाता है तब इसे गाय के गोबर के साथ मिलाकर 48 से लेकर 72 घंटे तक छाया में विघटित होने के लिए रखा जाता है इसके बाद यह खेत में प्रयोग करने के लिए तैयार हो जाता है। जीवामृत और घनजीवामृत दोनों को ही खेत में बुवाई से पहले मिट्टी में अच्छी तरह से मिला दिया जाता है। इसके बाद खेत में लाभदायक केंचुए जो मिट्टी के अंदर रहते हैं वह मिट्टी के ऊपर आ जाते हैं जिससे मिट्टी भुरभुरी हो जाती है और इससे मिट्टी की उर्वराशक्ति में काफी हद तक सुधार होता है। इसके साथ-साथ उत्पादन व फसल उपज की गुणवत्ता भी इनके प्रयोग से काफी अच्छी हो जाती है। इनका प्रयोग हम सब्जियों में लहसुन, प्याज, हल्दी, बैंगन, टमाटर, मिर्च, पत्तागोभी, फूलगोभी, शलजम, मूली, चुकंदर तथा गाजर वहीं फलों में स्ट्रॉबेरी तथा ब्लूबेरी व फूलों में गेंदा तथा रजनीगंधा आदि में खेत की तैयारी के समय प्रयोग कर सकते हैं।

जैव उर्वरक

20 लीटर साफ पानी में 1 किलो गुड़ डालकर उबाल लें। पानी ठंडा होने पर इसमें 1 किलो बेसन (या चने का आटा) मिलाएं। इसके बाद 1 पैकेट बायोफर्टिलाइज़र कल्चर, जैसे राइजोबियम, एजोटोबैक्टर या फॉस्फोरस घोलने वाले जीवाणु, डालें। ड्रम या बाल्टी को ढककर छाया में रखें तथा 2-3 दिन तक रोज़ लकड़ी से हिलाते रहें। लगभग 3 दिन में आपका जैव उर्वरक तैयार हो जाएगा।

सारांश

क्षारीय मृदा में जैविक पदार्थ और लाभकारी सूक्ष्मजीव मृदा की संरचना, पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा जल धारण क्षमता को सुधारकर उर्वरता बढ़ाते हैं इनका संतुलित उपयोग फसल उत्पादन, गुणवत्ता एवं टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने का प्रभावी और पर्यावरण-अनुकूल उपाय है।

दिनेश शिवहरे
Mob. : 98263-55396
मध्य प्रदेश का पहला
श्री दयाल बन्धु केन्द्र
(हिनौतिया वालों की दुकान)
सभी प्रकार की कीटनाशक दवाईयां, जिन्क एवं बीज आदि के थोक एवं खेरीज विक्रेता
गायत्री मंदिर के पास, जवाहर गंज, डबरा जिला ग्वालियर (म.प्र.)
E-mail : shridayalbandhu@gmail.com, dineshshivhare66yahoo.com
08/2025-26

✍ डॉ. आलोक राय, (असिस्टेंट प्रोफेसर)
जी.एल.ए. विश्वविद्यालय, मथुरा (उ.प्र.)

पशुओं में टीकाकरण का महत्व: रोगों से सुरक्षा की पहली ढाल

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है। पशुधन किसानों की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। दूध, मांस, अंडा और अन्य पशु उत्पादों से न केवल पोषण मिलता है बल्कि किसानों को नियमित आय भी प्राप्त होती है। अधिक एवं स्वस्थ उत्पादन के लिए पशुओं का स्वास्थ्य बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। पशुओं को विभिन्न संक्रामक रोगों से बचाने का सबसे सरल, सस्ता और प्रभावशाली उपाय टीकाकरण है।

टीकाकरण क्या है?

टीकाकरण एक जैविक प्रक्रिया है जिसमें पशुओं को रोगों के विरुद्ध प्रतिरक्षा (Immunity) प्रदान करने के लिए विशेष प्रकार के टीके लगाए जाते हैं। टीके शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करते हैं, जिससे पशु गंभीर बीमारियों से सुरक्षित रहते हैं और उनका उत्पादन बना रहता है।

टीकाकरण का महत्व

टीकाकरण के द्वारा पशुओं के जीवन में विभिन्न संक्रामक रोगों से बचाव किया गया है। टीकाकरण जानलेवा बीमारियों से बचाता है और उनके स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने का सबसे प्रभावी उपाय है।

पशुओं के लिए टीकाकरण क्यों आवश्यक है, इसके कुछ कारण निम्नलिखित हैं-

1. संक्रामक रोगों से सुरक्षा

टीकाकरण पशुओं को खुरपका-मुंहपका (FMD), गलाघोटू (HS), ब्लैक क्वार्टर (BQ), ब्रुसेलोसिस, रेबीज आदि रोगों से बचाता है।

2. उत्पादन में वृद्धि

स्वस्थ पशु अधिक दूध, मांस और अन्य उत्पादों का उत्पादन करते हैं। रोगमुक्त पशुओं की उत्पादकता अधिक होती है।

3. आर्थिक हानि में कमी

रोग होने पर उपचार, दवाइयों तथा मृत्यु से किसानों को आर्थिक नुकसान होता है। टीकाकरण इन हानियों को काफी हद तक कम करता है।

4. रोगों के प्रसार को रोकना

यदि किसी क्षेत्र के अधिकांश पशुओं का टीकाकरण हो जाए तो रोगों के फैलने की संभावना बहुत कम हो जाती है।

टीकाकरण करते समय सावधानियां

1. केवल स्वस्थ पशुओं को ही टीका लगवाएँ।
2. टीकाकरण प्रशिक्षित पशु चिकित्सक से ही करवाएँ।
3. वैक्सीन को कोल्ड चेन में सुरक्षित रखें।
4. टीकाकरण के बाद पशु को कुछ समय तक आराम दें।
5. टीकाकरण का रिकॉर्ड अवश्य रखें।
6. नए पशु को झुंड में मिलाने से पहले उसका टीकाकरण सुनिश्चित करें।

निष्कर्ष

पशुओं का नियमित टीकाकरण पशुपालन का सबसे सरल, सस्ता और प्रभावी सुरक्षा उपाय है। यह पशुओं को घातक संक्रामक रोगों से बचाकर उनकी उत्पादकता बढ़ाता है तथा किसानों की आय में वृद्धि करता है। सरकार द्वारा चलाए जा रहे निःशुल्क टीकाकरण कार्यक्रमों का लाभ उठाकर किसान उपचार पर होने वाले खर्च को कम कर सकते हैं। प्रत्येक पशुपालक को निर्धारित टीकाकरण कार्यक्रम का पालन करते हुए अपने पशुओं का समय पर टीकाकरण अवश्य कराना चाहिए, क्योंकि रोग का उपचार करने से बेहतर है रोग की रोकथाम करना।

पशुओं का टीकाकरण कार्यक्रम

रोग का नाम	पहला टीका (उम्र)	बूस्टर/दोबारा टीका	उपयुक्त समय
खुरपका-मुंहपका (FMD)	4 माह	हर 6 माह	मार्च-अप्रैल एवं सितंबर-अक्टूबर
गलाघोटू (HS)	6 माह	साल में एक बार	मई-जून
ब्लैक क्वार्टर (BQ)	6 माह	साल में एक बार	मई-जून
ब्रूसेलोसिस	4-8 माह	जीवन में एक बार	कभी भी
एन्थ्रेक्स	6 माह	साल में एक बार	स्थान विशेष पर
रेबीज	काटने के तुरंत बाद	आवश्यकता अनुसार	-
पी.पी.आर. (PPR)	3 माह	3 वर्ष में एक बार	-
ई.टी. (ET)	3 माह	साल में एक बार	-

कुंज एजेंसीज

अपने भाई चप्पा सेठ की दुकान
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती है
प्रो. कार्तिक गुप्ता 9589545404
प्रो. हार्दिक गुप्ता 9644689094
भितरवार रोड, डबरा, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
10/2025-26

✍अनंत शर्मा, सिद्धार्थ मिश्रा

✍धीरज कुमार एवं बलवीर गौतम सस्य विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज-224229, अयोध्या (उ.प्र.)

फसल अवशेष प्रबंधन : पर्यावरण संरक्षण एवं मृदा स्वास्थ्य की आधारशिला

परिचय: फसल अवशेष वे पौधीय भाग हैं जो फसल कटाई के बाद खेत में शेष रह जाते हैं जैसे पुआल डंठल, पत्तियाँ और भूसी। भारत में प्रतिवर्ष लगभग 620 मिलियन टन फसल अवशेष उत्पन्न होते हैं, जिनमें धान और गेहूँ का योगदान लगभग 30 प्रतिशत है। अगली फसल की शीघ्र बुवाई के लिए कई क्षेत्रों में इन अवशेषों को जला दिया जाता है जिससे पर्यावरण और मृदा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत, वैज्ञानिक फसल अवशेष प्रबंधन मृदा उर्वरता बनाए रखने, प्रदूषण कम करने तथा कृषि को अधिक टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

कृषि एवं मृदा स्वास्थ्य में फसल अवशेषों का महत्व- फसल अवशेष पोषक तत्वों और जैविक पदार्थों के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इनके अपघटन से नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश तथा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व धीरे-धीरे मिट्टी में उपलब्ध होते हैं, जिससे रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है। विशेष रूप से दलहनी फसलों के अवशेष अपेक्षाकृत अधिक नाइट्रोजन प्रदान करते हैं। फसल अवशेष मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ और जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ाते हैं जिससे मिट्टी की संरचना, जलधारण क्षमता तथा सूक्ष्मजीवी गतिविधियों में सुधार होता है। इसके विपरीत, लगातार अवशेषों को हटाने या जलाने से मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता में गिरावट आ सकती है।

फसल अवशेष	नाइट्रोजन (%)	फॉस्फोरस (%)	पोटाश (%)
धान का पुआल	0.50-0.80	0.15-0.25	1.20-1.80
गेहूँ का भूसा	0.40-0.60	0.10-0.20	0.80-1.50
मक्का अवशेष	0.60-0.90	0.20-0.30	1.00-1.70
सोयाबीन अवशेष	1.20-1.80	0.25-0.40	1.20-2.00
मूंगफली अवशेष	1.00-1.50	0.20-0.35	1.00-1.80

अवशेषों के विघटन से बैक्टीरिया, कवक, केंचुए और अन्य लाभकारी जीवों को ऊर्जा एवं पोषण प्राप्त होता है। ये जीव पोषक तत्वों के चक्रण, मृदा निर्माण तथा पौधों की वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इसके अतिरिक्त, अवशेषों को मिट्टी में मिलाने से मृदा समुच्चयों का निर्माण बढ़ता है, जिससे वायु संचार और जल अवशोषण क्षमता में सुधार होता है।

पर्यावरणीय लाभ- फसल अवशेषों को जलाने से कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड जैसी ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन होता है जो जलवायु परिवर्तन को बढ़ावा देता है। साथ ही धुएँ और सूक्ष्म कणों के कारण वायु प्रदूषण बढ़ता है जिससे मानव और पशु स्वास्थ्य प्रभावित होता है। यदि अवशेषों का वैज्ञानिक प्रबंधन किया जाए तो वायु प्रदूषण में कमी लाई जा सकती है। खेत में अवशेषों की उपस्थिति कार्बन संचयन को बढ़ावा देती है, जिससे वायुमंडलीय कार्बन मिट्टी में संग्रहित होता है और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में सहायता मिलती है। फसल अवशेष मिट्टी को जल और वायु अपरदन से भी बचाते हैं। सतह पर मौजूद अवशेष वर्षा की बूंदों के सीधे प्रभाव को कम करते हैं तथा सतही बहाव को नियंत्रित करके उपजाऊ मिट्टी के संरक्षण में सहायता करते हैं।

संरक्षण कृषि में भूमिका- फसल अवशेष प्रबंधन संरक्षण कृषि का एक प्रमुख घटक है। संरक्षण कृषि न्यूनतम जुताई, स्थायी मृदा आवरण और विविध फसल चक्र के सिद्धांतों पर आधारित है। इस प्रणाली में अवशेषों को खेत में ही रहने दिया जाता है, जिससे मिट्टी का तापमान नियंत्रित रहता है, नमी संरक्षित रहती है तथा जैविक गतिविधियाँ बढ़ती हैं। दीर्घकालिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि अवशेष संरक्षण से मिट्टी में कार्बनिक कार्बन की मात्रा बढ़ती है और कृषि उत्पादकता में स्थायी सुधार होता है। इसके साथ ही यह एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का महत्वपूर्ण अंग है जो पोषक तत्वों की निरंतर उपलब्धता सुनिश्चित करता है।

फसल अवशेष प्रबंधन की प्रमुख विधियां

1.सतही अवशेष संरक्षण- इस विधि में अवशेषों को खेत की सतह पर मल्च के रूप में छोड़ दिया जाता है। इससे नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण और मृदा संरक्षण में सहायता मिलती है।

2.मिट्टी में समावेशन-अवशेषों को जुताई द्वारा मिट्टी में मिलाया जाता है जिससे उनका अपघटन तेज होता है और पोषक तत्व शीघ्र उपलब्ध होते हैं। हालांकि अत्यधिक जुताई से बचना आवश्यक है।

3.कम्पोस्ट निर्माण-फसल अवशेषों से उच्च गुणवत्ता वाली जैविक खाद तैयार की जा सकती है। कम्पोस्ट मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने तथा टिकाऊ कृषि को प्रोत्साहित करने का प्रभावी साधन है।

4.जैव-ऊर्जा उत्पादन-अवशेषों का उपयोग बायोगैस] बायोफ्यूल और बायोमास ऊर्जा उत्पादन में किया जा सकता है। इससे जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता कम होती है तथा किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।

5.पशु चारा एवं बिछौना-मिश्रित कृषि प्रणालियों में कई फसल अवशेष पशु चारे और बिछौने के रूप में उपयोग किए जाते हैं। पशुओं से प्राप्त गोबर पुनः जैविक खाद के रूप में खेतों में प्रयोग किया जा सकता है जिससे पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण संभव होता है।

प्रमुख चुनौतियां: फसल अवशेष प्रबंधन के सामने कई व्यावहारिक चुनौतियाँ हैं। किसानों में इसके दीर्घकालिक लाभों के प्रति पर्याप्त जागरूकता का अभाव है तथा समय और लागत बचाने के लिए कई किसान अवशेषों को जलाना अधिक सुविधाजनक समझते हैं। दूसरी प्रमुख चुनौती आधुनिक कृषि यंत्रों की उपलब्धता है। बड़े पैमाने पर अवशेष प्रबंधन के लिए हैप्पी सीडर, सुपर सीडर, मल्चर तथा स्ट्रॉ मैनेजमेंट सिस्टम जैसे उपकरणों की आवश्यकता होती है, जो सभी किसानों के लिए आसानी से उपलब्ध नहीं हैं। इसके अतिरिक्त] कई क्षेत्रों में अवशेष पशु चारे और घरेलू ईंधन के रूप में उपयोग किए जाते हैं जिससे उन्हें खेत में बनाए रखना कठिन हो जाता है।

भविष्य की संभावनाएं-जलवायु परिवर्तन, मृदा क्षरण और प्राकृतिक संसाधनों की कमी के बढ़ते प्रभावों को देखते हुए फसल अवशेष प्रबंधन का महत्व निरंतर बढ़ रहा है। संरक्षण कृषि, सटीक कृषि तथा जलवायु-स्मार्ट कृषि के साथ इसके समन्वय से कृषि उत्पादन को अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता है। रिमोट सेंसिंग, डिजिटल कृषि, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित निगरानी तथा मृदा कार्बन आकलन जैसी आधुनिक तकनीकों के उपयोग से किसानों को बेहतर निर्णय लेने में सहायता मिलेगी और अवशेष प्रबंधन की प्रभावशीलता बढ़ेगी।

निष्कर्ष- फसल अवशेष प्रबंधन टिकाऊ कृषि का एक महत्वपूर्ण आधार है। यह मृदा उर्वरता] नमी संरक्षण] जैविक गतिविधियों और कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि करता है जबकि वायु प्रदूषण और ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करता है। वैज्ञानिक एवं पर्यावरण-अनुकूल प्रबंधन अपनाकर किसान बेहतर उत्पादन, स्वस्थ मिट्टी और स्वच्छ पर्यावरण सुनिश्चित कर सकते हैं। भविष्य की खाद्य सुरक्षा, पर्यावरणीय स्थिरता और कृषि समृद्धि के लिए फसल अवशेषों का प्रभावी प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

नाडेप कम्पोस्ट उत्पादन तकनीकः सस्ती, टिकाऊ एवं लाभाकारी खेती का आधार

पंकज कुमार सिंह विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)
अमन सिंह विषय वस्तु विषेषज्ञ (जी.पी.बी)
डॉ. प्रवीण कुमार मौर्य विषय वस्तु विषेषज्ञ (उद्यान)
डॉ. बिनायक प्रताप शाही वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष
कृषि विज्ञान केन्द्र, मसौधा, अयोध्या, आ. न.दे. कृषि एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

नाडेप कम्पोस्ट उत्पादन तकनीक आज के समय में टिकाऊ कृषि की दिशा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावी पहल के रूप में उभरकर सामने आई है। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से जहाँ एक ओर मिट्टी की उर्वरता लगातार घट रही है, वहीं दूसरी ओर उत्पादन लागत बढ़ने से किसानों की आय पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। ऐसे परिदृश्य में नाडेप कम्पोस्ट तकनीक एक सस्ता, सुलभ और पर्यावरण-अनुकूल विकल्प प्रदान करती है। यह तकनीक मुख्य रूप से कृषि अपशिष्ट, गोबर, मिट्टी और पानी के संतुलित उपयोग के माध्यम से उच्च गुणवत्ता की जैविक खाद तैयार करने की प्रक्रिया है, जिससे न केवल खेत की उत्पादकता बढ़ती है, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी होता है।

नाडेप कम्पोस्ट का सबसे बड़ा महत्व मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने में है। इसमें उपस्थित जैविक कार्बन, सूक्ष्म पोषक तत्व और लाभकारी सूक्ष्मजीव मिट्टी की संरचना को सुधारते हैं, जिससे मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ती है और पौधों की जड़ों का विकास बेहतर होता है। इसके नियमित उपयोग से मिट्टी में पोषक तत्वों का संतुलन बना रहता है, जिससे लंबे समय तक फसल उत्पादन स्थिर और बेहतर बना रहता है। इसके साथ ही यह तकनीक रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता को कम करती है, जिससे किसानों को बाजार से महंगे खाद खरीदने की आवश्यकता कम पड़ती है और उनकी कृषि लागत में उल्लेखनीय कमी आती है।

पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से भी नाडेप कम्पोस्ट का विशेष महत्व है। खेतों में बचे हुए फसल अवशेषों को जलाने के बजाय इस तकनीक के माध्यम से उनका उपयोग किया जाता है, जिससे वायु प्रदूषण में कमी आती है और पर्यावरण संतुलन बना रहता है। साथ ही यह मिट्टी और जल स्रोतों को रासायनिक प्रदूषण से बचाने में भी सहायक है। नाडेप कम्पोस्ट मिट्टी में जैव विविधता को बढ़ाता है, जिससे लाभकारी जीवाणुओं और केंचुओं की संख्या में वृद्धि होती है, जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी को उपजाऊ बनाते हैं। यह तकनीक सतत कृषि (ैनेजंपदंइसम ।हतपबनसजनतम) को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बदलते जलवायु परिस्थितियों में जहाँ खेती के पारंपरिक तरीके चुनौतीपूर्ण होते जा रहे हैं, वहीं नाडेप कम्पोस्ट तकनीक किसानों को एक स्थायी और दीर्घकालिक समाधान प्रदान करती है। इसके उपयोग से मिट्टी की नमी लंबे समय तक बनी रहती है, जिससे सिंचाई की आवश्यकता कम होती है और जल संरक्षण में मदद मिलती है। आर्थिक दृष्टि से देखा जाए तो नाडेप कम्पोस्ट तकनीक किसानों के लिए लाभकारी सिद्ध होती है। यह स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों से तैयार की जाती है, जिससे अतिरिक्त निवेश की आवश्यकता नहीं होती। इसके उपयोग से फसल की गुणवत्ता में सुधार होता है, जिससे बाजार में बेहतर मूल्य प्राप्त होता है और किसानों की आय में वृद्धि होती है।

नाडेप कम्पोस्टः बेकार पड़े फसल अवशेष, मिट्टी, पानी एवं कम-से-कम गोबर का उपयोग कर अधिकाधिक मात्रा में खाद बनाने की एक उत्तम विधि है। इस विधि को महाराष्ट्र के यवतमाल जिले के किसान श्री नारायण राव पांडरी पांडे द्वारा विकसित किया गया है। इसलिए इस विधि से तैयार खाद को नाडेप कम्पोस्ट कहा जाता है।

कृषि विज्ञान केन्द्र अयोध्या पर स्थापित नाडेप कम्पोस्ट इकाई

नाडेप कम्पोस्ट की विशेषताएं

* इस विधि में समतल जमीन पर ईंटों का एक विशेष प्रकार का जालीदार ढ़ाँचा/घेरा बनाया जाता है।
* इस घेरे में ईंटों को सीमेंट से इस प्रकार जोड़ा जाता है कि ढ़ाँचों में वायु संचार हेतु पर्याप्त छेद हो।
* ढ़ाँचे की दीवारें 9-10 ईंच मोटी बनायी जाती है।
* ढ़ाँचे को उपरी तथा निचली दो पंक्तियों में किसी प्रकार का कोई छेद नहीं होता है।
* ढांचों की लम्बाई किसान भाई अपनी जरूरत के अनुसार थोड़ा बहुत घटा-बढ़ा सकते हैं।
* इस विधि में गाय के गोबर का ही उपयोग करना सर्वोत्तम होता है। इसमें खेतों एवं उद्यानों का कचरा जो कि सड़-गल सके एवं फसल अवशेष तथा मिट्टी और पानी की जरूरत होती है।
* इस विधि द्वारा कम्पोस्ट 90-110 दिनों में बनकर तैयार हो जाता है।
* इस प्रकार तैयार कम्पोस्ट में 0.75-1.75 प्रतिशत नत्रजन, 0.7-0.9 प्रतिशत फास्फोरस तथा 1.2-1.4 प्रतिशत पोटाश के साथ अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं।

ढांचा भरने की विधि

* ऊपर बताये गये आकार के ढ़ाँचे में कम्पोस्ट तैयार करने के लिए खेतों एवं उद्यानों का कचरा जैसे फसलों के डंढ़ल, पत्ती, छाल/तना, जड़ें आदि 1400-1500 किलोग्राम, गोबर 60-100 किलोग्राम, सूखी मिट्टी 1800 किलोग्राम एवं पानी 1500-2000 लीटर; मौसम के अनुसार जरूरत पड़ती है।
* ढ़ाँचा को भरने से पहले 4-5 किग्रा गोबर को 10-15 लीटर पानी में घोलकर ढ़ाँचे के सतह/फर्श एवं अंदर के दीवारों पर अच्छी तरह छिड़क देना चाहिए।
* इसके बाद 200-210 किलोग्राम कचरे की 8-10 इन्च मोटी एक तह बिछा देना चाहिए।
* पुनः इस प्रथम तह पर 5.0 किलोग्राम गोबर या बायोगैस सलरी को 125-150 लीटर पानी में घोलकर अच्छी तरह छिड़क देना चाहिए।
* इसके बाद दूसरी तह सूखी मिट्टी जिसमें काँच/पत्थर के टुकड़े या प्लास्टिक आदि न हो, की 200-225 किलोग्राम मात्रा की तह बिछा दें।
* अब मिट्टी की सतह पर समुचित पानी की मात्रा का छिड़काव कर दें जिससे गीलापन बना रहे।
* इस प्रक्रिया को तब तक दुहराते रहें जब तक कि पूरा ढ़ाँचा भर न जाए। वैसे लगभग 6-7 बार यह प्रक्रिया दोहराने पर ढ़ाँचा भर जाता है।
* ढ़ाँचे की भराई 1 से 2 फीट ऊपर तक करनी चाहिए। * इस प्रकार से ढ़ाँचे को भरने के बाद इसके ऊपर से 3 से 4 इन्च मोटी मिट्टी एवं गाय के गोबर से लिपाई कर ढ़ाँचे की छत को बीच में ऊँचा एवं दोनों तरफ ढ़लुआ रखा जाता है जिससे वर्षा का पानी ऊपर से अंदर न जा सके। * चूंकि ढ़ाँचा को भरने हेतु आवश्यक सभी सामान एकत्र करना एक दिन में संभव नहीं होता है, अतः अच्छा यह होगा कि सभी सामान 8-10 दिनों तक किसी छायेदार स्थान पर एकत्र कर लें, फिर भराई का काम एक ही दिन में पूरा कर लें। * लगभग 40-45 दिनों बाद ढ़ाँचा करीब 10-12 ईंच तक धँस जायेगा और ऊपर के सतह पर दरारें दिखने लगेगी। * ऐसी अवस्था में ढ़ाँचा को पुनः उपरोक्त बताई गई विधि से भरकर ऊपर से मिट्टी-गोबर के मिश्रण से लिपाई कर दें। * कम्पोस्ट अच्छा बने, इसके लिए यह जरूरी है कि ढ़ाँचे में समुचित नमी उपलब्ध रहे। * अतः दोबारा भरते समय गोबर के घोल से ढ़ाँचे के कचरे को भलीभाँति तर कर दें।
* इस प्रकार 90-110 दिनों में अच्छी कम्पोस्ट बनकर तैयार हो जाती है।
* अनुमानतः उपरोक्त आकार के एक ढ़ाँचे से करीब 35 क्विंटल कम्पोस्ट प्राप्त होता है। इसमें कुछ करीब 5 क्विंटल, अधसड़ी हो सकती है जिसे प्रयोग में लाने से पहले अलग कर देना चाहिए।

कम्पोस्ट की गुणवत्ता बढ़ाना

* कचरे एवं मिट्टी की तह के बीच एक हल्की तह, 3-4 मुट्ठी भर, रॉक-फॉस्फेट या सिंगल सुपर फास्फेट के बिछा देने से कम्पोस्ट की गुणवत्ता काफी बढ़ जाती है।
* एक ढांचे हेतु सिंगल सुपर फास्फेट की 3-4 किग्रा मात्रा पर्याप्त होती है।
* इसके अतिरिक्त ढांचे के भरने के 75-80 दिनों बाद ढांचे की छत पर बाँस की सहायता से नीचे की सतह तक जगह-जगह पर छिद्र कर दें।
* इन छिद्रों में 500 ग्राम पी.एस.बी, 500 ग्राम एजेटोबैक्टर, 500 ग्राम राइजोबियम को 23 लीटर पानी में घोल बनाकर डाल दें एवं पुनः इन छिद्रों को लीपकर बंद कर छोड़ दें। इससे कम्पोस्ट की गुणवत्ता बढ़ने के साथ-साथ कम्पोस्ट बनने की प्रक्रिया में भी तेजी आती है।

हालांकि इस तकनीक के कुछ सीमित पक्ष भी हैं, जैसे प्रारंभ में टैंक निर्माण की आवश्यकता और खाद बनने में 3 से 4 महीने का समय लगना, लेकिन इसके दीर्घकालिक लाभ इन चुनौतियों की तुलना में कहीं अधिक हैं। उचित प्रशिक्षण और जागरूकता के माध्यम से इन समस्याओं को आसानी से दूर किया जा सकता है।

निष्कर्ष

नाडेप कम्पोस्ट उत्पादन तकनीक केवल एक खाद बनाने की विधि नहीं है, बल्कि यह एक समग्र कृषि प्रणाली का हिस्सा है, जो मिट्टी की सेहत, पर्यावरण संरक्षण और किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। वर्तमान समय में जब टिकाऊ और जैविक खेती की आवश्यकता बढ़ती जा रही है, तब नाडेप कम्पोस्ट तकनीक का व्यापक स्तर पर अपनाया जाना अत्यंत आवश्यक हो गया है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

✍ **अभिषेक सिंह** सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

✍ **डॉ. ललित कुमार सनोदिया**

✍ **डॉ. अखिलेश कुमार सिंह, डॉ. अवनीश यादव**

सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

धान की नर्सरी प्रबंधन : स्वस्थ एवं गुणवत्तापूर्ण पौध उत्पादन की आधारशिला

सारांश- धान भारत की प्रमुख खाद्यान्न फसल है, जिसकी उत्पादकता काफी हद तक नर्सरी में तैयार पौधों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। स्वस्थ, सशक्त एवं रोगमुक्त पौधों से मुख्य खेत में बेहतर स्थापना, अधिक कल्ले (Tillers) तथा उच्च उपज प्राप्त होती है। वैज्ञानिक नर्सरी प्रबंधन में उचित किस्म चयन, बीज उपचार, भूमि तैयारी, संतुलित पोषण, सिंचाई तथा रोग-कीट प्रबंधन का विशेष महत्व है। आधुनिक तकनीकों जैसे मैट नर्सरी एवं धान की यांत्रिक रोपाई हेतु ट्रे नर्सरी का उपयोग गुणवत्तापूर्ण पौध उत्पादन में सहायक सिद्ध हो रहा है।

मुख्य शब्द- धान, नर्सरी प्रबंधन, पौध उत्पादन, बीज उपचार, मैट नर्सरी, यांत्रिक रोपाई।

परिचय- धान (Oryza sativa L.) विश्व की आधी से अधिक जनसंख्या का प्रमुख भोजन है। भारत विश्व के प्रमुख धान उत्पादक देशों में से एक है। धान की रोपाई वाली खेती में नर्सरी का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि मुख्य खेत में रोपाई हेतु पौधे पहले नर्सरी में तैयार किए जाते हैं। नर्सरी में तैयार स्वस्थ एवं सुदृढ़ पौधे अधिक जीवित रहते हैं तथा बेहतर उत्पादन देते हैं।

धान की नर्सरी का महत्व * कम क्षेत्र में अधिक पौध तैयार करना। * पौधों की प्रारंभिक अवस्था में बेहतर देखभाल। * बीज की बचत। * खरपतवार नियंत्रण में सुविधा। * मुख्य खेत की तैयारी के लिए अतिरिक्त समय। * स्वस्थ एवं समान आयु की पौध उपलब्धता।

धान की नर्सरी के प्रकार

1. **सूखी नर्सरी (Dry Bed Nursery)-** * सिंचित क्षेत्रों में प्रचलित। * अच्छी जल निकासी वाली भूमि में तैयार की जाती है। * वर्षा से पहले पौध तैयार करने हेतु उपयोगी।

2. **गीली नर्सरी (Wet Bed Nursery)-** * अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में। * कीचड़युक्त भूमि में तैयार की जाती है। * पूर्वी भारत में अधिक प्रचलित।

3. **धाप नर्सरी (Dapog Nursery)-** * कम स्थान में पौध उत्पादन। * फिलीपींस में विकसित तकनीक। * यांत्रिक रोपाई के लिए उपयुक्त।

4. **मैट नर्सरी (Mat Nursery)-** * राइस ट्रांसप्लांटर मशीन हेतु। * पौधे चटाई (Mat) के रूप में तैयार किए जाते हैं।

नर्सरी हेतु भूमि का चयन- * उपजाऊ दोमट मिट्टी। * सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था। * समतल भूमि। * खरपतवार एवं रोगों से मुक्त क्षेत्र। * मुख्य खेत के निकट स्थान।

बीज दर	**(Seed Rate)**
धान की किस्म	बीज दर
सामान्य किस्में	30-40 किग्रा/हेक्टेयर
संकर (Hybrid) धान	10-15 किग्रा/हेक्टेयर

1 हे. मुख्य खेत के लिए लगभग 800-1000 वर्गमीटर नर्सरी क्षेत्र पर्याप्त होता है।

बीज उपचार

नमक घोल परीक्षण * 1 लीटर पानी में लगभग 300 ग्राम नमक घोलें। * बीज डालें। * तैरने वाले बीज निकाल दें। * नीचे बैठे बीज उपयोग करें।

फफूंदनाशी उपचार- * कार्बेन्डाजिम ज्ञ 2 ग्राम/किग्रा बीज अथवा * थायरम @ 3 ग्राम/किग्रा बीज

जैविक उपचार- * ट्राइकोडर्मा विरिडी @ 10 ग्राम/किग्रा बीज

बीज अंकुरण- 1.बीजों को 24 घंटे पानी में भिगोएँ। 2. 24-48 घंटे बोरी में रखें। 3.अंकुर निकलने पर बुवाई करें।

नर्सरी की तैयारी

क्यारी का आकार

* चौड़ाई- 1.0-1.5 मीटर, * लंबाई- 8-10 मीटर, * ऊँचाई- 10-15 सेमी

खाद एवं उर्वरक

प्रति 100 वर्गमीटर नर्सरी

* गोबर की खाद : 100-150 किग्रा, * यूरिया : 1.0 किग्रा

* SSP : 2.0 किग्रा, * MOP : 0.5 किग्रा

बुवाई विधि * अंकुरित बीजों को समान रूप से छिड़कें। * बीजों को अधिक गहराई में न दबाएँ। * हल्की मिट्टी या कम्पोस्ट की परत दें।

सिंचाई प्रबंधन

बुवाई के बाद- * प्रारंभ में हल्की सिंचाई। * अंकुरण तक पर्याप्त नमी बनाए रखें।

बाद की अवस्था- * 2-3 सेमी जल स्तर बनाए रखें। * जलभराव से बचें।

पोषण प्रबंधन

नाइट्रोजन- * बुवाई के 10-12 दिन बाद यूरिया का छिड़काव।

सूक्ष्म पोषक तत्व * जिंक की कमी होने पर 0.5% ZnSO4 घोल का छिड़काव।

रोग प्रबंधन- आर्द्र गलन (Damping Off)

लक्षण

* पौधे गिरकर मर जाते हैं। * तना आधार से सड़ जाता है।

नियंत्रण * बीज उपचार। * जल निकास की उचित व्यवस्था। * ट्राइकोडर्मा का प्रयोग।

ब्लास्ट रोग

लक्षण- * पत्तियों पर हीरे के आकार के धब्बे।

नियंत्रण * ट्राइसाइक्लाजोल का छिड़काव। * संतुलित नाइट्रोजन उपयोग।

कीट प्रबंधन

पत्ती लपेटक (Leaf Folder)

* पत्तियाँ मुड़ जाती हैं। भूरा फुदका (Brown Plant Hopper) * रस चूसकर पौधों को नुकसान पहुँचाता है।

नियंत्रण- * प्रकाश प्रपंच (Light Trap) * अनुशंसित कीटनाशियों का प्रयोग

पौध उखाड़ना एवं रोपाई- * पौध की आयु 20-25 दिन (सामान्य किस्में) * 15-20 दिन (संकर धान) * पौध उखाड़ने से पहले हल्की सिंचाई करें। * स्वस्थ एवं समान पौधों का चयन करें।

अच्छी धान पौध की विशेषताएँ- * ऊँचाई 15-20 सेमी * 4-5 पत्तियाँ * सफेद एवं स्वस्थ जड़ें * रोग एवं कीट मुक्त * मोटा एवं मजबूत तना

आधुनिक तकनीकें

मैट नर्सरी * यांत्रिक रोपाई के लिए उपयुक्त। * श्रम लागत कम।

ट्रे नर्सरी * समान पौध वृद्धि। * उच्च गुणवत्ता की पौध।

SRI पद्धति- * 8-12 दिन की युवा पौध का उपयोग।

* अधिक कल्ले एवं अधिक उपज।

निष्कर्ष- धान की उच्च उत्पादकता के लिए स्वस्थ एवं गुणवत्तापूर्ण पौध का उत्पादन अत्यंत आवश्यक है। उचित बीज उपचार, संतुलित पोषण, समय पर सिंचाई, रोग-कीट नियंत्रण तथा वैज्ञानिक नर्सरी प्रबंधन से मजबूत पौधे तैयार किए जा सकते हैं। गुणवत्तापूर्ण नर्सरी धान उत्पादन की सफलता की प्रथम एवं सबसे महत्वपूर्ण सीढ़ी है।

शीतला कृषि सेवा केन्द्र

बंटी सिंह गुर्जर (बामौर वाले)

99267-31867, 83055-69923

खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता

हमारे यहां धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयां उचित मूल्य पर मिलती है।

पता : पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा ग्वालियर (म.प्र.)

01/205-26

✍ **आकांक्षा** शोध छात्रा, सेंटर ऑफ फूड टेक्नोलॉजी इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज- 211 002

जलवायु परिवर्तन का खाद्य सुरक्षा एवं खाद्य प्रणाली पर प्रभाव

प्रस्तावना-जलवायु परिवर्तन वर्तमान समय की सबसे गंभीर वैश्विक चुनौतियों में से एक है। पृथ्वी के औसत तापमान में निरंतर वृद्धि, वर्षा के पैटर्न में बदलाव, सूखा, बाढ़, चक्रवात तथा अन्य चरम मौसमीय घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित कर रही है। खाद्य उत्पादन एवं खाद्य सुरक्षा भी इससे अछूते नहीं हैं। विश्व की बढ़ती जनसंख्या को पर्याप्त, सुरक्षित एवं पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराना पहले से ही एक चुनौती है, जबकि जलवायु परिवर्तन इस समस्या को और अधिक जटिल बना रहा है।

खाद्य प्रणाली में कृषि उत्पादन, प्रसंस्करण, भंडारण, परिवहन, वितरण तथा उपभोग तक की संपूर्ण प्रक्रिया सम्मिलित होती है। जलवायु परिवर्तन इन सभी चरणों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन, गुणवत्ता, उपलब्धता तथा कीमतों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारण- जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों जैसे कार्बन डाइऑक्साइड , मीथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड की बढ़ती मात्रा है। औद्योगीकरण, जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक उपयोग, वनों की कटाई, कृषि गतिविधियाँ तथा शहरीकरण इसके प्रमुख कारण हैं। इन गैसों के कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ता है, जिससे मौसम चक्र असंतुलित हो जाता है।

खाद्य उत्पादन पर प्रभाव

1. फसल उत्पादकता में कमी- तापमान में वृद्धि फसलों की वृद्धि एवं विकास प्रक्रिया को प्रभावित करती है। गेहूँ, धान, मक्का तथा दालों जैसी प्रमुख फसलों की उत्पादकता उच्च तापमान के कारण घट सकती है। अत्यधिक गर्मी पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्षमता को कम कर देती है तथा फूल एवं दानों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

2. वर्षा पैटर्न में परिवर्तन- जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा का वितरण अनिश्चित होता जा रहा है। कहीं अत्यधिक वर्षा होती है तो कहीं लंबे समय तक सूखे की स्थिति बनी रहती है। इससे सिंचाई व्यवस्था प्रभावित होती है तथा कृषि उत्पादन में अस्थिरता आती है। विशेष रूप से वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों में किसानों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

3. कीट एवं रोगों का प्रकोप- तापमान और आर्द्रता में परिवर्तन से विभिन्न कीटों, रोगजनकों तथा खरपतवारों का प्रसार बढ़ जाता है। इससे फसलों को अधिक क्षति पहुँचती है और किसानों को कीटनाशकों का अधिक उपयोग करना पड़ता है। इससे उत्पादन लागत बढ़ने के साथ-साथ पर्यावरणीय समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं।

4. मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट- अत्यधिक वर्षा, बाढ़ तथा सूखे की घटनाएँ मिट्टी की उर्वरता को प्रभावित करती हैं। मृदा अपरदन , कार्बनिक पदार्थों की कमी तथा लवणता में वृद्धि जैसी समस्याएँ कृषि उत्पादकता को कम करती हैं।

खाद्य गुणवत्ता एवं पोषण पर प्रभाव- जलवायु परिवर्तन केवल खाद्य उत्पादन को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता एवं पोषण मूल्य को भी प्रभावित करता है।

उच्च वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड स्तर के कारण कई फसलों में प्रोटीन, जिंक, आयरन तथा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा में कमी देखी गई है। इससे कुपोषण की समस्या और गंभीर हो सकती है, विशेषकर विकासशील देशों में जहाँ बड़ी आबादी अपनी पोषण आवश्यकताओं के लिए अनाजों पर निर्भर रहती है। फल एवं सब्जियों की गुणवत्ता भी तापमान और जल उपलब्धता में परिवर्तन से प्रभावित होती है। इससे स्वाद, रंग, बनावट तथा शेल्फ लाइफ में कमी आ सकती है।

पशुपालन एवं दुग्ध उत्पादन पर प्रभाव- भारत जैसे देशों में पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा है। जलवायु परिवर्तन का पशुधन पर भी व्यापक प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक तापमान के कारण पशुओं में ऊष्मा तनाव बढ़ता है, जिससे उनकी आहार ग्रहण क्षमता कम हो जाती है। परिणामस्वरूप दूध उत्पादन, प्रजनन क्षमता तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रभावित होती है। गर्मी के कारण पशुओं में विभिन्न संक्रामक रोगों की संभावना भी बढ़ जाती है। चारे की उपलब्धता पर भी जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है। सूखा और अनियमित वर्षा के कारण हरे चारे का उत्पादन कम हो सकता है, जिससे पशुपालन की लागत बढ़ जाती है।

मत्स्य उत्पादन पर प्रभाव- जलवायु परिवर्तन का प्रभाव मत्स्य क्षेत्र पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। समुद्री जल के तापमान में वृद्धि, महासागरों का अम्लीकरण तथा जल स्तर में परिवर्तन मछलियों की विभिन्न प्रजातियों के वितरण एवं प्रजनन को प्रभावित करते हैं।

बाढ़ और चक्रवात जैसी घटनाएँ मत्स्य पालन अवसंरचना को नुकसान पहुँचाती हैं। इससे मछुआरों की आजीविका तथा खाद्य सुरक्षा दोनों प्रभावित होती हैं।

खाद्य प्रसंस्करण एवं भंडारण पर प्रभाव- उच्च तापमान और आर्द्रता खाद्य पदार्थों के भंडारण एवं प्रसंस्करण को प्रभावित करते हैं। अनाज, फल, सब्जियाँ तथा डेयरी उत्पाद अधिक तेजी से खराब हो सकते हैं। इससे खाद्य अपव्यय बढ़ता है। भंडारण के दौरान फफूंद एवं माइकोटॉक्सिन का विकास भी बढ़ सकता है, जिससे खाद्य सुरक्षा संबंधी जोखिम उत्पन्न होते हैं। खाद्य उद्योग को इन चुनौतियों से निपटने के लिए अधिक ऊर्जा तथा संसाधनों की आवश्यकता होती है।

खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव- खाद्य सुरक्षा के चार प्रमुख आयाम हैं–उपलब्धता, पहुँच, उपयोगिता तथा स्थिरता। जलवायु परिवर्तन इन सभी आयामों को प्रभावित करता है।

1.उपलब्धता : उत्पादन में कमी के कारण खाद्य पदार्थों की उपलब्धता प्रभावित होती है।

2.पहुँच : खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि से गरीब एवं कमजोर वर्गों की पहुँच सीमित हो जाती है।

3.उपयोगिता : पोषण गुणवत्ता में गिरावट से स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ बढ़ती हैं।

4.स्थिरता : चरम मौसमीय घटनाओं के कारण खाद्य आपूर्ति श्रृंखला बाधित होती है।

भारत में जलवायु परिवर्तन और खाद्य चुनौतियां- भारत की लगभग आधी आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। देश की कृषि प्रणाली मानसून पर आधारित होने के कारण जलवायु परिवर्तन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है। सूखा, बाढ़, हीट वेव तथा अनियमित वर्षा जैसी घटनाएँ कृषि उत्पादन को प्रभावित कर रही हैं। गेहूँ, धान, गन्ना तथा दलहनी फसलों की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है। इसके अतिरिक्त हिमालयी क्षेत्रों में ग्लेशियरों के पिघलने से जल संसाधनों पर भी दीर्घकालिक प्रभाव पड़ सकता है।

अनुकूलन एवं शमन उपाय

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं—

कृषि क्षेत्र में

* जलवायु-सहिष्णु फसल किस्मों का विकास एवं उपयोग।
* सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों का विस्तार।
* फसल विविधीकरण को बढ़ावा।
* संरक्षण कृषि का अपनाना।
* मौसम आधारित कृषि परामर्श सेवाओं का उपयोग।

पशुपालन क्षेत्र में

* ऊष्मा-सहिष्णु नस्लों का विकास।
* पशुओं के लिए उचित आवास एवं शीतलन व्यवस्था।
* गुणवत्तापूर्ण चारा उत्पादन को बढ़ावा।

खाद्य प्रणाली में

* बेहतर भंडारण एवं कोल्ड चेन सुविधाओं का विकास।
* खाद्य अपव्यय में कमी।
* टिकाऊ खाद्य प्रसंस्करण तकनीकों का उपयोग।

पर्यावरण संरक्षण हेतु

* वृक्षारोपण एवं वनों का संरक्षण।
* नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग।
* ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी।

निष्कर्ष- जलवायु परिवर्तन खाद्य उत्पादन, गुणवत्ता, पोषण, भंडारण तथा खाद्य सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती बनकर उभर रहा है। बढ़ता तापमान, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ तथा अन्य चरम मौसमीय घटनाएँ वैश्विक खाद्य प्रणाली को प्रभावित कर रही हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देशों में इसका प्रभाव और अधिक गंभीर हो सकता है। इसलिए आवश्यक है कि वैज्ञानिक, नीति निर्माता, किसान एवं समाज मिलकर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने तथा टिकाऊ खाद्य प्रणालियों के विकास की दिशा में कार्य करें। जलवायु-स्मार्ट कृषि, संसाधनों का सतत उपयोग तथा पर्यावरण संरक्षण के माध्यम से ही भविष्य की पीढ़ियों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

भविष्य की खाद्य प्रणालियां एवं खाद्य परिवर्तन में प्रसार सेवाओं की भूमिका

शाडिण्जय सिंह, सुचिस्मिता साहू,
संदीप चौहान (शोध छात्र) कृषि प्रसार शिक्षा विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

स्नेहा सिंह सहायक प्राध्यापक, कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शामली, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना: वर्तमान समय में विश्व की खाद्य प्रणाली अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है. बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, कुपोषण तथा खाद्य असमानता जैसी समस्याएँ मानव जीवन और कृषि क्षेत्र को प्रभावित कर रही हैं. संयुक्त राष्ट्र के अनुसार आने वाले वर्षों में विश्व की जनसंख्या लगभग 10 अरब तक पहुँच सकती है, जिसके कारण खाद्य मांग में अत्यधिक वृद्धि होगी. ऐसी स्थिति में केवल अधिक उत्पादन करना ही पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि ऐसी खाद्य प्रणाली विकसित करना आवश्यक होगा जो टिकाऊ, पोषण-संवेदनशील, पर्यावरण अनुकूल और सभी वर्गों के लिए सुलभ हो. इसी व्यवस्था को "भविष्य की खाद्य प्रणाली" कहा जाता है. भविष्य की खाद्य प्रणाली का उद्देश्य केवल भोजन उपलब्ध कराना नहीं, बल्कि मानव स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण, किसानों की आय और सामाजिक समानता को भी सुनिश्चित करना है. खाद्य परिवर्तन इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत खाद्य उत्पादन, प्रसंस्करण, भंडारण, वितरण और उपभोग की पूरी प्रणाली में सुधार किया जाता है. इस परिवर्तन को सफल बनाने में कृषि प्रसार सेवाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है. प्रसार सेवाएँ वैज्ञानिक अनुसंधान और किसानों के बीच एक सेतु का कार्य करती हैं. ये किसानों तक नई तकनीक, आधुनिक कृषि पद्धतियाँ और आवश्यक जानकारी पहुँचाकर कृषि विकास तथा खाद्य सुरक्षा में योगदान देती हैं.

भविष्य की खाद्य प्रणालियां-भविष्य की खाद्य प्रणाली ऐसी प्रणाली है जिसमें खाद्य उत्पादन और उपभोग इस प्रकार किया जाए कि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताएँ पूरी हों तथा भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी संसाधन सुरक्षित रहें. यह प्रणाली कृषि, पर्यावरण, पोषण और अर्थव्यवस्था के बीच संतुलन स्थापित करने पर आधारित होती है.

भविष्य की खाद्य प्रणालियों की विशेषताएँ

1. **टिकाऊ कृषि प्रणाली**-भविष्य की खाद्य प्रणाली का प्रमुख आधार टिकाऊ कृषि है. इसमें भूमि, जल, वनस्पति और जैव विविधता का संरक्षण करते हुए कृषि उत्पादन किया जाता है. रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग को कम करके जैविक एवं प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दिया जाता है.

2. **पोषण आधारित कृषि:** वर्तमान में कई देशों में भोजन की उपलब्धता होने के बावजूद कुपोषण की समस्या बनी हुई है. इसलिए भविष्य की खाद्य प्रणाली में केवल अनाज उत्पादन पर नहीं, बल्कि पोषणयुक्त फसलों जैसे दालें, फल, सब्जियाँ और मोटे अनाज के उत्पादन पर भी विशेष ध्यान दिया जाएगा.

3. **जलवायु-स्मार्ट कृषि:** जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, बाढ़ और तापमान वृद्धि जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं. भविष्य की खाद्य प्रणाली में ऐसी कृषि तकनीकों को अपनाया जाएगा जो जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम कर सकें. उदाहरण के लिए कम पानी वाली फसलें, सूखा सहनशील बीज और जल संरक्षण तकनीकें.

4. **डिजिटल और स्मार्ट कृषि:** तकनीकी विकास के साथ कृषि क्षेत्र में भी डिजिटल तकनीकों का उपयोग बढ़ रहा है. भविष्य की खाद्य प्रणाली में ड्रोन, सेंसर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), मोबाइल ऐप और इंटरनेट आधारित सेवाओं का उपयोग अधिक होगा. इससे उत्पादन क्षमता बढ़ेगी तथा किसानों को सही समय पर जानकारी प्राप्त होगी.

5. **खाद्य सुरक्षा और गुणवत्ता:** भविष्य में लोगों को सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण भोजन उपलब्ध कराना अत्यंत आवश्यक होगा. खाद्य पदार्थों में रासायनिक अवशेषों को कम करने तथा स्वच्छ उत्पादन प्रणाली को बढ़ावा दिया जाएगा.

6. **स्थानीय खाद्य प्रणाली:** स्थानीय स्तर पर खाद्य उत्पादन और वितरण को बढ़ावा देने से परिवहन लागत कम होगी और किसानों को बेहतर बाजार उपलब्ध होगा. इससे पर्यावरण प्रदूषण भी कम होगा.

खाद्य परिवर्तन- खाद्य परिवर्तन का अर्थ है खाद्य प्रणाली में व्यापक सुधार लाना ताकि उत्पादन से लेकर उपभोग तक की पूरी प्रक्रिया अधिक प्रभावी, टिकाऊ और पोषण-संवेदनशील बन सके.

खाद्य परिवर्तन की आवश्यकता

1. **बढ़ती जनसंख्या**- विश्व की बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्य मांग लगातार बढ़ रही है. यदि वर्तमान कृषि प्रणाली में सुधार नहीं किया गया तो भविष्य में खाद्य संकट उत्पन्न हो सकता है.

2. **कुपोषण और स्वास्थ्य समस्याएं**-आज भी विश्व की बड़ी आबादी पौष्टिक भोजन से वंचित है. दूसरी ओर जंक फूड और असंतुलित भोजन के कारण मोटापा और अन्य बीमारियाँ बढ़ रही हैं.

3. **पर्यावरण संरक्षण**- रासायनिक कृषि के कारण मिट्टी की उर्वरता कम हो रही है तथा जल और वायु प्रदूषण बढ़ रहा है. इसलिए पर्यावरण अनुकूल खाद्य प्रणाली की आवश्यकता है.

4. **किसानों की आय में वृद्धि**- खाद्य परिवर्तन के माध्यम से किसानों को आधुनिक तकनीक, बेहतर बाजार और मूल्य संवर्धन की सुविधा देकर उनकी आय बढ़ाई जा सकती है.

खाद्य परिवर्तन में कृषि प्रसार सेवाओं की भूमिका- कृषि प्रसार सेवाएँ कृषि विकास की रीढ़ मानी जाती हैं. इनका मुख्य उद्देश्य किसानों तक वैज्ञानिक ज्ञान और आधुनिक तकनीकों को पहुँचाना है. भविष्य की खाद्य प्रणाली को सफल बनाने में प्रसार सेवाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं.

1. **नई तकनीकों का प्रसार**-प्रसार कार्यकर्ता किसानों को उन्नत बीज, आधुनिक कृषि यंत्र, जैविक खेती, ड्रिप सिंचाई और आधुनिक उत्पादन तकनीकों की जानकारी प्रदान करते हैं. इससे कृषि उत्पादन और गुणवत्ता दोनों में सुधार होता है.

2. **जलवायु-स्मार्ट कृषि को बढ़ावा**-प्रसार सेवाएँ किसानों को जल संरक्षण, फसल विविधीकरण और मौसम आधारित कृषि पद्धतियों के बारे में प्रशिक्षण देती हैं. इससे किसान जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना बेहतर ढंग से कर पाते हैं.

3. **पोषण संवेदनशील कृषि का प्रचार**- प्रसार सेवाएँ किसानों को केवल अनाज उत्पादन तक सीमित न रहकर फल, सब्जियाँ, दालें और पोषण वाटिका अपनाने के लिए प्रेरित करती हैं. इससे ग्रामीण परिवारों के पोषण स्तर में सुधार होता है.

4. **जैविक एवं प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहन**- आज के समय में जैविक उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ रही है. प्रसार सेवाएँ किसानों को जैविक खाद, वर्मी कम्पोस्ट तथा प्राकृतिक कीटनाशकों के उपयोग के बारे में प्रशिक्षण देती हैं.

5. **डिजिटल कृषि का विकास**- डिजिटल तकनीकों ने कृषि प्रसार को अधिक प्रभावी बना दिया है. मोबाइल फोन, व्हाट्सएप, किसान ऐप, ऑनलाइन प्रशिक्षण और सोशल मीडिया के माध्यम से किसानों तक शीघ्र जानकारी पहुँचाई जाती है.

6. **किसानों की क्षमता निर्माण**-प्रसार सेवाएं प्रशिक्षण कार्यक्रम, किसान मेले, प्रदर्शन और कार्यशालाओं के माध्यम से किसानों के ज्ञान और कौशल का विकास करती हैं.

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

सिद्धार्थ मिश्रा, अनंत शर्मा, बलवीर गौतम
शोध छात्र सस्य विज्ञान संकाय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

रितु यादव सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी और विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

सतत् कृषि विकास में फसल चक्र का महत्व और उत्पादकता में वृद्धि

प्रस्तावना: भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ लगभग 55-60 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। बढ़ती जनसंख्या, घटते प्राकृतिक संसाधन, जल संकट तथा मृदा उर्वरता में कमी जैसी समस्याओं के कारण कृषि को टिकाऊ बनाना वर्तमान समय की आवश्यकता बन गया है। इसी संदर्भ में ÷सतत् कृषि विकास÷ की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। सतत् कृषि का उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए भूमि, जल एवं पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण करना है। सतत कृषि विकास में फसल चक्र एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक तकनीक है। इसमें एक ही खेत में अलग-अलग मौसमों या वर्षों में विभिन्न प्रकार की फसलें क्रमबद्ध तरीके से उगाई जाती हैं। उदाहरण के लिए गेहूँ के बाद दलहनी फसल, धान के बाद तिलहनी फसल अथवा मक्का के बाद सब्जी फसल लगाई जाती है। फसल चक्र वह कृषि प्रणाली है जिसमें किसी खेत में निश्चित क्रम से विभिन्न प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं ताकि मिट्टी की उर्वरता बनी रहे और उत्पादन में वृद्धि हो।

भारत में प्रमुख फसल चक्र

उत्तर भारत	मध्य भारत	शुष्क क्षेत्र	दक्षिण भारत
1. धान → गेहूँ → मूंग	1. सोयाबीन → गेहूँ	1. बाजरा → चना	1. धान → मूंगफली
2. गन्ना → गेहूँ → चारा	2. मक्का → चना	2. ज्वार → सरसों	2. कपास → दालें

सतत् कृषि विकास की अवधारणा-'सतत् कृषि विकास का अर्थ' ऐसी कृषि प्रणाली से है, जो वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करे। फसल चक्र इस उद्देश्य को प्राप्त करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके प्रमुख बिंदुओं का विवरण निम्न प्रकार है -

1. **प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण** - फसल चक्र भूमि, जल एवं जैव संसाधनों के संतुलित उपयोग को बढ़ावा देता है। लगातार एक ही फसल बोने से भूमि के विशेष पोषक तत्व समाप्त हो जाते हैं, जबकि अलग-अलग फसलें विभिन्न पोषक तत्वों का उपयोग करती हैं। इससे भूमि की गुणवत्ता बनी रहती है तथा प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन नहीं होता।

2. **मृदा की उर्वरता बनाए रखना** - दलहनी फसलें जैसे चना, अरहर एवं मूंग, राइजोबियम जीवाणुओं की सहायता से वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करती हैं। इससे मिट्टी में जैविक पदार्थ एवं पोषक तत्व बढ़ते हैं। फसल चक्र अपनाने से मृदा की संरचना, जलधारण क्षमता एवं सूक्ष्मजीव गतिविधियाँ बेहतर होती हैं।

3. **जल उपयोग दक्षता बढ़ाना**-भिन्न फसलों की जल आवश्यकता अलग-अलग होती है। धान जैसी अधिक जल वाली फसल के बाद कम जल वाली दलहनी या तिलहनी फसल लेने से जल संरक्षण होता है। इससे भूजल दोहन कम होता है और सिंचाई जल का संतुलित उपयोग संभव होता है।

4. **पर्यावरण प्रदूषण कम करना** - फसल चक्र से रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का उपयोग कम होता है। इससे मिट्टी, जल एवं वायु प्रदूषण में कमी आती है। जैविक गतिविधियाँ बढ़ने से पर्यावरण संतुलन भी बना रहता है।

5. **किसानों की आय बढ़ाना**-विभिन्न प्रकार की फसलें लेने से किसानों को अनेक स्रोतों से आय प्राप्त होती है। कीट एवं रोगों का प्रकोप कम होने से उत्पादन लागत घटती है तथा कुल उत्पादन में वृद्धि होती है, जिससे लाभ अधिक मिलता है।

फसल चक्र का महत्व

1. **मृदा उर्वरता में सुधार** - लगातार एक ही फसल उगाने से मिट्टी में विशेष पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। उदाहरण के लिए धान और गेहूँ जैसी फसलें अधिक नाइट्रोजन का उपयोग करती हैं। यदि इनके बीच दलहनी फसलें जैसे चना, मूंग या अरहर उगाई जाएँ तो वे वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मिट्टी में स्थिर करती हैं।

फसल	प्रमुख पोषक तत्व उपयोग
धान	नाइट्रोजन
गेहूँ	नाइट्रोजन एवं फास्फोरस
दलहन	नाइट्रोजन स्थिरीकरण
फसल	प्रमुख पोषक तत्व उपयोग

इस प्रकार * मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ती है। * रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है। * मिट्टी का जैविक संतुलन बना रहता है।

2. **उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि** - फसल चक्र अपनाने से फसलों की वृद्धि बेहतर होती है तथा उत्पादन में वृद्धि होती है। विभिन्न फसलें मिट्टी की अलग-अलग परतों से पोषक तत्व लेती हैं जिससे पोषण संतुलन बना रहता है।

उदाहरण -* गेहूँ के बाद दलहन लगाने से अगली फसल की उपज बढ़ती है।* फसल चक्र से औसतन 15-25% तक उत्पादन वृद्धि देखी गई है।

3. **कीट एवं रोग नियंत्रण** - यदि लगातार एक ही फसल उगाई जाए तो उससे संबंधित कीट और रोग तेजी से बढ़ते हैं। फसल चक्र इस समस्या को कम करता है क्योंकि- * कीटों का जीवन चक्र टूट जाता है। * रोगजनक सूक्ष्मजीवों का प्रसार कम होता है। * रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग घटता है। इससे पर्यावरण संरक्षण भी होता है।

उत्पादकता में वृद्धि के वैज्ञानिक आधार

1. **पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग** - अलग-अलग फसलें विभिन्न पोषक तत्वों का उपयोग करती हैं। इससे किसी एक तत्व की अत्यधिक कमी नहीं होती।

2. **जैविक पदार्थों की वृद्धि** - दलहनी फसलें तथा हरी खाद वाली फसलें जैसे ढैंचा, सनै एवं मूंग मिट्टी में जैविक पदार्थों की मात्रा बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इनके पौध अवशेष मिट्टी में मिलकर जैविक कार्बन बढ़ाते हैं, जिससे मृदा की संरचना एवं उर्वरता में सुधार होता है। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार फसल चक्र एवं हरी खाद के प्रयोग से मिट्टी में सूक्ष्मजीव गतिविधियाँ 20-30% तक बढ़ जाती हैं। इससे नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं अन्य पोषक तत्व पौधों को अधिक उपलब्ध होते हैं। जैविक पदार्थ बढ़ने से मिट्टी की जलधारण क्षमता भी बढ़ती है तथा दीर्घकाल में फसल उत्पादन लगभग 15-20% तक स्थिर बना रहता हैं।

सूक्ष्मजीव गतिविधि में सुधार

लाभकारी सूक्ष्मजीव/प्रभाव	कार्य	वैज्ञानिक प्रभाव
राइजोबियम जीवाणु	वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण	40-80 किग्रा नाइट्रोजन/हेक्टेयर तक मिट्टी में जोड़ते हैं
फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु	फास्फोरस को घुलनशील बनाना	फास्फोरस उपलब्धता में 20-25% वृद्धि
एजोटोबैक्टर	पौध वृद्धि हार्मोन उत्पन्न करना	जड़ एवं पौध वृद्धि में 10-15 % वृद्धि
लाभकारी कवक ट्राइकोडर्मा	रोग नियंत्रण	मृदा जनित रोगों में 30-40 % कमी
सूक्ष्मजीव गतिविधिया	जैविक सक्रियता बढ़ाना	मिट्टी की सूक्ष्मजीव सक्रियता में 20-30% वृद्धि
समग्र प्रभाव	फसल स्वास्थ्य एवं उत्पादन सुधार	उत्पादन में लगभग 15-20 % स्थिर वृद्धि

फसल चक्र और पर्यावरण संरक्षण- फसल चक्र पर्यावरण अनुकूल कृषि प्रणाली मानी जाती है। इसके माध्यम से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है, क्योंकि दलहनी फसलें प्राकृतिक रूप से नाइट्रोजन स्थिरीकरण करती हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार फसल चक्र अपनाने से रासायनिक उर्वरकों का उपयोग 20-30% तक घट सकता है। विभिन्न फसलें लेने से कीट एवं रोगों का जीवन चक्र टूटता है, जिससे कीटनाशकों पर निर्भरता लगभग 25-40% तक कम हो जाती है। फसल चक्र मिट्टी को वर्षभर ढके रखने में सहायक होता है, जिससे मृदा अपरदन में 30-50% तक कमी देखी गई है। इसके अतिरिक्त जैविक पदार्थों की वृद्धि एवं कम रासायनिक उपयोग के कारण कार्बन उत्सर्जन भी घटता है। शोधों के अनुसार फसल चक्र प्रणाली से मिट्टी में कार्बन संचयन बढ़ता है तथा ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में लगभग 15-20% तक कमी लाई जा सकती है। यह जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी सहायक है।

फसल चक्र अपनाने में चुनौतियाँ

1. **किसानों में जागरूकता की कमी** - भारत में लगभग 35-40 प्रतिशत किसान आधुनिक फसल चक्र तकनीकों से पूर्णतः परिचित नहीं हैं, जिससे वैज्ञानिक खेती एवं मृदा संरक्षण संबंधी लाभों का उचित उपयोग नहीं हो पाता।

2. **गुणवत्तापूर्ण बीजों की अनुपलब्धता**-कई ग्रामीण क्षेत्रों में प्रमाणित बीज समय पर उपलब्ध नहीं होते। अनुमानतः 25-30% किसान पारंपरिक बीजों पर निर्भर रहते हैं, जिससे उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है।

3. **बाजार की अनिश्चितता** - दलहनी एवं तिलहनी फसलों के बाजार मूल्य में 20-30 प्रतिशत तक उतार-चढ़ाव देखा जाता है, जिससे किसानों को लाभ एवं फसल चयन में अनिश्चितता बनी रहती है।

4. **छोटे एवं सीमांत किसानों की आर्थिक सीमाएँ** - देश के लगभग 85% किसान छोटे एवं सीमांत वर्ग में आते हैं। सीमित पूंजी एवं संसाधनों के कारण वे नई कृषि तकनीकों को अपनाने में कठिनाई अनुभव करते हैं।

समाधान एवं सुझाव

1. **किसान प्रशिक्षण**-कृषि विज्ञान केंद्रों एवं कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए। इससे किसानों को फसल चक्र, मृदा प्रबंधन एवं आधुनिक कृषि तकनीकों की वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त होगी तथा नई तकनीकों को अपनाने की क्षमता बढ़ेगी।

2. **दलहनी फसलों को बढ़ावा** - सरकार को दलहनी फसलों पर विशेष प्रोत्साहन देना चाहिए। बीज वितरण, न्यूनतम समर्थन मूल्य एवं अनुदान योजनाओं से किसान दलहनी फसलें अपनाने के लिए प्रेरित होंगे, जिससे मिट्टी की उर्वरता भी बढ़ेगी।

3. **मृदा परीक्षण** - मृदा स्वास्थ्य कार्ड के आधार पर फसल चक्र अपनाने से मिट्टी में पोषक तत्वों की सही जानकारी मिलती है। इससे संतुलित उर्वरक उपयोग संभव होता है तथा उत्पादन लागत कम होती है।

4. **सरकारी सहायता** - किसानों को सब्सिडी, गुणवत्तापूर्ण बीज सहायता तथा न्यूनतम समर्थन मूल्य की मजबूत व्यवस्था उपलब्ध करानी चाहिए। इससे छोटे एवं सीमांत किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी तथा वे फसल चक्र अपनाने के लिए प्रोत्साहित होंगे।

निष्कर्ष: फसल चक्र सतत् कृषि विकास की आधारशिला है। यह केवल उत्पादन बढ़ाने की तकनीक नहीं बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का प्रभावी माध्यम भी है। इसके माध्यम से मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है, जल संरक्षण होता है, कीट एवं रोग नियंत्रण संभव होता है तथा किसानों की आय में वृद्धि होती है। आज जब कृषि अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है, तब फसल चक्र जैसी वैज्ञानिक एवं पर्यावरण अनुकूल तकनीकों को अपनाना अत्यंत आवश्यक हो गया है। यदि किसान, वैज्ञानिक और सरकार मिलकर इस प्रणाली को बढ़ावा दें, तो भारत में टिकाऊ कृषि विकास एवं खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

जलवायु परिवर्तन का खाद्य सुरक्षा एवं खाद्य प्रणाली पर प्रभाव

✍ **आकांक्षा** शोध छात्रा, सेंटर ऑफ फूड टेक्नोलॉजी
इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, प्रयागराज- 211002 (उ.प्र.)

प्रस्तावना: जलवायु परिवर्तन वर्तमान समय की सबसे गंभीर वैश्विक चुनौतियों में से एक है। पृथ्वी के औसत तापमान में निरंतर वृद्धि, वर्षा के पैटर्न में बदलाव, सूखा, बाढ़, चक्रवात तथा अन्य चरम मौसमीय घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित कर रही है। खाद्य उत्पादन एवं खाद्य सुरक्षा भी इससे अछूते नहीं हैं। विश्व की बढ़ती जनसंख्या को पर्याप्त, सुरक्षित एवं पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराना पहले से ही एक चुनौती है, जबकि जलवायु परिवर्तन इस समस्या को और अधिक जटिल बना रहा है।

खाद्य प्रणाली में कृषि उत्पादन, प्रसंस्करण, भंडारण, परिवहन, वितरण तथा उपभोग तक की संपूर्ण प्रक्रिया सम्मिलित होती है। जलवायु परिवर्तन इन सभी चरणों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन, गुणवत्ता, उपलब्धता तथा कीमतों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारण- जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों जैसे कार्बन डाइऑक्साइड , मीथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड की बढ़ती मात्रा है। औद्योगीकरण, जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक उपयोग, वनों की कटाई, कृषि गतिविधियाँ तथा शहरीकरण इसके प्रमुख कारण हैं। इन गैसों के कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ता है, जिससे मौसम चक्र असंतुलित हो जाता है।

खाद्य उत्पादन पर प्रभाव

1. **फसल उत्पादकता में कमी-** तापमान में वृद्धि फसलों की वृद्धि एवं विकास प्रक्रिया को प्रभावित करती है। गेहूँ, धान, मक्का तथा दालों जैसी प्रमुख फसलों की उत्पादकता उच्च तापमान के कारण घट सकती है। अत्यधिक गर्मी पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्षमता को कम कर देती है तथा फूल एवं दानों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

2. **वर्षा पैटर्न में परिवर्तन-** जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा का वितरण अनिश्चित होता जा रहा है। कहीं अत्यधिक वर्षा होती है तो कहीं लंबे समय तक सूखे की स्थिति बनी रहती है। इससे सिंचाई व्यवस्था प्रभावित होती है तथा कृषि उत्पादन में अस्थिरता आती है। विशेष रूप से वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों में किसानों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

3. **कीट एवं रोगों का प्रकोप-** तापमान और आर्द्रता में परिवर्तन से विभिन्न कीटों, रोगजनकों तथा खरपतवारों का प्रसार बढ़ जाता है। इससे फसलों को अधिक क्षति पहुँचती है और किसानों को कीटनाशकों का अधिक उपयोग करना पड़ता है। इससे उत्पादन लागत बढ़ने के साथ-साथ पर्यावरणीय समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं।

4. **मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट-** अत्यधिक वर्षा, बाढ़ तथा सूखे की घटनाएँ मिट्टी की उर्वरता को प्रभावित करती हैं। मृदा अपरदन , कार्बनिक पदार्थों की कमी तथा लवणता में वृद्धि जैसी समस्याएँ कृषि उत्पादकता को कम करती हैं।

खाद्य गुणवत्ता एवं पोषण पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन केवल खाद्य उत्पादन को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता एवं पोषण मूल्य को भी प्रभावित करता है।

उच्च वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड स्तर के कारण कई फसलों में प्रोटीन, जिंक, आयरन तथा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा में कमी देखी गई है। इससे कुपोषण की समस्या और गंभीर हो सकती है, विशेषकर विकासशील देशों में जहाँ बड़ी आबादी अपनी पोषण आवश्यकताओं के लिए अनाजों पर निर्भर रहती है।

फल एवं सब्जियों की गुणवत्ता भी तापमान और जल उपलब्धता में परिवर्तन से प्रभावित होती है। इससे स्वाद, रंग, बनावट तथा शेल्फ लाइफ में कमी आ सकती है।

पशुपालन एवं दुग्ध उत्पादन पर प्रभाव

भारत जैसे देशों में पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा है। जलवायु परिवर्तन का पशुधन पर भी व्यापक प्रभाव पड़ता है।

अत्यधिक तापमान के कारण पशुओं में ऊष्मा तनाव बढ़ता है, जिससे उनकी आहार ग्रहण क्षमता कम हो जाती है। परिणामस्वरूप दूध उत्पादन, प्रजनन क्षमता तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रभावित होती है। गर्मी के कारण पशुओं में विभिन्न संक्रामक रोगों की संभावना भी बढ़ जाती है।

चारे की उपलब्धता पर भी जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है। सूखा और अनियमित वर्षा के कारण हरे चारे का उत्पादन कम हो सकता है, जिससे पशुपालन की लागत बढ़ जाती है।

मत्स्य उत्पादन पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव मत्स्य क्षेत्र पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। समुद्री जल के तापमान में वृद्धि, महासागरों का अम्लीकरण तथा जल स्तर में परिवर्तन मछलियों की विभिन्न प्रजातियों के वितरण एवं प्रजनन को प्रभावित करते हैं।

बाढ़ और चक्रवात जैसी घटनाएँ मत्स्य पालन अवसंरचना को नुकसान पहुँचाती हैं। इससे मछुआरों की आजीविका तथा खाद्य सुरक्षा दोनों प्रभावित होती हैं।

खाद्य प्रसंस्करण एवं भंडारण पर प्रभाव- उच्च तापमान और आर्द्रता खाद्य पदार्थों के भंडारण एवं प्रसंस्करण को प्रभावित करते हैं। अनाज, फल, सब्जियाँ तथा डेयरी उत्पाद अधिक तेजी से खराब हो सकते हैं। इससे खाद्य अपव्यय बढ़ता है। भंडारण के दौरान फफूंद एवं माइकोटॉक्सिन का विकास भी बढ़ सकता है, जिससे खाद्य सुरक्षा संबंधी जोखिम उत्पन्न होते हैं। खाद्य उद्योग को इन चुनौतियों से निपटने के लिए अधिक ऊर्जा तथा संसाधनों की आवश्यकता होती है।

खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव

खाद्य सुरक्षा के चार प्रमुख आयाम हैं-उपलब्धता, पहुँच, उपयोगिता तथा स्थिरता। जलवायु परिवर्तन इन सभी आयामों को प्रभावित करता है।

1.उपलब्धता : उत्पादन में कमी के कारण खाद्य पदार्थों की उपलब्धता प्रभावित होती है।

2.पहुँच : खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि से गरीब एवं कमजोर वर्गों की पहुँच सीमित हो जाती है।

3.उपयोगिता : पोषण गुणवत्ता में गिरावट से स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ बढ़ती हैं।

4.स्थिरता : चरम मौसमीय घटनाओं के कारण खाद्य आपूर्ति श्रृंखला बाधित होती है।

भारत में जलवायु परिवर्तन और खाद्य चुनौतियाँ

भारत की लगभग आधी आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। देश की कृषि प्रणाली मानसून पर आधारित होने के कारण जलवायु परिवर्तन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है। सूखा, बाढ़, हीट वेव तथा अनियमित वर्षा जैसी घटनाएँ कृषि उत्पादन को प्रभावित कर रही हैं।

गेहूँ, धान, गन्ना तथा दलहनी फसलों की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है। इसके अतिरिक्त हिमालयी क्षेत्रों में ग्लेशियरों के पिघलने से जल संसाधनों पर भी दीर्घकालिक प्रभाव पड़ सकता है।

अनुकूलन एवं शमन उपाय

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं—

कृषि क्षेत्र में

* जलवायु-सहिष्णु फसल किस्मों का विकास एवं उपयोग।
* सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों का विस्तार।
* फसल विविधीकरण को बढ़ावा।
* संरक्षण कृषि का अपनाना।
* मौसम आधारित कृषि परामर्श सेवाओं का उपयोग।

पशुपालन क्षेत्र में

* ऊष्मा-सहिष्णु नस्लों का विकास।
* पशुओं के लिए उचित आवास एवं शीतलन व्यवस्था।
* गुणवत्तापूर्ण चारा उत्पादन को बढ़ावा।

खाद्य प्रणाली में

* बेहतर भंडारण एवं कोल्ड चेन सुविधाओं का विकास। * खाद्य अपव्यय में कमी। * टिकाऊ खाद्य प्रसंस्करण तकनीकों का उपयोग।

पर्यावरण संरक्षण हेतु * वृक्षारोपण एवं वनों का संरक्षण। * नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग। * ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन खाद्य उत्पादन, गुणवत्ता, पोषण, भंडारण तथा खाद्य सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती बनकर उभर रहा है। बढ़ता तापमान, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ तथा अन्य चरम मौसमीय घटनाएँ वैश्विक खाद्य प्रणाली को प्रभावित कर रही हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देशों में इसका प्रभाव और अधिक गंभीर हो सकता है। इसलिए आवश्यक है कि वैज्ञानिक, नीति निर्माता, किसान एवं समाज मिलकर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने तथा टिकाऊ खाद्य प्रणालियों के विकास की दिशा में कार्य करें। जलवायु-स्मार्ट कृषि, संसाधनों का सतत उपयोग तथा पर्यावरण संरक्षण के माध्यम से ही भविष्य की पीढ़ियों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

'दुग्धारू पशुओं में थनैला (मैस्टाइटिस) रोग के कारण, लक्षण एवं निदान'

डॉ. आकर्ष त्यागी
डॉ. पंकज कुमार मौर्य, डॉ. इरफ़ान
डॉ. आनंद अवस्थी, डॉ. अनंदिता खर्ब
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है और यहां करोड़ों ग्रामीण परिवारों की आजीविका डेयरी व्यवसाय पर निर्भर करती है। पशुपालन न केवल किसानों की आय का महत्वपूर्ण स्रोत है बल्कि देश की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसे में डेयरी पशुओं का स्वास्थ्य सीधे तौर पर दूध उत्पादन तथा पशुपालकों की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करता है। डेयरी पशुओं में होने वाले विभिन्न रोगों में थनैला अथवा मास्टाइटिस सबसे महत्वपूर्ण और आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक हानिकारक रोगों में से एक माना जाता है। यह रोग गाय एवं भैंस की दुग्ध ग्रंथि में होने वाली सूजन है, जो मुख्य रूप से जीवाणुओं के संक्रमण के कारण उत्पन्न होती है। वर्तमान समय में मास्टाइटिस विश्वभर के दुग्ध उद्योग के सामने एक गंभीर समस्या के रूप में उपस्थित है और इसके कारण पशुपालकों को प्रतिवर्ष लगभग 41.5 मिलियन रुपये (करीब 60 प्रतिशत) का नुकसान केवल उप-नैदानिक मास्टाइटिस से होता है। चूँकि इस अवस्था में रोग के स्पष्ट लक्षण दिखाई नहीं देते, इसलिए यह लंबे समय तक दूध उत्पादन और गुणवत्ता को प्रभावित करता रहता है तथा पशुपालकों को भारी आर्थिक क्षति पहुँचाता है।

मास्टाइटिस से होने वाली आर्थिक हानि केवल दूध उत्पादन में कमी तक सीमित नहीं रहती, बल्कि इसका प्रभाव पशु की संपूर्ण उत्पादकता पर पड़ता है। इस रोग के कारण पशुओं के दूध उत्पादन में उल्लेखनीय कमी आ जाती है तथा दूध की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। संक्रमित पशुओं के दूध में वसा, प्रोटीन तथा लैक्टोज की मात्रा कम हो जाती है, जिससे उसकी बाजार में स्वीकार्यता घट जाती है। कई बार दूध में एंटीबायोटिक अवशेषों की उपस्थिति के कारण उसे फेंकना पड़ता है, जिससे पशुपालकों को अतिरिक्त आर्थिक नुकसान होता है। उपचार पर होने वाला खर्च, पशु की कार्यक्षमता में कमी, प्रजनन क्षमता पर पड़ने वाला प्रतिकूल प्रभाव तथा गंभीर स्थिति में पशु को झुंड से निकालने की आवश्यकता भी इस रोग से जुड़ी महत्वपूर्ण आर्थिक हानियां हैं। विशेष रूप से सब-क्लिनिकल मास्टाइटिस, जिसमें रोग के बाहरी लक्षण दिखाई नहीं देते, लंबे समय तक दूध उत्पादन को प्रभावित करता रहता है और कई बार पशुपालक इसकी पहचान भी नहीं कर पाते।

मास्टाइटिस मूलतः दुग्ध ग्रंथि की सूजन है जो तब उत्पन्न होती है जब रोगजनक सूक्ष्मजीव थन की नलिका के माध्यम से थन के भीतर प्रवेश कर जाते हैं। संक्रमण के बाद शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली सक्रिय हो जाती है और सूजन की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है।

कारण

- इस रोग के लिए अनेक प्रकार के जीवाणु उत्तरदायी होते हैं, जिनमें स्टैफिलोकोकस ऑरियस, स्ट्रेप्टोकोकस तथा ईशेरिशिया कोलाई प्रमुख हैं।
- अस्वच्छ दुग्ध दुहन पद्धति
- गंदा पशुशाला वातावरण
- थनों में चोट लगना
- दुहने के बाद थनों की उचित देखभाल न करना
- पशु की कमजोर रोग प्रतिरोधक क्षमता
- बरसात के मौसम में जब पशुशालाओं में नमी और गंदगी बढ़ जाती है, तब इस रोग की संभावना और अधिक बढ़ जाती है।

लक्षण

रोग की गंभीरता के अनुसार अलग-अलग हो सकते हैं

- प्रारंभिक अवस्था में प्रभावित थन में सूजन, गर्माहट तथा दर्द महसूस होता है
- थन लाल दिखाई दे सकता है तथा उसे छूने पर पशु असहजता व्यक्त करता है
- रोग बढ़ने पर दूध में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देने लगते हैं
- दूध में छोटे-छोटे थक्के, गाठें या फ्लेक्स दिखाई दे सकते हैं तथा उसका रंग और बनावट सामान्य नहीं रहती
- कई बार दूध पानी जैसा पतला हो जाता है या उसमें रक्त तथा मवाद भी मिल सकता है
- गंभीर संक्रमण की स्थिति में पशु को बुखार आ सकता है
- उसकी भूख कम हो जाती है तथा वह सुस्त और कमजोर दिखाई देने लगता है
- सबसे महत्वपूर्ण लक्षण दूध उत्पादन में अचानक कमी आना है

मास्टाइटिस का एक रूप ऐसा भी होता है जिसे सब-क्लिनिकल मास्टाइटिस कहा जाता है। इस अवस्था में पशु के थनों में कोई स्पष्ट सूजन दिखाई नहीं देती और दूध भी सामान्य प्रतीत हो सकता है, लेकिन दुग्ध उत्पादन धीरे-धीरे कम होता रहता है तथा दूध की गुणवत्ता प्रभावित होती रहती है। यही कारण है कि सब-क्लिनिकल मास्टाइटिस को डेयरी उद्योग के लिए अधिक खतरनाक माना जाता है। इसकी पहचान के लिए कैलिफोर्निया मास्टाइटिस टेस्ट (CMT) तथा सोमैटिक सेल काउंट जैसी जांच विधियों का उपयोग किया जाता है।

उपचार

मास्टाइटिस के उपचार में शीघ्र निदान और समय पर चिकित्सा अत्यंत महत्वपूर्ण है। जैसे ही रोग के लक्षण दिखाई दें, पशुपालक को तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए। रोग के उपचार में सामान्यतः उपयुक्त एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग किया जाता है, जिनका चयन संक्रमण पैदा करने वाले जीवाणुओं के आधार पर किया जाता है। इसके साथ-साथ सूजन और दर्द को कम करने वाली दवाएं भी दी जाती हैं। संक्रमित थन से नियमित रूप से दूध निकालना आवश्यक होता है ताकि रोगजनकों तथा उनके द्वारा उत्पन्न विषैले पदार्थों को बाहर निकाला जा सके। उपचार के दौरान पशु को स्वच्छ, सूखा और आरामदायक वातावरण प्रदान करना चाहिए तथा संतुलित एवं पौष्टिक आहार उपलब्ध कराना चाहिए जिससे उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बनी रहे।

रोकथाम

मास्टाइटिस की रोकथाम उपचार की अपेक्षा कहीं अधिक सरल और लाभदायक है

- वैज्ञानिक दुग्ध दुहन पद्धति अपनाकर इस रोग की संभावना को काफी हद तक कम किया जा सकता है
- दुहने से पहले और बाद में थनों की अच्छी तरह सफाई करना, दुहने वाले व्यक्ति के हाथों को स्वच्छ रखना
- टीट डिपिंग जैसी तकनीकों का उपयोग करना संक्रमण को रोकने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुआ है
- पशुशाला को साफ और सूखा रखना
- नियमित रूप से बिछावन बदलना
- पशुओं को संतुलित आहार उपलब्ध कराना भी रोग नियंत्रण के लिए आवश्यक है
- समय-समय पर पशुओं की जांच कराना और रोग के प्रारंभिक लक्षणों पर तुरंत ध्यान देना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है

मास्टाइटिस डेयरी पशुओं में होने वाला एक अत्यंत महत्वपूर्ण रोग है, जिसका सीधा प्रभाव दूध उत्पादन, दूध की गुणवत्ता तथा पशुपालकों की आय पर पड़ता है। हालांकि यह रोग गंभीर आर्थिक हानि का कारण बन सकता है, लेकिन उचित स्वच्छता, वैज्ञानिक प्रबंधन, संतुलित पोषण तथा समय पर उपचार के माध्यम से इसे प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है। जागरूकता और आधुनिक पशुपालन पद्धतियों को अपनाकर पशुपालक न केवल अपने पशुओं को स्वस्थ रख सकते हैं, बल्कि डेयरी व्यवसाय को अधिक लाभदायक और टिकाऊ भी बना सकते हैं।

बीज की सही पहचान कैसे करें, बीज कहां से खरीदें

✍डॉ. अभयदीप गौतम विषय वस्तु विशेषज्ञ (जी.पी.बी.)

✍डॉ. नरेन्द्र रघुबंशी विशेषज्ञ वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष

✍रितेश सिंह गंगवार विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान), केवीके चन्दौली (उ.प्र.)

बीज पौधे का वह महत्वपूर्ण भाग है जो एक नए पौधे को जन्म देता है। बीज के अंदर एक नन्हा शिशु पौधा (भ्रूण) होता है, जो तब तक सुप्त (सोया हुआ) रहता है, जब तक कि उसे उगने के लिए सही वातावरण जैसे पानी, हवा और उचित तापमान नहीं मिलता।

बीज के मुख्य भाग- एक बीज मुख्य रूप से तीन भागों से मिलकर बना होता है।

भ्रूण: यह बीज का सबसे मुख्य हिस्सा होता है जो भविष्य में एक नया पौधा बनता है। इसमें पौधे की भविष्य की जड़ (मूलांकुर) और तना (प्रांकुर) शामिल होते हैं।

बीजपत्र: ये नन्हे पौधे हेतु भोजन (ऊर्जा) का भंडार होते हैं, जो पौधे में पत्तियां आने तक उसका पेट भरते हैं।

बीज आवरण: यह बीज की सबसे बाहरी, कठोर और सुरक्षात्मक परत होती है जो अंदर के भ्रूण को सूखने या खराब होने से बचाती है।

बीज के प्रकार * खाद्यान्न बीज-गेहूँ, धान, मक्का * दलहन बीज-चना, अरहर * तिलहन बीज-सरसों, सूरजमुखी

अच्छे बीज की पहचान * साफ और स्वस्थ हो * रोग व कीट रहित हो * अंकुरण क्षमता अच्छी हो * समान आकार और वजन वाला हो

बीज कहां से खरीदें- खेती के लिए प्रमाणित और उच्च गुणवत्ता वाले बीज हमेशा सरकारी केन्द्रों या विश्वसनीय डीलरों से ही खरीदने चाहिए। इससे फसल की पैदावार अच्छी होती है और किसी भी समस्या की स्थिति में आपके पास शिकायत का उचित आधार रहता है।

खेती के लिए बीज प्राप्त करने के कुछ सबसे अच्छे विकल्प निम्नलिखित है।

1. सरकारी एवं अनुसंधान संस्थान

कृषि विज्ञान केंद्र: आपके जिले या ब्लॉक स्तर पर स्थित कृषि विज्ञान केंद्र से आपको प्रमाणित बीज, उचित सलाह और उन्नत किस्में मिल सकती हैं।

राज्य बीज निगम : सरकारी बीज निगम के आउटलेट से अत्यधिक विश्वसनीय और रियायती दरों पर बीज उपलब्ध होते हैं।

कृषि विश्वविद्यालय: यदि आप अपने राज्य के कृषि विश्वविद्यालय से बीज लेते हैं, तो वहां की विकसित की गई नई और उन्नत किस्मों की शुद्धता की पूरी गारंटी होती है।

2. विश्वसनीय कृषि डीलर और सहकारी समितियां

स्थानीय कृषि केंद्र: आपके क्षेत्र में मौजूद मान्यता प्राप्त खाद-बीज की दुकानों से बीज खरीदें। हमेशा पक्का बिल और बीजों का पैकेट फसल कटाई तक संभाल कर रखें।

सहकारी समितियां : गाँव के स्तर पर मौजूद सहकारी समितियों से भी किसानों को उचित दाम पर प्रमाणित बीज मिल जाते हैं।

3. प्रामाणिक ऑनलाइन प्लेटफॉर्म-यदि आप घर बैठे उन्नत किस्में या हाइब्रिड बीज मंगवाना चाहते हैं, तो आप इन प्रमाणित पोर्टल्स का उपयोग कर सकते हैं-

सीडनेट इंडिया पोर्टल: भारत सरकार द्वारा संचालित यह पोर्टल देश में प्रमाणित बीज उत्पादन और वितरण प्रणाली की पूरी जानकारी देता है।

ऑनलाइन कृषि स्टोर: एग्रीबेगरी और फार्मकी जैसे कृषि ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म्स से भी अच्छी क्वालिटी के बीज ऑर्डर किए जा सकते हैं।

महत्वपूर्ण सुझाव

* हमेशा टैग लगे हुए और प्रमाणित बीज ही खरीदें।

* यदि आप हाइब्रिड बीजों का उपयोग कर रहे हैं, तो उन्हें हर बार नई फसल के लिए कंपनी या डीलर से ही लें, क्योंकि घर का बीज अगली पीढ़ी में अपनी गुणवत्ता खो देता है।

अच्छी फसल और नुकसान से बचने के लिए प्रमाणित बीज, उनकी अंकुरण क्षमता और अपने क्षेत्र की मिट्टी एवं जलवायु के अनुकूल किस्म का चुनाव करना बहुत जरूरी है।

बीज की पहचान और चुनाव करते समय मुख्य रूप से इन बातों का ध्यान रखें

प्रमाणिकता (सर्टिफिकेशन): * हमेशा प्रमाणित और विश्वसनीय स्रोतों या सरकारी एजेंसियों द्वारा प्रमाणित बीज ही खरीदें। पैकेट पर बीज प्रमाणीकरण एजेंसी का टैग और मुहर जरूर देखें।

* बीज खरीदते समय विक्रेता से पक्का बिल और रसीद अवश्य लें, जिसमें लॉट नंबर स्पष्ट रूप से लिखा हो यदि फसल खराब निकलती है, तो मुआवजे के लिए यह सबसे बड़ा प्रमाण होता है।

* **पैकेजिंग और एक्सपायरी डेट:** सीलबंद पैकेट ही खरीदें। पैकेट पर उत्पादन, पैकिंग की तारीख और एक्सपायरी डेट अवश्य चेक करें। पुराने बीज की अंकुरण क्षमता कम हो जाती है।

* **भौतिक शुद्धता :** बीज साफ, चमकदार और एक ही आकार के होने चाहिए। उनमें कंकड़-पत्थर, मिट्टी, खरपतवार के बीज या टूटे-फूटे बीज नहीं होने चाहिए।

* **अंकुरण परीक्षण :** बुवाई से पहले बीजों की अंकुरण क्षमता की जांच घर पर करें। इसके लिए लगभग 100 बीजों को गीले सूती कपड़े में लपेटकर कुछ दिनों के लिए गर्म जगह पर रखें। अगर (80%) से अधिक बीज अंकुरित हो जाएं, तो वे उत्तम बीज माने जाते हैं।

नमी की मात्रा: बीजों में नमी की मात्रा नियंत्रित और संतुलित होनी चाहिए। अधिक नमी वाले बीज जल्दी खराब हो जाते हैं या उनमें फफूंद लग सकती है।

रोग और कीट मुक्त: बीज पूरी तरह से स्वस्थ, कीटों व रोगों से मुक्त होने चाहिए।

पानी का परीक्षण: हल्के या क्षतिग्रस्त बीज पानी में तैरने लगते हैं, जबकि अच्छे और स्वस्थ बीज पानी की तली में बैठ जाते हैं। आप बीजों को पानी में डालकर भी उनकी जांच कर सकते हैं।

मौसम और मिट्टी के अनुकूल: हमेशा अपने क्षेत्र की जलवायु और मिट्टी के प्रकार के अनुसार ही बीज की किस्म का चयन करें।

कृषि में बीजों को मुख्य रूप से उनकी आनुवंशिक शुद्धता और उत्पादन श्रृंखला के आधार पर 4 प्रमुख श्रेणियों में बाँटा जाता है, जो किसानों तक पहुँचते-पहुँचते प्रमाणित होते हैं।

1. प्रजनक बीज

* यह बीजों का मूल स्रोत होता है।

* इसे सीधे कृषि वैज्ञानिकोंध्पादप प्रजनकों द्वारा तैयार किया जाता है।

* इनमें आनुवंशिक शुद्धता 100% होती है।

* इस पर सुनहरे पीले रंग का टैग लगा होता है।

2. आधारीय बीज

* यह प्रजनक बीज की संतति (उत्पाद) होता है।

* इसे मातृ बीज भी कहा जाता है।

* सरकारी कृषि फॉर्मों या विश्वविद्यालयों द्वारा इसका उत्पादन होता है।

* इस पर सफेद रंग का टैग लगा होता है।

3. पंजीकृत बीज

* यह आधारीय बीज की उपज होता है।

* भारत में इस चरण को आमतौर पर छोड़ दिया जाता है और सीधे आधारीय बीज से प्रमाणित बीज बनाए जाते हैं।

* इस पर बैंगनी रंग का टैग लगा होता है।

4. प्रमाणित बीज

* यह किसानों को बुवाई के लिए दिया जाने वाला अंतिम व्यावसायिक बीज है।

* यह आधारीय या पंजीकृत बीज की संतान होता है।

* राज्य बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा इसकी गुणवत्ता की जाँच के बाद इसे मंजूरी मिलती है।

* इस पर नीले रंग का टैग लगा होता है।

अन्य वर्गीकरण

इसके अलावा, कृषि में बीज संरचना और गुणों के आधार पर भी अलग-अलग प्रकार के होते हैं-

* **संकर बीज :** दो अलग-अलग उन्नत किस्मों के परागण से तैयार किए जाते हैं, जो उच्च उपज देते हैं।

* **खुले परागण वाले बीज :** ये प्राकृतिक तरीके से परागित होते हैं और किसान इनकी उपज से अगले साल के लिए बीज बचा सकते हैं।

* **देशी बीज:** स्थानीय जलवायु के अनुसार सबसे अनुकूल होते हैं।

* **आनुवंशिक रूप से संशोधित बीज:** वैज्ञानिक तरीके से जीन बदलकर तैयार किए जाते हैं (जैसे-Bt कॉटन)।

अपने क्षेत्र के अनुसार सही और प्रमाणित बीज प्राप्त करने या कृषि योजनाओं की जानकारी के लिए आप अपने राज्य के कृषि विभाग की आधिकारिक वेबसाइट, जैसे उत्तर प्रदेश कृषि विभाग का उपयोग कर सकते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

नीतू चौधरी विद्यावाचस्पति, कीट विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, स्वामी केशवानन्द राजस्थान, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

फसल क्षेत्रों में भौतिक कीट प्रबंधन का महत्व

परिचय

कीटों को लंबे समय से वैश्विक कृषि के लिए सबसे महत्वपूर्ण खतरों में से एक माना जाता रहा है। वे फसल के पौधों को व्यापक नुकसान पहुंचा सकते हैं, जिससे पैदावार कम हो सकती है, आर्थिक नुकसान हो सकता है और खाद्य सुरक्षा संबंधी चिंताएं पैदा हो सकती हैं। जबकि रासायनिक कीटनाशक ऐतिहासिक रूप से कीटों के प्रबंधन में एक प्राथमिक उपकरण रहे हैं, फसल क्षेत्रों में भौतिक कीट प्रबंधन के महत्व की मान्यता बढ़ रही है। यह निबंध कीटों को नियंत्रित करने में भौतिक तरीकों के महत्व, उनके फायदे और टिकाऊ कृषि में उनकी भूमिका की पड़ताल करता है।

कीट-पतंगों द्वारा उत्पन्न चुनौतियाँ

कृषि पर कीट नाशीजीवों का प्रभाव

एफिड्स, कैटरपिलर और बीटल जैसे कीट कीट दुनिया भर में फसल उत्पादन के लिए बड़ा खतरा पैदा करते हैं। वे पौधों के ऊतकों को खा सकते हैं, बीमारियाँ फैला सकते हैं और फसलों को शारीरिक क्षति पहुँचा सकते हैं, जिससे उपज में कमी और गुणवत्ता में कमी आ सकती है।

रासायनिक कीट प्रबंधन की सीमाएँ

ऐतिहासिक रूप से, रासायनिक कीटनाशक कीटों को नियंत्रित करने का प्राथमिक साधन रहे हैं। हालाँकि, उनके उपयोग से जुड़ी महत्वपूर्ण चिंताएँ हैं, जिनमें कीटनाशक प्रतिरोध का विकास, पर्यावरणीय क्षति और मानव स्वास्थ्य के लिए जोखिम शामिल हैं। इन चुनौतियों के कारण अधिक टिकाऊ और पर्यावरण के अनुकूल कीट प्रबंधन प्रथाओं की ओर बदलाव आया है।

द्वितीय. भौतिक कीट प्रबंधन के तरीके

भौतिक कीट प्रबंधन का परिचय

भौतिक कीट प्रबंधन में फसल के खेतों में कीड़ों के संक्रमण को रोकने या कम करने के लिए भौतिक बाधाओं, जाल और अन्य यांत्रिक तरीकों का उपयोग करना शामिल है। ये विधियां रासायनिक कीटनाशकों का विकल्प प्रदान करती हैं और अपनी पर्यावरण-अनुकूल प्रकृति और एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) में उनकी भूमिका के कारण प्रमुखता प्राप्त कर चुकी हैं।

भौतिक कीट प्रबंधन के प्रकार

फसल चक्रण: फसल चक्रण में मौसम के अनुसार एक खेत में उगाई जाने वाली फसलों के प्रकार को बदलना शामिल है। यह कई कीटों के जीवन चक्र को बाधित करता है, जिससे उनकी स्थापित होने और गुणा करने की क्षमता कम हो जाती है।

पंक्ति कवर: पंक्ति कवर हल्के, पारभासी सामग्री से बने भौतिक अवरोध हैं जिन्हें फसलों के ऊपर रखा जाता है। वे सूरज की रोशनी और बारिश को घुसने देते हुए कीटों और पौधों के बीच अवरोध पैदा करते हैं।

चिपचिपा जाल: चिपचिपा जाल उड़ने वाले कीड़ों को पकड़ने के लिए खेत में लगाई जाने वाली चिपकने वाली लेपित सतह होती है। ये जाल एफिड्स और व्हाइटफ्लाइज़ जैसे कीटों की निगरानी और नियंत्रण के लिए विशेष रूप से प्रभावी हैं।

यांत्रिक बाधाएँ: कीटों को फसलों से दूर रखने के लिए जाल, स्क्रीन या जाल जैसी भौतिक बाधाओं का उपयोग किया जा सकता है। इन्हें आमतौर पर ग्रीनहाउस और उच्च मूल्य वाली फसलों में नियोजित किया जाता है।

जुताई और खेती: मिट्टी को जोतने और जोतने जैसी प्रथाएं मिट्टी में रहने वाले कीटों के आवास और जीवन चरणों को बाधित कर सकती हैं, जिससे उनकी आबादी कम हो सकती है।

कीट-प्रतिरोधी फसल किस्में: प्राकृतिक प्रतिरोध वाली फसल किस्मों का प्रजनन और खेती विशिष्ट कीट नियंत्रण एक महत्वपूर्ण भौतिक कीट प्रबंधन रणनीति है।

तृतीय. भौतिक कीट प्रबंधन के लाभ

पर्यावरणीय लाभ

भौतिक कीट प्रबंधन विधियाँ पर्यावरण के अनुकूल हैं, क्योंकि वे रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग पर निर्भर नहीं हैं, इससे कीटनाशक अवशेषों के पर्यावरण, जल निकाय और गैर-लक्षित जीव दूषित होने का खतरा कम हो जाता है।

कीट प्रतिरोध में कमी

भौतिक तरीकों का एक प्रमुख लाभ यह है कि वे विकास को बढ़ावा नहीं देते हैं, कीट आबादी में कीटनाशक प्रतिरोध, जो रसायन से जुड़ी एक आम चिंता है।

स्थिरता

भौतिक कीट प्रबंधन टिकाऊ कृषि का एक अभिन्न अंग है। यह बाहरी इनपुट पर निर्भरता कम कर और समग्र कृषि में योगदान करते हुए दीर्घकालिक पारिस्थितिक संतुलन वहनीयता को बढ़ावा देता है।

लक्षित कीट नियंत्रण

भौतिक तरीकों को अक्सर अत्यधिक लक्षित किया जाता है, विशिष्ट कीटों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे लाभकारी कीड़े और अन्य गैर-लक्ष्य जीव नुकसान कम हो जाता है। यह पारिस्थितिकी तंत्र परिशुद्धता संतुलन बनाए रखने में मदद करती है।

चुनौतियां और सीमाएं

श्रम-गहन

कुछ भौतिक कीट प्रबंधन विधियाँ, जैसे कीटों को मैन्युअल रूप से हटाना या निराई करना, श्रम-गहन हो सकता है और इसमें समय और प्रयास के महत्वपूर्ण निवेश की आवश्यकता होती है।

मौसमी परिवर्तनशीलता

कुछ भौतिक तरीकों की प्रभावशीलता, जैसे पंक्ति कवर या जाल, मौसम की स्थिति और उपयुक्त सामग्रियों की उपलब्धता से प्रभावित हो सकती है।

लागत संबंधी विचार

भौतिक कीट प्रबंधन विधियों को लागू करने से जुड़ी प्रारंभिक लागत कुछ किसानों के लिए बाधा बन सकती है। हालाँकि, दीर्घकालिक आर्थिक लाभ अक्सर प्रारंभिक निवेश से अधिक होता है।

निष्कर्ष

भौतिक कीट प्रबंधन विधियाँ टिकाऊ कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे रासायनिक कीटनाशकों से जुड़े नकारात्मक प्रभावों को कम करते हुए कीटों को नियंत्रित करने का एक पर्यावरण-अनुकूल और प्रभावी साधन प्रदान करते हैं। फसल चक्र, पंक्ति आवरण, चिपचिपा जाल और कीट-प्रतिरोधी फसल किस्मों सहित ये विधियाँ, एकीकृत कीट प्रबंधन रणनीतियों के आवश्यक घटक हैं। जैसे-जैसे कृषि स्थिरता, जलवायु परिवर्तन और कीटनाशक प्रतिरोध की चुनौतियों का सामना कर रही है, फसल क्षेत्रों में भौतिक कीट प्रबंधन का महत्व बढ़ता जा रहा है। यह जरूरी है कि किसान, शोधकर्ता और नीति निर्माता वैश्विक खाद्य उत्पादन को सुरक्षित रखने और पर्यावरण की रक्षा के लिए इन तरीकों को प्रमुख उपकरण के रूप में अपनाएं।

निम्बू वर्गीय फलों के बागानों की स्थापना व उचित देखभाल

रशीद खान, दयानंद, राजेंद्र नागर
देवीलाल जाट
कृषि विज्ञानं केन्द्र, आबूसर झुन्झुनूँ (राजस्थान)

नींबू, संतरा, मौसमी और किन्नू जैसे विभिन्न प्रकार के फलों को शामिल करते हुए, निम्बू वर्गीय भारत के बागवानी क्षेत्र में एक प्रमुख स्थान रखते हैं। अपने पोषण मूल्य से परे, यह एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है, जो विभिन्न राज्यों में आजीविका का समर्थन करती है। हालांकि, भारत की विविध कृषि-जलवायु परिस्थितियों में खट्टे फलों के बागानों की क्षमता को अधिकतम करना और जलवायु परिवर्तन तथा नए कीट बायोटाइप जैसी समकालीन चुनौतियों का सामना करना, बाग की देखभाल के लिए एक कठोर, वैज्ञानिक दृष्टिकोण की मांग करता है। यह लेख उत्पादक, स्वस्थ और उच्च गुणवत्ता वाले निम्बू वर्गीय फलों के बागानों की स्थापना तथा रखरखाव के लिए आवश्यक प्रमुख वैज्ञानिक सिद्धांतों एवं दृष्टिकोण को रेखांकित करता है।

स्थल का चुनाव और रोपण:

जलवायु उपयुक्तता: निम्बू वर्गीय फल उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पनपते हैं। इनके लिए इष्टतम तापमान 13एब् से 37एब् तक होता है। जबकि कुछ किस्मों (जैसे मंडारिन) में रंग के लिए थोड़ा ठंडा होना फायदेमंद होता है, लंबे समय तक पाला गंभीर क्षति पहुंचा सकता है। 75-1000 मिमी की वार्षिक वर्षा, अच्छी तरह से वितरित, आदर्श है। हालांकि, अधिकांश भारतीय निम्बू वर्गीय फल बेल्ट अनियमित मानसून पैटर्न के कारण पूरक सिंचाई पर निर्भर करते हैं।

मिट्टी की आवश्यकताएँ: गहरी, अच्छी जल निकासी वाली, उपजाऊ, दोमट या बलुई दोमट मिट्टी पसंद की जाती है। खराब जल निकासी वाली भारी चिकनी मिट्टी जड़ सड़न के जोखिम के कारण हानिकारक होती है। एक आदर्श मिट्टी का पीएच 5.5 से 7.5 तक होता है। अम्लीय मिट्टी को चूने की आवश्यकता हो सकती है, जबकि क्षारीय मिट्टी को मिट्टी परीक्षण सिफारिशों के आधार पर जिप्सम की आवश्यकता हो सकती है। नमकीन या क्षारीय मिट्टी से बचें, क्योंकि निम्बू वर्गीय फलों के पेड़ उच्च नमक सांद्रता के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं।

जल स्तर: जलभराव और संबंधित जड़ रोगों को रोकने के लिए एक गहरा जल स्तर (3 मीटर से नीचे) आवश्यक है।

भूमि की तैयारी:

गहरी जुताई: कठोर परतों को तोड़ने और मिट्टी के वातन तथा जल निकासी में सुधार के लिए।

लेआउट और गड्ढे खोदना: चौकोर या आयताकार प्रणाली आम हैं। 60×60×60 सेंमी के गड्ढे रोपण से 15-30 दिन पहले खोदे जाने चाहिए, सौरकरण के लिए धूप में छोड़े जाने चाहिए, और फिर 20-30 किलोग्राम अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद या खाद, 1 किलोग्राम नीम केक, और 500 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट के साथ मिश्रित ऊपरी मिट्टी से भर दिए जाने चाहिए। यह शुरुआती पोषक तत्व उपलब्धता और सूक्ष्मजीव गतिविधि सुनिश्चित करता है।

जल निकासी चैनल: विशेष रूप से भारी वर्षा या जलभराव वाले क्षेत्रों में, जड़ क्षेत्रों के आसपास पानी के ठहराव को रोकने के लिए उचित जल निकासी चैनल बनाए जाने चाहिए।

किस्म का चयन और रोपण: उपयुक्त निम्बू वर्गीय फलों की किस्मों और रूटस्टॉक का चयन क्षेत्रीय उपयुक्तता और रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए सर्वोपरि है।

रूटस्टॉक चयन: रूटस्टॉक रोगों (जैसे, फाइटोफ्थोरा, ट्रिस्टेजा), नेमाटोड, मिट्टी की स्थिति (लवणता, सूखा), और पेड़ की शक्ति तथा उपज को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत में सामान्य रूटस्टॉकः

मौसंबी का बगीचा

रफ लेमन (जम्भेरी): व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है, शक्तिशाली होता है, लेकिन ट्रिस्टेजा और फाइटोफ्थोरा के प्रति संवेदनशील होता है।

रंगपुर लाइम: ट्रिस्टेजा और फाइटोफ्थोरा के प्रति सहिष्णु, मीठे संतरे और मंडारिन के लिए अच्छा।

ट्रॉयर सिट्रेंज/कैरिजो सिट्रेंज: अच्छी शक्ति, ट्रिस्टेजा के प्रति सहिष्णु, और फाइटोफ्थोरा तथा नेमाटोड के प्रति मध्यम सहिष्णु।

क्लियोपेट्रा मंडारिन: हल्की मिट्टी के लिए अच्छा, ट्रिस्टेजा के प्रति सहिष्णु, लेकिन फाइटोफ्थोरा के प्रति संवेदनशील।

सियन किस्म का चयन (भारत में लोकप्रिय): साइट्रस ट्रिस्टेजा वायरस और हुआंग्लोंगबिंग जैसी विनाशकारी बीमारियों के प्रसार को रोकने हेतु हमेशा प्रतिष्ठित नर्सरी से प्रमाणित, रोग-मुक्त बडवुड प्राप्त करें।

मीठे संतरे: मौसंबी, वेलेंसिया लेट, जाफा, सतगुड़ी (दक्षिण भारत में कूर्ग मंडारिन)।

मंडारिन: नागपुर मंडारिन (विशेष रूप से मध्य भारत के लिए), किननो (उत्तर भारत), दार्जिलिंग मंडारिन (उत्तर-पूर्व)।

एसिड लाइम: कागजी लाइम, प्रामलिनि।

नींबू: यूरेका, लिस्बन, असम लेमन।

रोपण: रोपण का सबसे अच्छा समय मानसून के समय (जुलाई-सितम्बर) या सुनिश्चित सिंचाई वाले क्षेत्रों में फरवरी-मार्च में होता है। रोपण की ज्यामिति रूटस्टॉक और शक्ति के साथ बदलती रहती है। सामान्य ज्यामिति 6×6 मीटर (277 पेड़/हे.) से लेकर उचित प्रशिक्षण के साथ 3×3 मीटर (1111 पेड़/हे.) पर उच्च-घनत्व रोपण तक होती है।

पोषण प्रबंधन: संतुलित पोषण मजबूत विकास, फूलने, फलने और रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए मौलिक है। प्रति पेड़ 20-30 किलोग्राम अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद या खाद, सालाना दो बार (जैसे, जून-जुलाई और सितंबर-अक्टूबर) में लगाई जाती है। गोबर की खाद मिट्टी की संरचना, जल धारण क्षमता, सूक्ष्मजीव गतिविधि में सुधार करता है, और धीमी गति से निकलने वाले पोषक तत्व प्रदान करता है। नाइट्रोजन वानस्पतिक विकास और फल विकास के लिए महत्वपूर्ण है। 2-3 बार (जैसे, फरवरी-मार्च, जून-जुलाई, अक्टूबर-नवंबर) यूरिया या अमोनियम सल्फेट के रूप में उपयोग किया जाता है। खुराक पेड़ की उम्र के साथ बढ़ती है। फास्फोरस जड़ विकास, फूलने और फल लगने के लिए आवश्यक है। साल में एक बार (जैसे, सितंबर-अक्टूबर) सिंगल सुपर फॉस्फेट के रूप में उपयोग किया जाता है। पोटेशियम फल के आकार, गुणवत्ता, चीनी सामग्री और रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए महत्वपूर्ण है। साल 2 बार (जैसे, जून-जुलाई और अक्टूबर-नवंबर) म्यूरिएट ऑफ पोटाश के रूप में उपयोग किया जाता है। सूक्ष्म पोषक तत्व की भारतीय मिट्टी में कमी आम है। पर्णीय छिड़काव सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लिए सबसे प्रभावी है। सामान्य कमी को ठीक करने के लिए एक सामान्य मिश्रण में जिंक सल्फेट (5%), मैंगनीज सल्फेट (2 %), बोरिक एसिड (1%), फेरस सल्फेट (2%), कॉपर सल्फेट (1%), साथ ही यूरिया (5%) और चूना (25%) पीएच को समायोजित करने के लिए शामिल है। इसका साल में 2-3 बार छिडकाव करें, खासकर नई वृद्धि के दौरान। अत्यधिक सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी वाले क्षेत्रों में चिलेटीकृत रूप इस्तेमाल किया जा सकता है। ड्रिप सिंचाई के साथ फर्टिगेशन (सिंचाई प्रणाली के माध्यम से घुलनशील उर्वरकों का अनुप्रयोग) अत्यधिक कुशल है, पोषक तत्वों के नुकसान को कम करता है और लक्षित वितरण सुनिश्चित करता है।

जल प्रबंधन: कुशल जल प्रबंधन महत्वपूर्ण है, खासकर भारत की परिवर्तनशील वर्षा और बढ़ती पानी की कमी को देखते हुए।

सिंचाई के तरीके:

ड्रिप सिंचाई: अत्यधिक अनुशंसित है। 40-60 प्रतिशत पानी बचाता है, पानी का समान वितरण सुनिश्चित करता है, खरपतवारों के विकास को कम करता है, और अधिक नमी से होने वाले जड़ रोगों की घटनाओं को कम करता है। यह फर्टिगेशन के लिए आदर्श है।

स्प्रिंकलर सिंचाई: यह भी पानी-कुशल है, गर्म जलवायु में मिट्टी का तापमान कम कर सकता है, लेकिन आर्द्रता बढ़ा सकता है, जिससे फंगल रोगों को बढ़ावा मिल सकता है।

बेसिन/बाढ़ सिंचाई: सबसे कम कुशल है, वाष्पीकरण और गहरी रिसाव के माध्यम से महत्वपूर्ण पानी के नुकसान का कारण बनता है, और फाइटोफ्थोरा गमोसिस के जोखिम को बढ़ा सकता है।

सिंचाई अनुसूची: फूल आने (जनवरी-फरवरी) और फल विकास (मार्च-मई) के दौरान पानी का तनाव महत्वपूर्ण फूल और फल झड़ने का कारण बन सकता है। इन अवधियों के दौरान पर्याप्त नमी बनाए रखें। गर्मी के दौरान अधिक बार सिंचाई (मिट्टी के प्रकार और वाष्पीकरण के आधार पर हर 4-7 दिन) की आवश्यकता होती है। सर्दियों के दौरान सिंचाई की आवृत्ति कम करें (हर 10-15 दिन)। मिट्टी नमी सेंसर या टेन्सीओमीटर मिट्टी सिंचाई के लिए सटीक डेटा प्रदान कर सकता है, जिससे पानी का उपयोग अनुकूलित होता है।

छंटाई और प्रशिक्षण: छंटाई केवल शाखाओं को हटाना नहीं हैय यह अच्छे प्रकाश प्रवेश, वायु परिसंचरण, पेड़ के स्वास्थ्य और निरंतर उत्पादकता सुनिश्चित करने के लिए एक वैज्ञानिक कला है।

मृत, रोगग्रस्त या क्षतिग्रस्त लकड़ी को हटाना: रोग के प्रसार को रोकने के लिए आवश्यक है।

वाटर शूट को हटाना: ये जोरदार, गैर-उत्पादक वृद्धि पोषक तत्वों हेतु प्रतिस्पर्धा करते हैं और इन्हें नियमित रूप से हटा दिया जाना चाहिए।

क्रॉस-ओवर/रगड़ने वाली शाखाओं को हटाना: वायु परिसंचरण में सुधार करता है, छाया को कम करता है, और शाखा की चोट को रोकता है।

स्कर्ट छंटाई: हवा के परिसंचरण में सुधार, कीटों के छिपने को कम करने और फल संदूषण को रोकने हेतु जमीन को छूने वाली शाखाओं को हटाना।

कायाकल्प छंटाई: पुराने, अनुत्पादक पेड़ों के लिए, मुख्य शाखाओं का गंभीर सिर पीछे करना नई वृद्धि को उत्तेजित कर सकता है, हालांकि यह कुछ मौसमों की उपज का त्याग करेगा।

खरपतवार प्रबंधन: खरपतवार पानी, पोषक तत्वों और धूप के लिए निम्बू वर्गीय पेड़ों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं, और कीटों तथा बीमारियों को आश्रय दे सकते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

आधुनिक आम उत्पादन तकनीक अपनाएं, बेहतर मुनाफा पाएं

डॉ. प्रवीण कुमार हटवाल, डॉ. विष्णु शंकर मीना
डॉ. प्रवीण पिलानिया, डॉ. पार्वती दीवान
कृषि महाविद्यालय कोटपुतली
डॉ. श्वेता सिंह कृषि महाविद्यालय कुम्हेर
एस.के.एन. कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर (राजस्थान)

फल उत्पादन में भारत का विश्व में द्वितीय स्थान है। आम उत्पादन में भारत विष्व में प्रथम स्थान रखता है। भारत में विश्व का लगभाग 40 प्रतिशत आम उत्पादन होता है। आम का फल मिठास से परिपूर्ण, सुवास युक्त तथा जनमानस में लोकप्रिय होने के कारण इसे भारत में फलों का राजा भी कहा जाता है। वर्तमान में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ने के कारण प्रति किसान जोत का आकार कम होता जा रहा है। बदलते जलवायु परिवेष में रोगों तथा कीट का अधिक प्रकोप होने के कारण उनको नियंत्रण करने में अधिक लागत आ रही है, जिसके कारण किसान की उत्पादन लागत बढ़ती जा रही है। इसके अलावा आम में तुड़ाई उपरांत कुप्रबंधन से भी 20-22% क्षति होने तथा बाजार में उचित मूल्य नहीं मिलने के कारण भी किसानों का मुनाफा कम होता जा रहा है। इन परिस्थितियों में आम की खेती से अधिक मुनाफा लेने के लिए आवश्यक है कि उत्पादन लागत कम हो, बाग में वृक्षों के बीच की भूमि का समुचित उपयोग हो तथा उत्पादकता तथा फल की गुणवता में सुधार हो। इसके अतिरिक्त उचित तुड़ाई उपरांत प्रबंधन एवं विपणन की भी आवश्यकता है। आम में अनियमित फलन एक प्रमुख समस्या है। सभी मुख्य व्यावसायिक किस्में जैसे दशहरी, लगड़ा, चौसा आदि किस्में इस समस्या से ग्रस्त है। इसके समुचित समाधान के लिए आम की नियमित फलन देने वाली किस्में जैसे अबिंका, आम्रपाली, मल्लिका, अरूणिका आदि को लगाने से आम की बागवानी से अधिकाधिक लाभ मिलने की संभावना रहती है।

आम की सघन व मिश्रित बागवानी: आम्रपाली, दशहरी आदि किस्मों को यदि 5×5 मी. की दूरी पर लगाया जाये और वृक्ष के छत्र को समय समय पर काट-छाट कर नियंत्रित रखा जाए तो आम की खेती से सामान्य की अपेक्षा दोगुनी उत्पादकता प्राप्त होने की संभावना होती है। यदि आम के वृक्षों को 10×10 मी. पर लगाकर इसके बीच में 5×5 मी. पर अमरूद का समावेश कर खेती की जाए तो मिश्रित बागवानी से केवल आम की बागवानी की अपेक्षा कई गुना लाभ प्राप्त होता है।

वृक्षों की कतार के बीच में लें दूसरी फसल: आम के वृक्ष सामान्यतः 10-12 मी. की दूरी पर लगाए जाते हैं। वृक्षों की दो कतारों के बीच में खाली जगह रहती है। इस जगह में अधिक लाभ देने वाली दलहनी, सब्जी आदि फसलो की खेती कर अतिरिक्त आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। जब बगीचा पुराना होने लगे तब भी इस खाली जगह का समुचित उपयोग आंशिक छाया में फलने फूलने वाली फसले जैसे हल्दी, जमींकद, शतावरी इत्यादि उगाने में किया जा सकता है। इससे किसानों को अतिरिक्त आय के साथ-साथ आम की तुड़ाई होने के बाद भी रोजगार मिलेगा एवं बाग की नियमित देखभाल सुनिश्चित होगी। ऐसे बागों में वृक्ष का छत्र खोल कर (सेंटर ओपनिंग) आम के वृक्षों में प्रकाश की मात्रा सुचारू रूप से पहुंचती है जिससे फसल अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

आम के वृक्ष की कतार के बीच में लें दूसरी फसल

सेंटर ओपनिंग से करे उत्पादकता में वृद्धि: अधिक आयु के वृक्षों का छत्र बड़ा होने के कारण मध्य एव नीचे की शाखाओं को प्रकाश नहीं मिलता जिसके कारण इन शाखाओं में फल नहीं लगते। ऐसे वृक्षों में केवल बाहरी एवं उपरी शाखाओं पर ही फल लगते है। ऐसे वृक्षो की उत्पादकता बढ़ाने के लिए दिसंबर माह में छत्र के मध्य में स्थित एक, दो अथवा अधिक से अधिक तीन शाखाओं या उनके एक भाग का विरलन कर दिया जाता है। इससे छत्र के मध्य मे पर्याप्त रोशनी तथा हवा का संचार सुनिश्चित हो जाता है। वृक्ष के अंदर तक प्रकाश प्रवेश करने से मध्य तथा निचली शाखाओं में नई पत्तियां एवं कल्ले निकलते है और उनमें प्रकाश संश्लेषण होने से वृक्ष में आवश्यक खाद्य पदार्थ संचित होते है। यह गुणवता युक्त फल उत्पादन में सहायक होते हैं। साथ ही इस कार्य से पेड़ों की उंचाई में 15-20 प्रतिशत की कमी आ जाती है जिससे कीटनाशक छिड़काव, फलों की तुडाई आदि कार्य आसानी से हो जाते हैं। सेंटर ओपनिंग करने से छत्र में वायु का आवागमन बढ़ जाता है जिससे कीट एवं बीमारियों के प्रकोप में कमी आती है। इसके साथ ही अंतराशस्य फसलों का उत्पादन भी बढता है।

तुड़ाई उपरांत प्रबंधन: कब करे तुड़ाई-आम की तुड़ाई फलों की उचित परिपक्व अवस्था आने पर ही करनी चाहिए। समय से पहले तोड़े गये फल या अपरिपक्व फल कृत्रिम रूप से पकाने पर एक समान नहीं पकते हैं। ढुलाई एवं विपणन के दौरान पानी की अत्यधिक क्षति होने के कारण उनमें सिकुड़न आ जाती है। उचित परिपक्व अवस्था दशहरी एवं लंगडा किस्म में फल लगने से 85-90 दिनों बाद आती है तथा आम्रपाली, मल्लिका एवं चौसा में 105-110 दिनों बाद आती है। परिपक्वता की पहचान फल के गुदे का रंग सफेद से हल्का पीला होने तथा जाली पूर्ण रूप से मजबूत होने से भी की जा सकती है।

कैसे करे तुड़ाई: अधिकतर किसान आम की तुडाई वृक्ष की शाखाओं को लग्गी की सहायता से हिलाकर करते है। तुडाई के दौरान फलों के वृक्ष की शाखाओं एवं दृढ़ भूमि की सतह पर गिरने से 8-10 प्रतिशत फल फट जाते है। इसके कारण ये फल विपणन के लायक नहीं रहते और किसानों को आर्थिक हानि होती है। आम की सुरक्षित तुडाई के लिए आम तोड़क यंत्र का उपयोग करना चाहिए। इस यंत्र में एक लम्बा डंडा या पाइप लगी होती है जिसके कारण उंचे वृक्षों से भी फल आसानी से तोडे जा सकते है। इसमें फलों को इकट्ठा करने के लिए एक थैला लगा होता है जिसमे फल टूटने के बाद इकट्ठा हो जाते हैं और जमीन पर गिरने के कारण फलो पर लगने वाली चोट व खरोंच से बच जाते हैं। यह यंत्र फलों को डंठल के साथ तोड़ता है जिससे फलों पर चैप नहीं लगती एवं फल लगने के बाद दाग रहित तथा आकर्षक रंग के रहते हैं।

छंटाई एवं श्रेणीकरण: फल की सतह से धूल तथा सफेद चूर्ण को हटाने के लिए फलों को साफ पानी में धोना चाहिए। धोने से फलों में चमक आ जाती है। उनमें व्याप्त उष्मा भी निकल जाती है जिसके कारण फलों की श्वसन क्रिया धीमी हो जाती है और उनकी भंडारण क्षमता बढ़ जाती है। श्रेणीकरण फलों के आकार तथा वजन के आधार पर किया जाता है। बड़े आकार (250 ग्रा. से अधिक) तथा उच्च गुणवत्तायुक्त फलों को छोटे आकार व निम्न गुणवता वाले फलों से अलग कर लेना चाहिए। छोटे आकार के फलों को स्थानीय बाजार में तथा उच्च गुणवता वाले बड़े आकार के फलों को उचित पैकेजिंग कर बड़े शहरों में बेचना चाहिए।

फलों को सुरक्षित पकानाः फल पकाने के लिए व्यापक स्तर पर कैल्सियम कार्बाइड का प्रयोग किया जाता है। यह रसायन 'मसाला' के नाम से जाना जाता है। इसमें कैंसर पैदा करने वाले गुण होते है। भारत सरकार ने इसे खाद्य अपमिश्रण निवारण (PFA) नियम 1955 एवं खाद्य सुरक्षा और मानक (निषेध और बिक्री पर प्रतिबंध) विनियम, 2011 के अन्तर्गत प्रतिबंधित कर रखा है, किन्तु फिर भी इसका कृत्रिम रूप से फल पकाने में अंधाधुंध उपयोग किया जा रहा है।

फल पकाने का सुरक्षित तरीका: भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान (बवेर), लखनउ द्वारा फल पकाने का एक आसान एवं सुरक्षित तरीका विकसित किया गया है। इस तरीके से किसान बाग में ही फलों को पका सकते है। फल पकाने के लिए इथ्रेल का घोल तैयार किया जाता है जिसकों तुड़ाई के बाद फलों के उपर छिड़क दिया जाता है। फिर फलों को हवा में सुखने दिया जाता है। सूखने के बाद फलों को प्लास्टिक क्रेट्स अथवा सीफबी डिब्बों में भरकर पेपर से ढंक दिया जाता है। पकने में लगने वाला समय आम की किस्म, फल की परिपक्वता अवस्था तथा घोल की सांद्रता पर निर्भर करता है। इस घोल से उपचारित फल 3-4 दिन में पक जाते है। दशहरी किस्म के मई माह के अंतिम सप्ताह में तोडे गये फल उपचार के बाद 5-6 दिन तथा जून के प्रथम सप्ताह में तोड़े गये फल उपचार के बाद 3-4 दिन में पक जाते है।

फलो की पैकेजिंग कैसे करें: पैकेजिंग सामग्री ऐसी होनी चाहिए जिसमें कि परिवहन के दौरान कम से कम फल की क्षति हो, तथा फल की गुणवता बनी रहे। पैकेजिंग के लिए सीएफबी बॉक्स, लकड़ी की पैटी तथा दलिया का प्रचलन है। यदि फलों को दूर के बाजारों में विपणन करना हो तो उनकी पैकेंजिग सीफबी बॉक्स में करनी चाहिए। सीएफबी बॉक्स में फलों की पैकिंग करने से उनमें खरोंच नहीं लगती है। परिवहन के दौरान होने वाली क्षति भी कम होती है तथा पकने के उपरांत उनकी गुणवता बेहतर बनी रहती है।

फलों को बॉक्स में भरते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बॉक्स की क्षमता के अनुसार ही फल भरने चाहिए। बॉक्स में क्षमता से ज्यादा फल भरने से परिवहन के दौरान बॉक्स फट सकता है तथा दबाव के कारण फलों को क्षति होती है तथा गुणवता भी प्रभावित होती है। CISH संस्थान द्वारा 2 किग्रा. तथा 4 किग्रा. क्षमता के छिद्रयुक्त सीफबी बॉक्स का डिजायन तैयार किया गया है। यह सीफबी बॉक्स सुरक्षा की दृष्टि से मजबूत तथा आकर्षक है। यदि किसान को आम का विपणन सीधे ही उपभोक्ता करना है तो वह उपभोक्ता की मांग के अनुसार सीफबी बॉक्स के आकार का चुनाव कर सकता है।

फलों का विपणन: आमदनी की दृष्टि से वर्तमान समय में विपणन सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है। उत्तरी भारत में आम की सभी किस्मों की तुड़ाई दो महीने (जून तथा जुलाई) में की जाती है। इन दो महीनों में स्थानीय बाजारों में आम की अत्यधिक आपूर्ति होने के कारण मूल्य अक्सर कम हो जाता है तथा किसानों को लाभ नहीं मिल पाता है। अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए बुद्धिमत्ता पूर्ण विपणन करना चाहिए। उच्च गुणवता वाले फलो का विपणन सिंगल लेयर वाले सीफबी बॉक्स में पैक करके बड़े शहरों में करना चाहिए। उपभोक्ताओंसे संपर्क स्थापित करके उनको सीधे ही आम की आपूर्ति की जा सकती है। ई- राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई-एनएएम) में मंडियों को इन्टरनेट से जोड़ा गया है। इसके माध्यम से देश के विभिन्न बाजारों में फल व्यापारियों से संपर्क साध कर विपणन किया जा सकता है।

आम के प्रसंस्करण से कमायें अतिरिक्त आमदनी: आम उत्पादक क्षेत्रों में आम की फलत के दौरान आंधी/तेज हवा के कारण लगभग 15 से 50% तक फल गिर जाते है। इसके अलावा त्रुटिपूर्ण तुडाई विधि जैसे शाखाओं को हिलाकर या लग्गी/डग्गी से पीटकर फल तोड़ने के कारण चोट लगने से 10-12% फल फटकर खराब हो जाते है। इन फलों का प्रसंस्करण खटाई, अमचूर तथा पन्ना बनाकर के अतिरिक्त आय अर्जित की जा सकती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

वृक्षायुर्वेद श्रृंखला : बीजोपचार एवं अंकुरण प्रबंधन

✍ श्री खेताराम सहायक आचार्य (वृक्षायुर्वेद)
✍ प्रो. सुमित नथानी (विभागाध्यक्ष)
✍ डॉ. तरुण शर्मा (सहायक आचार्य) वृक्षायुर्वेद विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान (मानद विश्वविद्यालय) जयपुर

प्रस्तावना- भारत की कृषि परंपरा हजारों वर्षों पुरानी है। हमारे ऋषि-मुनियों ने केवल मानव स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि पौधों और वृक्षों के स्वास्थ्य पर भी गहन अध्ययन किया। इसी ज्ञान पर आधारित है वृक्षायुर्वेद, जिसमें बीज चयन, बीजोपचार, भूमि प्रबंधन, सिंचन तथा पौध संरक्षण की अनेक वैज्ञानिक विधियों का वर्णन मिलता है। आज जब किसान रासायनिक कृषि से होने वाली समस्याओं का सामना कर रहे हैं, तब वृक्षायुर्वेद में वर्णित प्राकृतिक एवं जैविक तकनीकें पुनः प्रासंगिक हो गई हैं। बीजोपचार ऐसी ही एक महत्वपूर्ण तकनीक है, जो बीजों की अंकुरण क्षमता बढ़ाने, रोगों से सुरक्षा देने तथा पौधों की प्रारंभिक वृद्धि को मजबूत बनाने में सहायक तथा स्वस्थ पौधों की प्राचीन भारतीय तकनीक है !

उत्तम बीज ही अच्छी फसल का आधार

वृक्षायुर्वेद के अनुसार स्वस्थ एवं पूर्ण परिपक्व बीजों का चयन सर्वप्रथम आवश्यक है। बीजों का संग्रहण माघ एवं फाल्गुन मास (जनवरी-मार्च) में करना श्रेष्ठ माना गया है। संग्रहित बीजों को अच्छी तरह सुखाकर स्वच्छ एवं सूखे स्थान पर संग्रहित करना चाहिए। बीजों को तेल, घी, नमक, छाछ अथवा अन्य दूषित पदार्थों के संपर्क से बचाना चाहिए ताकि उनकी अंकुरण क्षमता बनी रहे।

बीजोपचार का महत्व

बीजोपचार का उद्देश्य केवल अंकुरण बढ़ाना नहीं है, बल्कि बीजों को रोगों एवं कीटों से सुरक्षित रखना भी है। वृक्षायुर्वेद में प्राकृतिक पदार्थों द्वारा बीज उपचार की अनेक विधियाँ बताई गई हैं।

1. दुग्ध उपचार

बीजों को कुछ दिनों तक दूध में भिगोकर सुखाया जाता है। यह प्रक्रिया बीजों को पोषण प्रदान करती है तथा अंकुरण क्षमता बढ़ाती है।

2. विडंग उपचार

विडंग (Embelia ribes) चूर्ण को मधु या घृत के साथ मिलाकर बीजों पर लेप किया जाता है। यह प्राकृतिक रोगनाशक एवं अंकुरण प्रवर्धक माना गया है।

3. गोमय उपचार

गोमय एवं गोमय चूर्ण से बीजों का उपचार करने से लाभकारी सूक्ष्मजीव बीजों के आसपास विकसित होते हैं, जिससे अंकुरण और प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है।

4. वचा का उपयोग

वचा (Acorus calamus) को प्राकृतिक कवकनाशी माना गया है। इसके प्रयोग से बीजों को फफूंदजनित रोगों से बचाया जा सकता है।

भूमि की तैयारी भी उतनी ही महत्वपूर्ण

वृक्षायुर्वेद में भूमि को जीवंत माना गया है। बीज बोने से पहले भूमि का उचित वातन (Aeration) करने की सलाह दी गई है।

भूमि में पर्याप्त वायु संचार होने से–

जड़ों का विकास बेहतर होता है।

सूक्ष्मजीव सक्रिय रहते हैं।

पौधों को पोषक तत्व आसानी से उपलब्ध होते हैं।

हरित खाद की प्राचीन तकनीक

प्राचीन ग्रंथों में तिल एवं माष जैसी फसलों को पहले बोकर बाद में मिट्टी में मिला देने की सलाह दी गई है। यह आधुनिक ग्रीन मैन्योरिंग (Green Manuring) का ही स्वरूप है।

इससे— * मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है। * जैविक कार्बन में वृद्धि होती है। * पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त होते हैं।

मल्चिंग का महत्व

बीज बोने के बाद उन्हें सूखी घास से ढकने का उल्लेख मिलता है।

मल्चिंग के लाभ

* मिट्टी में नमी बनी रहती है। * तापमान नियंत्रित रहता है।
* खरपतवार कम उगते हैं। * अंकुरण प्रतिशत बढ़ता है।

आज भी प्राकृतिक खेती में यह तकनीक व्यापक रूप से अपनाई जा रही है।

वृक्षारोपण का उपयुक्त समय

वृक्षायुर्वेद के अनुसार आषाढ़ एवं श्रावण (जून-अगस्त) वृक्षारोपण के लिए सर्वश्रेष्ठ समय है। इस अवधि में वर्षा एवं नमी की उपलब्धता पौधों की स्थापना में सहायक होती है।

आधुनिक कृषि में वृक्षायुर्वेद की उपयोगिता

वृक्षायुर्वेद की अनेक तकनीकें आज के वैज्ञानिक सिद्धांतों से मेल खाती हैं।

वृक्षायुर्वेद तकनीक

आधुनिक नाम

दुग्ध उपचार

Seed Priming

गोमय उपचार

Microbial Inoculation

वचा उपचार

Botanical Fungicide

मल्चिंग

Moisture Conservation

हरित खाद

Green Manuring

भूमि वातन

Soil Aeration

यह दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय कृषि ज्ञान अत्यंत वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक था।

निष्कर्ष

वृक्षायुर्वेद में वर्णित बीजोपचार, भूमि उपचार एवं वृक्षारोपण की तकनीकें आज की जैविक एवं प्राकृतिक खेती के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। दूध, गोमय, विडंग, वचा, तिल तथा हरित खाद जैसे प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके किसान कम लागत में स्वस्थ पौधे तैयार कर सकते हैं तथा टिकाऊ कृषि को बढ़ावा दे सकते हैं। यदि हम प्राचीन ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का समन्वय करें, तो कृषि को अधिक लाभकारी, पर्यावरण-अनुकूल और टिकाऊ बनाया जा सकता है।

सोयाबीन के मुख्य नाशीकीट एवं उनका प्रबन्धन

डॉ. के.सी. अहीर कृषि अनुसंधान उपकेन्द्र, अकलेरा, झालावाड़ (राजस्थान)

डॉ. डी.एल. यादव कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा (राजस्थान)

मोनिका यादव राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा

सोयाबीन एक महत्वपूर्ण दलहनी एवं तिलहनी फसल है, जिसमें 40% प्रोटीन एवं 20% तेल होता है। सोयाबीन से अनेकों प्रकार के उत्पाद तैयार किये जा रहे है। किसानों के लिए यह कम साधन पर भी लाभदायक नकदी फसल होकर फसल चक्र में भी उपयुक्त है। भारत में सोयाबीन उत्पादन में मध्यप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र एवं कर्नाटक अग्रणी राज्य है। अधिक उत्पादन के लिये आवश्यक है कि समय पर सारी कर्षण क्रियाये कि जाये। इसके साथ ही समय पर नाशीकीटों एवं रोगों का उचित प्रबंधन करना चाहियें। इस लेख में सोयाबीन की फसल में लगने वाले मुख्य नाशीकीटों एवं रोगों के बारे में जानकारी दी गयी है व साथ ही इन नाशीकीटों एवं रोगों का प्रबंधन कैसे करें के बारे में भी बताया गया है। अतः किसान भाई बतायें गये उपायों को अपनाकर अपनी फसल को नाशीकीटों एवं रोगों से बचाकर अधिक उत्पादन ले सकता है।

सोयाबीन के मुख्य नाशीकीट एवं उनका प्रबन्धन

1.गर्डल बीटलः यह कीट सोयाबीन की फसल में सर्वाधिक नुकसान पहुँचाता है। इस कीट की मादा पती के डंठल या कोमल तने पर मुखांग से दो चक्र 3 से 7 से.मी. की दूरी पर बनाकर नीचे वाले चक्र के पास तीन छेद बनाती है तथा बीच वाले छेद के पास अण्डें देती है। अण्डों से भृंगक निकलने के बाद तनें को अंदर ही अंदर खाकर खोखला कर देता है। जिससे तना कमजोर हो जाता है तथा जड़ों द्वारा अवशोषित जल व खनिज पतियों तक नहीं पहुँच पाता है और सम्पूर्ण पौधा सूखकर मुरझा जाता है। इस कारण फसल के उत्पादन काफी कमी आती है।

प्रबन्धनः

* खेत की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करे।
* ग्रसित पौधों की पतियों व तनों को तोडकर नष्ट कर दे।
* कीट प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करे।
* फंदा फसल के रूप में ढैचा की बुवाई करें।
* प्रति हैक्टर 1 लीटर क्यूनालफॉस 25 ई.सी. या 1.25 से 1.5 लीटर ट्राइजोफॉस 40 ई.सी. या 1.25 लीटर इथियोन 50 ई.सी. आदि में सें किसी एक का छिड़काव करे।

2.तम्बाकू की लटः आरम्भ में सूंडियाँ पतियों की निचली सतह पर दिखाई देती हैं एवं पतों के हरे भाग को खुरच कर खाती है जिससे पती छलनी की तरह दिखती है एवं इसमें केवल नसें ही रह जाती है। इसके बाद सूंडी फूलों एवं फलियों पर आक्रमण करती है जिससे उपज में काफी नुकसान होता है।

प्रबन्धनः

* गर्मियों में गहरी जुताई करें।
* खेतों में प्रति हैक्टेयर 3 - 4 प्रकाश प्रपंच का उपयोग करें।
* खेत में चारो ओर अरण्डी की फसल की बुवाई करे।
* खेत में अंडें दिखाई देते ही एक सप्ताह के अंतराल पर 6 बार अंड परजीवी ट्राइकोग्रामा किलोनिस के कार्ड फसलों पर लगाएं।
* अंडों से सूंडियाँ निकलने पर सूंडीं परजीवी ब्रेकोन स्पी. या स्टरनिमा थर्मोफिल्म सूत्रकृमि खेतों में छोडें।
* खेतों में सूंडीं की पहली व दूसरी अवस्था के लिए 8 - 10 दिन के अंतराल पर प्रति हैक्टेयर स्पोडोप्टेरा एन.पी.वी. 250 एल. ई. का शाम के समय छिड़काव करना चाहिये।
* खड़ी फसल में प्रति हैक्टेयर 1 कि. ग्रा. बी. टी. का छिड़काव करें जो इस कीट में रोगजनक है।
* प्रति हैक्टेयर 1.5 - 2 ली. क्यूनोलफॉस 25 ई. सी. या 3 - 5 ली. क्लोरोपायरीफॉस 20 ई. सी. या 1 ली. क्लोरफंनापीर 10 एस. सी. या 0.875 - 1 कि. ग्रा. थायोडीकार्ब 75 डब्ल्यू. पी. में से किसी एक का छिड़काव करें।

3.तना मक्खीः इस कीट की सूंडी अवस्था पौधें के तने को नुकसान पहुँचाती है। सूंडियॉं जडों से लगभग 40 से.मी. ऊपर तनें में घुसकर अंदर ही अंदर टेढी-मेढी सुरंग बनाकर तनें को खोखला कर देती है। जैसे-जैसे पौधें की लंबाई बढती है वैसे-वैसे यह सूंडी भी आगे बढती जाती है। यदि शुरू में ही इस कीट का आक्रमण हो जाये तो पौधा सूखकर मर जाता है एवं खेत में पौधों की संख्या कम हो जाती है। यदि बाद की अवस्था में आक्रमण हो तो पौधा सूखता नहीं लेकिन तनें में सुरंग होने से फलियों में दानों की संख्या, आकार एवं वजन में कमी आती है।

प्रबन्धनः

* खेत की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें।
* समय पर फसल की बुवाई करे।
* कीट प्रतिरोधी या कीट सहनशील किस्मों की बुवाई करें जैसे- जे.एस.-93-05, जे.एस.-90-41, पी.के.-1042 आदि।
* बीजोपचार कर बुवाई करेः इमिडाक्लोप्रिड 3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से करे।
* खेतों में नीम के बीजों के पाउडर या नीबौली के पाउडर का छिड़काव करते रहना चाहिये।
* डाइमिथोएट 2 मि.ली. प्रति लीटर की दर से घोल बनाकर छिड़काव करे।

4.लीफ माइनरः यह कीट पौधे की शुरूआती अवस्था मे ही जब 2-3 पतियाँ हों तब आक्रमण शुरू कर देता है। सूंडीं पतियों में सुरंग बनाती हुई हरे भाग को खाती है जिससे पतियों पर भूरे चकते पड जाते है। यह कीट कभी-कभी आस-पास की पतियो को आपस में मोडकर पतियों के ऊतक को खाता है।

प्रबन्धनः * फसल लेने के बाद अवशेषों को जलाकर नष्ट कर दें। * खेत में प्रकाश पाश लगाएं। * अंडा परजीव्याभ ट्राइकोग्रामा किलोनिस को खेत में छोडे़। * सूंडी परजीव्याभ ब्रेकन हेबेटर एवं एपेन्टेलस जवेन्सिस को खेत में छोड़ें। * खड़ी फसल पर नींबौली के 5% घोल का छिड़काव करे। * प्रति है. 2 लीटर क्लोरोपायरीफॉस 20 ईसी या 625-750 ग्रा. ऐसीफेट 75 एस.पी. या 400-500 मि.ली. लैंबडायायहेलोथ्रिन 5 ईसी आदि में सें किसी एक का छिड़काव करें।

5.सफेद मक्खीः इस कीट के शिशु व वयस्क दोनों ही पतियों की निचली सतह पर बैठकर पतियों का रस चूसते हैं तथा शहद जैसा चिपचिपा पदार्थ भी छोडतें है जिस पर फफूँद उत्पन्न होकर पतियों का रंग काला कर देती है एवं पतियां पूर्ण विकसित होने से पूर्व ही झड जाती है। यह कीट विषाणु रोग फैलाने में भी सहायक होता है।

प्रबंधनः * प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करें। * प्रति हैक्टेयर 30 से 35 पीले या चिपचिपे ट्रेप लगाने चाहिए। * खेतों में तथा आस - पास की जगहों से खरपतवार नष्ट कर दें। * नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों का अधिक मात्रा में इस्तेमाल ना करें। * इस कीट पर परभक्षी कीट जैसे - क्राईसोपर्ला कारनिया का खेतों में ज्यादा से ज्यादा संरक्षण करें। * अगस्त - सितम्बर में नीम का कम से कम छह बार छिड़काव करें।* सफेद मक्खी दिखाई देते ही फिश आयल रेसिन सोप 1.5 कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर से छिडकाव करें। * प्रति है. 75 ग्राम क्लोथियानिडिन 50 डब्ल्यू.जी. या 500 मि.ली. स्पाईरोमेहिफेम 22.9 ई. सी. या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस. एल. या 150 - 200 ग्राम ऐसिटमिप्रिड 20 एस. पी. आदि मे से किसी एक का छिडकाव करें।

6.सोयाबीन की सेमीलुपरः इस कीट की सूंडी फसल को नुकसान पहुँचाती है। यह पतियों को खुरच कर खाती है। सूंडियों द्वारा पतियों के खाये हुए भाग पर सफेद झिल्ली ही रह जाती है। सूंडी बडी होने पर पतियों में विभिन्न आकार के छेद बनाती हुई खाती है जिससे पतियों में केवल शिराएँ ही रह जाती है। जिसके कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित होती है और पौधा शीघ्र ही मुरझा जाता है। इस कीट का प्रकोप अगस्त-सितम्बर से आरम्भ होता है जो फसल के पकने तक रहता है।

प्रबन्धनः * खेत की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करे एवं खेत को फसल अवशेषों से मुक्त रखे। * खेत में प्रति है. 3-4 प्रकाश पाश लगाये। * खेत में लकडी की खपच्चियां लगाये ताकि उन पर पक्षी बैठेंगे तो सूंडी को खा जायेगे। * खड़ी फसल पर प्रति हैक्टर 1 लीटर क्यूनालफॉस 25 ई.सी. या 500 मि.ली. प्रोफैनोफॉस 50 ई.सी. या 450 मि.ली. स्पाइनेटोरम 12 एस.सी. आदि का छिडकाव करें।

7.हरा तैलाः इस कीट के शिशु पतियों की निचली सतह से रस चूसते हैं जिससे पतियाँ मुडनें लगती है और इनका रंग लाल, पीला हो जाता है। इस कीट का अत्यधिक प्रकोप होने पर पतियॉं सूखकर झड जाती हैं और पौधें की बढवार रूक जाती है, जिससे उपज में कमी आती है।

प्रबंधनः * अगेती बुवाई करें। * खेत में प्रकाश पाश लगाये। * पीले चिपचिपे पाश प्रति हैक्टर 30 से 35 लगाये। * नाइट्रोजनयुक्त उर्वरक का प्रयोग कम से कम करें। * खेत में इस कीट के परभक्षी कीट जैसे क्राइसोपा, कॉक्सीनेलिडस आदि का संरक्षण करें। * खेत में समय-समय पर नीम के बीजों के पाउडर या नींबौली के पाउडर का छिडकाव करें। * प्रति है. 100 मि.ली. इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. या 625 ग्राम ऐसीफेट 75 एस.पी. या 65 ग्राम थायामेथोक्सोम 25 डब्ल्यू.जी. का छिडकाव करे।

8.सोयाबीन की भूरी घुनः इस कीट की सूंडी एवं वयस्क दोनों ही अवस्थाएं पौधे को नुकसान पहुंचाती है। सूंडी पौधें की प्रारम्भिक अवस्था में ही पतियों को खाना आरम्भ कर देती है जबकि वयस्क फूल व ताजी फलियों को खाकर नुकसान पहुंचाते हैं। इस कीट का अधिक प्रकोप होने पर पौधे की पतियाँ, फूल, फलियां आदि को नुकसान पहुंचाता है तथा पौधे पर केवल शाखाएं ही रह जाती हैं।

प्रबन्धनः * गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करे। * फसल अवशेषों को जलाकर नष्ट कर दे। * खेत में प्रकाश पाश लगाये। * खेत में नीम के बीजों के पाउडर या नीबौली के पाउडर का छिडकाव करे। * खड़ी फसल में प्रकोप होने पर 1 लीटर क्यूनोलफॉस 25 ई.सी. का छिड़काव करें।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

नूपुर शर्मा (शस्य वैज्ञानिक)
डॉ. बी.एल. मीणा वरिष्ठ वैज्ञानिक व अध्यक्ष
सुनील मीणा तिलहन तकनीकी सहायक
कृषि विज्ञान केंद्र सवाई माधोपुर, कृषि विश्वविद्यालय कोटा (राजस्थान)

सफलता की कहानी-मधुमक्खी पालन आधारित समन्वित खेती से कृषक की आय में उल्लेखनीय वृद्धि

केंद्र द्वारा 7 दिवसीय मधुमक्खी पालन पर प्रशिक्षण,

कृषक के खेत पर मधुमक्खी पालन इकाई की स्थापना

राजस्थान सवाई माधोपुर जिले के बामनवास क्षेत्र के तिगरिया गाँव के कृषक ऋषिकेश मीणा (पुत्र श्रीलाल मीणा) ने कृषि के विभिन्न घटकों को अपनाकर अपनी आर्थिक स्थिति में उल्लेखनीय सुधार किया है। वर्ष 2020 से पूर्व कृषक केवल पारंपरिक खेती करते थे, जिसमें मुख्य रूप से बाजरा, सरसों, गेहूँ तथा चना जैसी फसलों की खेती होती थी। इससे प्राप्त आय सीमित थी।

वर्ष 2022 में कृषक ने मधुमक्खी पालन को अपनी खेती के साथ जोड़ा और 35 बक्सों से इसकी शुरुआत की। नियमित देखभाल तथा उचित प्रबंधन के कारण यह गतिविधि तेजी से सफल हुई। वर्तमान में वर्ष 2026 में कृषक के पास लगभग 180 मधुमक्खी बक्से हैं, जिनसे उन्हें प्रतिवर्ष लगभग 5,40,000 रुपये की आय प्राप्त हो रही है। कृषक के पास लगभग 2.0 हेक्टेयर कृषि भूमि है, जिसमें वे बाजरा-सरसों आधारित फसल प्रणाली अपनाते हैं। इसके साथ ही उन्होंने पशुपालन को भी अपनी खेती का महत्वपूर्ण भाग बनाया है। वर्तमान में उनके पास 4 मुर्रा नस्ल की भैंस, 1 देशी गाय तथा 8 बकरियाँ हैं। फसल उत्पादन, मधुमक्खी पालन तथा पशुपालन जैसे सभी कृषि घटकों को जोड़कर कृषक ने एक सफल समन्वित खेती प्रणाली स्थापित की है। इन सभी गतिविधियों से उन्हें वर्तमान में लगभग 7,65,000 रुपये प्रति वर्ष की कुल आय प्राप्त हो रही है। यह उदाहरण दर्शाता है कि यदि किसान पारंपरिक खेती के साथ मधुमक्खी पालन तथा पशुपालन को अपनाएँ, तो वे अपनी आय में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। यह सफलता की कहानी क्षेत्र के अन्य किसानों के लिए प्रेरणास्रोत है।

तकनीक का अपनाना

वर्ष 2022 में कृषक ऋषिकेश मीणा ने अपनी पारंपरिक खेती के साथ मधुमक्खी पालन को आय के अतिरिक्त स्रोत के रूप में अपनाने का निर्णय लिया। उन्होंने प्रारम्भ में सीमित संसाधनों के साथ 35 मधुमक्खी बक्सों से इस गतिविधि की शुरुआत की। उचित देखभाल, नियमित प्रबंधन तथा आसपास उपलब्ध पुष्पीय स्रोतों का लाभ लेते हुए कृषक ने मधुमक्खी पालन को धीरे-धीरे विकसित किया। समय के साथ इस गतिविधि का विस्तार करते हुए वर्तमान में कृषक के पास लगभग 180 मधुमक्खी बक्से हो गए हैं, जिससे उन्हें शहद उत्पादन के माध्यम से अच्छी आय प्राप्त हो रही है।

परिणाम उपलब्धियां

मधुमक्खी पालन को अपनाने के बाद कृषक की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। प्रारम्भ में 35 बक्सों से शुरू की गई यह गतिविधि निरंतर विस्तार पाती गई और वर्तमान में वर्ष 2026 तक कृषक के पास लगभग 180 मधुमक्खी बक्से हो चुके हैं। इन बक्सों से प्राप्त शहद उत्पादन के माध्यम से कृषक को प्रतिवर्ष लगभग 6,75,000 रुपये की आय प्राप्त हो रही है।

इसके अतिरिक्त मधुमक्खियों द्वारा फसलों में परागण की प्रक्रिया बेहतर होने से बाजरा, सरसों तथा अन्य फसलों की उत्पादकता में भी सकारात्मक प्रभाव देखा गया है। इस प्रकार मधुमक्खी पालन को खेती के साथ जोड़ने से न केवल शहद उत्पादन से अतिरिक्त आय प्राप्त हुई, बल्कि फसल उत्पादन में भी सुधार हुआ है।

सारणी 1–कृषक की आय में परिवर्तन (पहले और बाद की स्थिति)

क्रम संख्या	गतिविधि	वर्ष 2020 से पहले स्थिति	वर्ष 2026 में स्थिति	वार्षिक आय (रुपये)
1	फसल उत्पादन	पारंपरिक खेती (बाजरा, सरसों, गेहूँ, चना)	2.0 हेक्टेयर में बाजरा–सरसों आधारित फसल प्रणाली	1,50,000
2	मधुमक्खी पालन	नहीं था	180 बक्सों के साथ मधुमक्खी पालन (लगभग 3600 किग्रा शहद / 150 रुपय / किग्रा)	5,40,000
3	भैंस पालन	सीमित	4 मुर्रा नस्ल की भैंस	50,000
4	गाय पालन	नहीं के बराबर	1 देशी गाय	10,000
5	बकरी पालन	बहुत कम	8 बकरियाँ	15,000
कुल वार्षिक आय	.	लगभग 1,50,000 रुपये	.	लगभग 7,65,000 रुपये

सारणी 1 में कृषक द्वारा अपनाई गई समन्वित खेती प्रणाली के विभिन्न घटकों तथा उनसे प्राप्त होने वाली अनुमानित वार्षिक आय का विवरण दिया गया है। इसमें दर्शाया गया है कि कृषक के पास मधुमक्खी पालन, फसल उत्पादन तथा पशुपालन जैसी विभिन्न गतिविधियाँ हैं, जिन्हें एक साथ अपनाकर उन्होंने अपनी आय के स्रोतों को बढ़ाया है। सारणी के अनुसार कृषक के पास 180 मधुमक्खी बक्से हैं, जिनसे लगभग 3600 किलोग्राम शहद का उत्पादन होता है। यदि शहद का औसत मूल्य 150 रुपये प्रति किलोग्राम माना जाए, तो मधुमक्खी पालन से लगभग 5,40,000 रुपये प्रति वर्ष की आय प्राप्त होती है, जो कुल आय का प्रमुख भाग है। इसके अतिरिक्त कृषक के पास लगभग 2.0 हेक्टेयर कृषि भूमि है, जिसमें बाजरादुसरसों आधारित फसल प्रणाली अपनाई जाती है, जिससे लगभग 1,50,000 रुपये की वार्षिक आय होती है। पशुपालन के अंतर्गत 4 मुर्रा नस्ल की भैंसों से लगभग 50,000 रुपये, 1 देशी गाय से लगभग 10,000 रुपये तथा 8 बकरियों से लगभग 15,000 रुपये की आय प्राप्त होती है। इस प्रकार फसल उत्पादन, मधुमक्खी पालन तथा पशुपालन जैसे सभी घटकों को जोड़ने पर कृषक को लगभग 7,65,000 रुपये प्रति वर्ष की कुल आय प्राप्त हो रही है। यह दर्शाता है कि विभिन्न कृषि गतिविधियों को एकीकृत रूप से अपनाने से कृषक की आय में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है।

प्रभाव

समन्वित खेती प्रणाली अपनाने से कृषक की आर्थिक स्थिति में स्पष्ट सुधार हुआ है और उनकी वार्षिक आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। कृषक की इस सफलता को देखकर आसपास के अन्य किसान भी मधुमक्खी पालन जैसी गतिविधियों को अपनाने के लिए प्रेरित हो रहे हैं।

निष्कर्ष-मधुमक्खी पालन को फसल उत्पादन और पशुपालन के साथ जोड़ने से किसानों की आय बढ़ाई जा सकती है। इसलिए किसानों को समन्वित खेती प्रणाली अपनाकर उपलब्ध संसाधनों का बेहतर उपयोग करना चाहिए।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

एल नीनो की आहट और भारतीय कृषि: क्या इस वर्ष किसानों के सामने खड़ी होगी नई चुनौती?

बदलते मौसम के दौर में कृषि प्रबंधन की नई परीक्षा

ऋचा सचान (सहायक प्राध्यापक) प्रसार शिक्षा, कृषि महाविद्यालय जोधपुर, कृषि विश्वविद्यालय जोधपुर (राजस्थान)

सीमा यादव (सहायक प्राध्यापक) प्रसार शिक्षा, कृषि महाविद्यालय जोधपुर, कृषि विश्वविद्यालय जोधपुर, (राजस्थान)

परिचय- भारत की कृषि व्यवस्था सदियों से मानसून पर आधारित रही है। देश के करोड़ों किसान आज भी वर्षा के भरोसे खेती करते हैं। मानसून केवल खेतों की सिंचाई का साधन नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था, खाद्य सुरक्षा, पशुपालन और किसानों की आय का आधार भी है। यही कारण है कि जब भी मौसम वैज्ञानिक 'एल नीनो' की संभावना व्यक्त करते हैं, तब किसानों, नीति-निर्माताओं और कृषि विशेषज्ञों की चिंताएँ बढ़ जाती हैं। वर्तमान वर्ष में अंतरराष्ट्रीय मौसम एजेंसियों और विभिन्न जलवायु मॉडल्स ने संकेत दिए हैं कि प्रशांत महासागर में एल नीनो की परिस्थितियाँ विकसित हो सकती हैं। यदि यह स्थिति मजबूत होती है तो भारतीय मानसून के स्वरूप पर इसका प्रभाव पड़ सकता है। हालांकि यह मान लेना उचित नहीं होगा कि एल नीनो का अर्थ निश्चित रूप से सूखा ही है, लेकिन यह अवश्य कहा जा सकता है कि मानसून की नियमितता, वर्षा की मात्रा और उसके वितरण में असामान्य परिवर्तन देखने को मिल सकते हैं। ऐसे समय में किसानों के लिए मौसम विज्ञान को समझना उतना ही आवश्यक हो जाता है जितना बीज, उर्वरक और सिंचाई की जानकारी।

आखिर क्या है एल नीनो?- एल नीनो एक प्राकृतिक जलवायु घटना है, जो प्रशांत महासागर के मध्य और पूर्वी भाग में समुद्र की सतह के तापमान के सामान्य से अधिक गर्म हो जाने पर उत्पन्न होती है। सामान्य परिस्थितियों में प्रशांत महासागर के पश्चिमी भाग में गर्म पानी और पूर्वी भाग में अपेक्षाकृत ठंडा पानी पाया जाता है। लेकिन एल नीनो के दौरान यह संतुलन बिगड़ जाता है और गर्म जल पूर्वी दिशा की ओर फैलने लगता है। समुद्र के तापमान में होने वाला यह परिवर्तन केवल महासागर तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वायुमंडलीय परिसंचरण को भी प्रभावित करता है। परिणामस्वरूप विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में वर्षा और तापमान के पैटर्न बदल जाते हैं। भारत में दक्षिण-पश्चिम मानसून भी इसी वैश्विक जलवायु प्रणाली का हिस्सा है, इसलिए एल नीनो का प्रभाव भारतीय मानसून पर दिखाई देता है। इतिहास गवाह है कि भारत में कई बड़े सूखे एल नीनो वर्षों के दौरान देखने को मिले हैं। हालांकि प्रत्येक एल नीनो वर्ष में सूखा पड़े, यह आवश्यक नहीं है। कई बार अन्य समुद्री और वायुमंडलीय कारक इसके प्रभाव को कम कर देते हैं। फिर भी कृषि वैज्ञानिक एल नीनो को भारतीय कृषि के लिए एक महत्वपूर्ण चेतावनी संकेत मानते हैं।

इस वर्ष की स्थिति क्यों महत्वपूर्ण है?- हाल के वर्षों में जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम की अनिश्चितता लगातार बढ़ रही है। कभी अत्यधिक वर्षा, कभी लंबे शुष्क अंतराल, कभी असामयिक ओलावृष्टि और कभी अत्यधिक तापमान किसानों के लिए नई चुनौतियाँ लेकर आ रहे हैं। ऐसे समय में यदि एल नीनो की स्थिति भी विकसित होती है तो मानसून की सामान्य लय प्रभावित हो सकती है। विशेषज्ञों का मानना है कि एल नीनो के प्रभाव से मानसून देर से सक्रिय हो सकता है, कुछ क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा सामान्य से कम रह सकती है और वर्षा का वितरण असमान हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि एक क्षेत्र में बाढ़ जैसी स्थिति बन सकती है, जबकि दूसरे क्षेत्र में सूखे जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। कृषि के लिए सबसे बड़ी समस्या वर्षा की कुल मात्रा नहीं, बल्कि उसका असमान वितरण होता है। यदि वर्षा कुछ ही दिनों में अत्यधिक मात्रा में हो जाए और उसके बाद लंबे समय तक बारिश न हो, तो फसलों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता।

भारतीय किसानों पर संभावित प्रभाव- भारतीय कृषि का एक बड़ा भाग अभी भी वर्षा आधारित है। खरीफ फसलों की बुवाई मानसून के आगमन पर निर्भर करती है। यदि मानसून में देरी होती है या प्रारंभिक वर्षा के बाद लंबे समय तक बारिश नहीं होती, तो किसानों को बुवाई संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। धान, मक्का, सोयाबीन, कपास और गन्ना जैसी फसलों को पर्याप्त नमी की आवश्यकता होती है। वर्षा की कमी होने पर इन फसलों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है। दूसरी ओर, बार-बार सूखे और अधिक तापमान की स्थिति पौधों में तनाव उत्पन्न करती है, जिससे उत्पादन में गिरावट आ सकती है। एल नीनो की स्थिति केवल फसलों को ही प्रभावित नहीं करती, बल्कि पशुपालन क्षेत्र पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। कम वर्षा होने पर चारागाहों का विकास प्रभावित होता है, हरे चारे की उपलब्धता कम हो जाती है और पशुओं के लिए पेयजल संकट उत्पन्न हो सकता है। राजस्थान, गुजरात और मध्य भारत जैसे क्षेत्रों में इसका प्रभाव अधिक गंभीर हो सकता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि और पशुपालन दोनों महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। यदि इन दोनों क्षेत्रों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो किसानों की आय में कमी आ सकती है और ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक दबाव बढ़ सकता है।

राजस्थान के संदर्भ में एल नीनो का महत्व- राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य होने के साथ-साथ जलवायु की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील क्षेत्र भी है। राज्य का बड़ा भाग शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्र में आता है। पश्चिमी राजस्थान के जिलों में सामान्य वर्षा पहले से ही सीमित है। ऐसे में वर्षा में थोड़ी सी कमी भी कृषि उत्पादन पर गंभीर प्रभाव डाल सकती है। जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, नागौर, जालौर और फलोदी जैसे क्षेत्रों में किसान मुख्य रूप से वर्षा आधारित खेती करते हैं। बाजरा, मूंग, मोठ, ग्वार और तिल जैसी फसलें अपेक्षाकृत कम पानी में भी उत्पादन देती हैं, लेकिन इनके लिए भी प्रारंभिक अवस्था में पर्याप्त नमी आवश्यक होती है। यदि एल नीनो के कारण मानसून कमजोर रहता है, तो इन क्षेत्रों में बुवाई का क्षेत्र घट सकता है, फसलों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है और उत्पादन में कमी आ सकती है। इसके अतिरिक्त भूमिगत जल पर दबाव बढ़ेगा तथा पशुपालन क्षेत्र को भी चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा।

क्या किसान इस चुनौती को अवसर में बदल सकते हैं?- कृषि विशेषज्ञों का मानना है कि जलवायु परिवर्तन के युग में खेती का भविष्य केवल वर्षा पर निर्भर रहने में नहीं, बल्कि वैज्ञानिक कृषि प्रबंधन में है। यदि किसान समय रहते तैयारी कर लें, तो एल नीनो के संभावित प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। सबसे पहले किसानों को स्थानीय मौसम पूर्वानुमान पर ध्यान देना चाहिए। आधुनिक तकनीक के माध्यम से अब मोबाइल फोन पर मौसम संबंधी जानकारी आसानी से उपलब्ध है। मौसम आधारित कृषि निर्णय लेने से जोखिम कम किया जा सकता है। कम अवधि वाली और सूखा सहनशील किस्मों का चयन भी महत्वपूर्ण है। राजस्थान जैसे क्षेत्रों में बाजरा, ग्वार, मूंग, मोठ और तिल जैसी फसलें अपेक्षाकृत सुरक्षित विकल्प सिद्ध हो सकती हैं। फसल विविधीकरण अपनाने से जोखिम का स्तर कम होता है और आय के वैकल्पिक स्रोत विकसित होते हैं। जल संरक्षण वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। खेत तालाब, फार्म पॉन्ड, मेड़बंदी, कंटूर बंडिंग और वर्षा जल संचयन जैसी तकनीकें भविष्य की सिंचाई आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक हो सकती हैं। मिट्टी में नमी संरक्षण के लिए मल्चिंग और फसल अवशेष प्रबंधन जैसी तकनीकों का उपयोग भी लाभकारी सिद्ध होता है।

जलवायु-स्मार्ट कृषि की ओर बढ़ता भारत- आज विश्वभर में "क्लाइमेट स्मार्ट एग्रीकल्चर" की अवधारणा पर जोर दिया जा रहा है। इसका उद्देश्य कृषि उत्पादन को बनाए रखते हुए जलवायु जोखिमों को कम करना है। भारत में भी कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद तथा राज्य कृषि विभाग किसानों को जलवायु अनुकूल कृषि तकनीकों के बारे में जागरूक कर रहे हैं। डिजिटल कृषि, मौसम आधारित सलाह, सटीक कृषि), सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर आधारित तकनीकें भविष्य की कृषि का आधार बनती जा रही हैं। जो किसान इन तकनीकों को अपनाएंगे, वे बदलती जलवायु परिस्थितियों में भी बेहतर प्रदर्शन कर सकेंगे।

निष्कर्ष- एल नीनो कोई नई घटना नहीं है, लेकिन जलवायु परिवर्तन के वर्तमान दौर में इसका महत्व पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। यह भारतीय कृषि के लिए एक चुनौती अवश्य प्रस्तुत करता है, परंतु यह चुनौती अजेय नहीं है। वैज्ञानिक जानकारी, मौसम पूर्वानुमान, जल संरक्षण, फसल विविधीकरण और आधुनिक कृषि तकनीकों के माध्यम से किसान इसके प्रभावों को काफी हद तक कम कर सकते हैं। आज आवश्यकता घबराने की नहीं, बल्कि तैयारी करने की है। बदलते मौसम के इस युग में वही किसान सफल होगा जो समय के संकेतों को समझेगा, विज्ञान पर विश्वास करेगा और खेती को जलवायु अनुकूल बनाने की दिशा में कदम बढ़ाएगा। एल नीनो की संभावित चुनौती हमें यही संदेश देती है कि भविष्य की कृषि केवल मेहनत से नहीं, बल्कि ज्ञान, योजना और नवाचार से सुरक्षित होगी।

लक्ष्मी मीना पी.एच.डी. स्कॉलर, प्रसार शिक्षा विभाग, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर (राजस्थान)

सरजीत यादव पी.एच.डी. स्कॉलर, प्रसार शिक्षा विभाग, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर (राजस्थान)

डिजिटल कृषि: मोबाइल ऐप और ऑनलाइन सेवाओं का उपयोग

परिचय-भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहां आज भी बड़ी आबादी अपनी आजीविका के लिए खेती पर निर्भर है। बदलते समय के साथ कृषि क्षेत्र में भी आधुनिक तकनीकों का तेजी से विस्तार हो रहा है। पहले किसान खेती से संबंधित जानकारी के लिए कृषि अधिकारियों, पड़ोसी किसानों या स्थानीय बाजारों पर निर्भर रहते थे, लेकिन अब मोबाइल फोन और इंटरनेट के माध्यम से अधिकांश जानकारी कुछ ही मिनटों में उपलब्ध हो जाती है। इसी परिवर्तन को डिजिटल कृषि (Digital Agriculture) कहा जाता है।

डिजिटल कृषि का अर्थ है कृषि कार्यों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT), मोबाइल ऐप, इंटरनेट, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), ड्रोन, सेंसर तथा ऑनलाइन सेवाओं का उपयोग करके खेती को अधिक लाभकारी, टिकाऊ और वैज्ञानिक बनाना। आज अधिकांश किसानों के पास स्मार्टफोन उपलब्ध है, जिससे वे मौसम, बाजार भाव, सरकारी योजनाओं, फसल सुरक्षा तथा कृषि विशेषज्ञों की सलाह आसानी से प्राप्त कर सकते हैं।

डिजिटल कृषि क्यों आवश्यक है?- वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, बढ़ती उत्पादन लागत, कृषि श्रमिकों की कमी तथा कृषि उत्पादों के बाजार मूल्य में लगातार होने वाले उतार-चढ़ाव ने किसानों के सामने नई समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं। ऐसी परिस्थितियों में डिजिटल कृषि किसानों के लिए एक प्रभावी समाधान के रूप में उभर रही है। डिजिटल तकनीकों की सहायता से किसान सही समय पर सही निर्णय लेकर उत्पादन लागत को कम करने तथा उत्पादन एवं आय में वृद्धि करने में सक्षम हो सकते हैं। मोबाइल ऐप और ऑनलाइन सेवाओं के माध्यम से किसान मौसम की सटीक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, फसलों में रोग एवं कीटों की पहचान कर सकते हैं, उर्वरकों एवं कीटनाशकों का संतुलित उपयोग कर सकते हैं, विभिन्न मंडियों के ताजा भाव जान सकते हैं तथा सरकारी योजनाओं एवं अनुदान से संबंधित अद्यतन जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, वे कृषि वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों से ऑनलाइन परामर्श लेकर अपनी कृषि समस्याओं का समाधान भी प्राप्त कर सकते हैं।

किसानों के लिए उपयोगी मोबाइल ऐप-डिजिटल कृषि को बढ़ावा देने के लिए सरकार तथा विभिन्न कृषि संस्थानों द्वारा अनेक उपयोगी मोबाइल ऐप विकसित किए गए हैं, जिनका उद्देश्य किसानों तक वैज्ञानिक एवं प्रमाणिक जानकारी सरलता से पहुँचाना है। किसान सुविधा (Kisan Suvidha) ऐप किसानों को मौसम पूर्वानुमान, मंडी भाव, कृषि संबंधी सलाह, उर्वरकों एवं कीटनाशकों की जानकारी उपलब्ध कराता है, जिससे वे अपनी फसल के अनुसार उचित निर्णय ले सकते हैं। पूसा कृषि (Pusa Krishi) ऐप

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित किया गया है, जिसमें उन्नत फसल किस्मों, आधुनिक कृषि तकनीकों तथा वैज्ञानिक खेती से संबंधित उपयोगी जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। इसी प्रकार मेघदूत (Meghdoot) ऐप भारतीय मौसम विभाग द्वारा तैयार किया गया है, जो स्थानीय मौसम के आधार पर कृषि सलाह प्रदान करता है। इसकी सहायता से किसान सिंचाई, बुवाई तथा पौध संरक्षण जैसे कार्यों की उचित योजना बना सकते हैं। ई-नाम (e-NAM) एक राष्ट्रीय कृषि बाजार मंच है, जिसके माध्यम से किसान देश की विभिन्न कृषि मंडियों के भाव जान सकते हैं और अपनी उपज उचित मूल्य पर बेचने के लिए बेहतर बाजार का चयन कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त पीएम किसान तथा अन्य सरकारी पोर्टलों के माध्यम से किसान अपनी आवेदन स्थिति, लाभार्थी सूची, भुगतान की जानकारी तथा विभिन्न सरकारी योजनाओं का विवरण घर बैठे प्राप्त कर सकते हैं।

ऑनलाइन सेवाओं से किसानों को लाभ- आज अधिकांश कृषि सेवाएँ ऑनलाइन उपलब्ध होने के कारण किसान बिना किसी कार्यालय के चक्कर लगाए अनेक सुविधाओं का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। खेती में मौसम का अत्यधिक महत्व होता है, इसलिए यदि किसान को समय रहते वर्षा, तापमान, तेज हवा, ओलावृष्टि अथवा अन्य मौसम संबंधी घटनाओं की जानकारी मिल जाए तो वह फसल की सुरक्षा के लिए आवश्यक कदम उठा सकता है, जिससे संभावित नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इसी प्रकार ऑनलाइन मंडी भाव की जानकारी प्राप्त करके किसान यह निर्णय ले सकता है कि अपनी उपज किस मंडी में और किस समय बेचने पर अधिक लाभ मिलेगा। कृषि विभाग, उद्यानिकी विभाग तथा अन्य सरकारी संस्थानों द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं की जानकारी भी अब ऑनलाइन उपलब्ध है, जिससे किसान पात्रता, आवेदन प्रक्रिया, आवश्यक दस्तावेज तथा अनुदान संबंधी जानकारी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केंद्रों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा समय-समय पर ऑनलाइन प्रशिक्षण, वेबिनार तथा शैक्षणिक वीडियो उपलब्ध कराए जाते हैं, जिनके माध्यम से किसान आधुनिक कृषि तकनीकों को सीखकर अपनी खेती को अधिक लाभकारी बना सकते हैं।

डिजिटल भुगतान की सुविधा- वर्तमान में अधिकांश सरकारी सहायता एवं अनुदान की राशि सीधे किसानों के बैंक खातों में हस्तांतरित की जाती है। डिजिटल बैंकिंग, यूपीआई तथा मोबाइल बैंकिंग जैसी सुविधाओं ने भुगतान प्रणाली को अधिक सुरक्षित, पारदर्शी और सुविधाजनक बना दिया है। किसान इन माध्यमों का उपयोग करके बीज, उर्वरक, कीटनाशक, कृषि यंत्र तथा अन्य कृषि आदानों का भुगतान भी आसानी से कर सकते हैं। इससे समय की बचत होने के साथ-साथ नकद लेन-देन से जुड़ी समस्याएँ भी कम होती हैं।

सोशल मीडिया की भूमिका- डिजिटल युग में सोशल मीडिया भी कृषि ज्ञान के प्रसार का एक प्रभावी माध्यम बन गया है। आज अनेक किसान व्हाट्सएप, यूट्यूब, फेसबुक तथा टेलीग्राम जैसे प्लेटफॉर्मों के माध्यम से कृषि संबंधी नवीन जानकारी प्राप्त कर रहे हैं। कई सफल किसान एवं कृषि विशेषज्ञ अपने अनुभव, नई तकनीकें तथा प्रबंधन संबंधी सुझाव साझा करते हैं, जिससे अन्य किसानों को भी लाभ मिलता है। हालांकि, सोशल मीडिया पर उपलब्ध प्रत्येक जानकारी विश्वसनीय हो, यह आवश्यक नहीं है। इसलिए किसी भी नई तकनीक या सलाह को अपनाने से पहले कृषि विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केंद्र या कृषि विभाग से उसकी पुष्टि अवश्य कर लेनी चाहिए।

डिजिटल कृषि की चुनौतियां- वर्तमान समय में डिजिटल कृषि का दायरा तेजी से बढ़ रहा है, लेकिन इसके व्यापक एवं प्रभावी उपयोग में कई बाधाएँ सामने आ रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की सीमित उपलब्धता, डिजिटल साक्षरता का अभाव, सभी किसानों के पास स्मार्टफोन का न होना, स्थानीय भाषाओं में पर्याप्त डिजिटल सामग्री की कमी तथा नेटवर्क संबंधी समस्याएँ इसके प्रमुख अवरोध हैं। इन चुनौतियों को दूर करने के लिए सरकार, कृषि विश्वविद्यालयों तथा कृषि विज्ञान केंद्रों द्वारा डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम, प्रशिक्षण शिविर तथा जागरूकता अभियान संचालित किए जा रहे हैं, जिससे अधिक से अधिक किसान डिजिटल तकनीकों का लाभ उठा सकें।

निष्कर्ष-डिजिटल कृषि आज की आवश्यकता है। मोबाइल ऐप और ऑनलाइन सेवाओं ने किसानों के लिए जानकारी प्राप्त करना पहले की तुलना में कहीं अधिक सरल और सुविधाजनक बना दिया है। मौसम पूर्वानुमान, मंडी भाव, सरकारी योजनाएँ, कृषि विशेषज्ञों की सलाह तथा डिजिटल भुगतान जैसी सुविधाएँ किसानों को समय पर सही निर्णय लेने में सहायता प्रदान करती हैं। यदि किसान डिजिटल तकनीकों का विवेकपूर्ण एवं नियमित उपयोग करें तथा केवल प्रमाणिक स्रोतों से जानकारी प्राप्त करें, तो वे अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ाने के साथ-साथ खेती को अधिक लाभकारी और टिकाऊ बना सकते हैं। आने वाले वर्षों में डिजिटल कृषि भारतीय कृषि विकास की एक महत्वपूर्ण आधारशिला सिद्ध होगी।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

भैंसों में फूल दिखाना (प्रोलैप्स): कारण, नुकसान एवं बचाव

नितेश शर्मा, बाबूराम विषय वस्तु विशेषज्ञ, पशुपालन, लेब टेक्नीशियन कृषि विज्ञान केन्द्र रायपुर पाली-II कृषि विश्वविद्यालय जोधपुर (राजस्थान)

पशुपालन किसानों की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। पशुओं से अधिक दूध उत्पादन और अच्छे प्रजनन प्रदर्शन के माध्यम से किसान अपनी आय बढ़ाते हैं। लेकिन जब पशुओं में कोई बीमारी या प्रजनन संबंधी समस्या उत्पन्न हो जाती है, तो इसका सीधा असर उनकी उत्पादकता और किसान की आय पर पड़ता है।

भैंसों में "फूल दिखाना" ऐसी ही एक गंभीर समस्या है, जिसे वैज्ञानिक भाषा में प्रोलैप्स कहा जाता है। यह समस्या सामान्यतः गर्भावस्था के अंतिम चरण में या प्रसव के बाद दिखाई देती है। इस स्थिति में गर्भाशय या योनि का कुछ भाग शरीर के बाहर निकल आता है। यदि समय पर उपचार नहीं कराया जाए, तो पशु के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है तथा गर्भपात, संक्रमण और प्रजनन क्षमता में कमी जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

प्रोलैप्स होने के प्रमुख कारण

1.खनिज तत्वों की कमी

पशु के शरीर में कैल्शियम तथा अन्य आवश्यक खनिज तत्वों की कमी होने पर मांसपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं, जिससे प्रोलैप्स की संभावना बढ़ जाती है।

2. हार्मोनल प्रभाव

कुछ हरे चारे, विशेषकर बरसीम, में ऐसे तत्व पाए जाते हैं जो प्रजनन अंगों की मांसपेशियों को ढीला कर सकते हैं और प्रोलैप्स का खतरा बढ़ा सकते हैं।

3. गर्भावस्था के दौरान अधिक दबाव

गर्भ के बढ़ने के साथ पेट के भीतर दबाव बढ़ जाता है। अधिक मोटापे या जुड़वा गर्भ की स्थिति में यह दबाव और बढ़ सकता है, जिससे प्रोलैप्स होने की संभावना रहती है।

4. कठिन प्रसव

प्रसव के समय अधिक जोर लगने, लंबे समय तक प्रसव चलने या प्रसव में कठिनाई आने पर भी यह समस्या हो सकती है।

5. अनुवांशिक कारण

कुछ पशुओं में यह समस्या पीढ़ी-दर-पीढ़ी देखने को मिल सकती है, इसलिए ऐसे पशुओं के चयन में सावधानी बरतनी चाहिए।

प्रोलैप्स से होने वाले नुकसान

बाहर निकले अंगों में सूजन और संक्रमण हो सकता है।

ऊतकों को क्षति पहुँच सकती है।

पशु को पेशाब करने में कठिनाई हो सकती है।

गर्भपात होने की संभावना बढ़ जाती है।

भविष्य में पशु की प्रजनन क्षमता प्रभावित हो सकती है।

गंभीर स्थिति में पशु की मृत्यु भी हो सकती है।

बचाव के उपाय

- गर्भवती पशुओं को संतुलित एवं पौष्टिक आहार दें।
- खनिज मिश्रण और कैल्शियम का नियमित उपयोग करें।
- पशु को स्वच्छ, सूखे और आरामदायक स्थान पर रखें।
- गर्भावस्था के अंतिम महीनों में पशु पर विशेष ध्यान दें।
- प्रसव में कठिनाई होने पर तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करें।
- प्रोलैप्स की समस्या वाले पशुओं का प्रजनन करते समय सावधानी बरतें।

निष्कर्ष

भैंसों में प्रोलैप्स एक गंभीर लेकिन रोकी जा सकने वाली समस्या है। संतुलित पोषण, उचित प्रबंधन और समय पर पशु चिकित्सा सहायता से इस समस्या को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। यदि किसी पशु में फूल दिखाने के लक्षण दिखाई दें, तो बिना देरी किए पशु चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए। समय पर उपचार पशु के स्वास्थ्य की रक्षा करता है और किसान को आर्थिक नुकसान से बचाता है।

खीरे की खेती पर केंद्रीय मंत्री को 99 लाख की सब्सिडी!

सफाई में बोले-नियमों के तहत मिला लाभ

जयपुर। केंद्रीय कृषि राज्य मंत्री भागीरथ चौधरी सब्सिडी को लेकर राजनीतिक विवादों में घिर गए हैं। विवाद की वजह है राजस्थान में खीरे के पालीहाउस प्रोजेक्ट के लिए 99.60 लाख रुपये की सब्सिडी अपने ही मंत्रालय से हासिल करना है। कांग्रेस ने इसे हितों के टकराव का मामला बताते हुए निष्पक्ष जांच की मांग की है।

कांग्रेस के राष्ट्रीय महासचिव सचिन पायलट ने कहा कि जब भागीरथ चौधरी स्वयं नेशनल हार्टिकल्चर बोर्ड के पदेन उपाध्यक्ष हैं, तब उनके द्वारा उसी बोर्ड की योजना का लाभ लेना निष्पक्षता और पारदर्शिता पर गंभीर प्रश्न खड़े करता है।

जबकि मंत्री ने सभी आरोपों को खारिज करते हुए कहा कि उन्होंने नियमों के तहत एक किसान के रूप में सब्सिडी ली है और इसमें कुछ भी छिपाया नहीं गया है। बता दें कि चौधरी का यह प्रोजेक्ट राजस्थान के डीडवाना-कुचामन जिले के पेह गांव में स्थित है।

आशीष कुमार (सहायक प्रोफ़ेसर)
APEX विधि विभाग, जयपुर, APEX UNIVERSITY, जयपुर (राजस्थान)

ग्रामीण कृषि ढांचे (सिंचाई, भंडारण) के लिए कानूनी उपाय

प्रस्तावना

ग्रामीण भारत की कृषि व्यवस्था का आधार उसकी संरचनात्मक व्यवस्था है। यह व्यवस्था मुख्य रूप से सिंचाई और भंडारण पर निर्भर करती है। इन दोनों क्षेत्रों में सुधार लाने के लिए कानूनी उपाय आवश्यक हैं। यदि हम इन उपायों को सही ढंग से लागू करें, तो निश्चित ही कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव संभव है। इस लेख में, हम विस्तार से चर्चा करेंगे कि कैसे कानूनी उपाय इन क्षेत्रों को मजबूत बना सकते हैं। साथ ही, हम यह भी समझेंगे कि इन उपायों का प्रभावी कार्यान्वयन कैसे सुनिश्चित किया जा सकता है। इसलिए, यह लेख न केवल जानकारीपूर्ण है, बल्कि यह समाधान भी प्रस्तुत करता है।

सिंचाई व्यवस्था के लिए कानूनी उपाय

1. जल संसाधनों का संरक्षण और प्रबंधन: सिंचाई के लिए जल संसाधनों का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए, सरकार ने जल संसाधन अधिनियम, 1956, जैसे कानून बनाए हैं। इन कानूनों का उद्देश्य जल के उचित उपयोग और संरक्षण को सुनिश्चित करना है। इसके अतिरिक्त, जल संरक्षण के लिए जल उपयोगकर्ता समितियों का गठन किया गया है। इन समितियों को कानूनी अधिकार दिए गए हैं ताकि वे जल संसाधनों का संरक्षण कर सकें।

2. नहर और बांध निर्माण के नियम: नहरों और बांधों का निर्माण भी कानूनी प्रक्रिया का हिस्सा है। इन परियोजनाओं के लिए पर्यावरण मंजूरी, भूमि अधिग्रहण, और स्थानीय समुदाय की सहमति आवश्यक है। इन नियमों का उल्लंघन करने पर कड़ी सजा का प्रावधान है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि परियोजनाएं पर्यावरण और सामाजिक हितों का ध्यान रखते हुए बनें।

3. जल अधिकारों का निर्धारण: कानूनी रूप से जल अधिकारों का निर्धारण भी जरूरी है। यह सुनिश्चित करता है कि जल का उपयोग न्यायसंगत और पारदर्शी तरीके से हो। जल अधिकारों का उल्लंघन करने वालों के खिलाफ सख्त कार्रवाई की जाती है। इससे जल का दुरुपयोग रुकता है और कृषि क्षेत्र में स्थिरता आती है।

4. जल विवाद समाधान के लिए न्यायालयीन प्रक्रिया: कानूनी उपायों में जल विवादों का समाधान भी शामिल है। जल विवाद अधिनियम, 1956, के तहत विवादों का निपटारा किया जाता है। यह प्रक्रिया तेज और निष्पक्ष हो, इसके लिए विशेष न्यायालय भी स्थापित किए गए हैं। इससे किसानों को न्याय पाने में आसानी होती है।

भंडारण व्यवस्था के लिए कानूनी उपाय

1. जलाशयों और तालाबों का संरक्षण

भंडारण के लिए जलाशयों और तालाबों का संरक्षण आवश्यक है। इसके लिए, जल संसाधन अधिनियम, 1956, के तहत नियम बनाए गए हैं। इन नियमों का उल्लंघन करने पर कड़ी सजा का प्रावधान है। साथ ही, जलाशयों का पुनर्निर्माण और संरक्षण के लिए सरकारी योजनाएं भी लागू की गई हैं।

2. भूमि उपयोग और अधिकार

भंडारण के लिए भूमि का सही उपयोग भी जरूरी है। इसके लिए भूमि अधिग्रहण कानून और भूमि उपयोग नियम लागू किए गए हैं। इन नियमों के तहत, भूमि का दुरुपयोग रोकने के लिए सख्त प्रावधान हैं। साथ ही, भूमि स्वामियों को उनके अधिकारों का संरक्षण भी सुनिश्चित किया गया है।

3. जल संरक्षण और पुनर्चक्रण कानून

जल संरक्षण और पुनर्चक्रण के लिए भी कानूनी उपाय आवश्यक हैं। इन उपायों से जल का पुनः उपयोग संभव होता है। इसके लिए, जल पुनर्चक्रण अधिनियम, 2010, जैसे कानून बनाए गए हैं। इन कानूनों का उद्देश्य जल की बचत और पुनः उपयोग को बढ़ावा देना है।

4. पर्यावरणीय मंजूरी और नियामक प्रावधान

भंडारण परियोजनाओं के लिए पर्यावरणीय मंजूरी अनिवार्य है। यह सुनिश्चित करता है कि परियोजनाएं पर्यावरणीय मानकों का उल्लंघन न करें। इसके अलावा, नियामक प्राधिकरणों की निगरानी भी जरूरी है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि परियोजनाएं नियमों का पालन करें।

कानूनी उपायों का प्रभावी कार्यान्वयन

1. जागरूकता और प्रशिक्षण: कानूनी उपायों का सफल कार्यान्वयन तभी संभव है, जब किसानों और संबंधित पक्षों में जागरूकता हो। इसके लिए, सरकार ने प्रशिक्षण कार्यक्रम और जागरूकता अभियान चलाए हैं। इन अभियानों से किसानों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान होता है।

2. सख्त कार्रवाई और दंड

कानूनी उल्लंघनों पर सख्त कार्रवाई जरूरी है। इससे अनुशासन कायम होता है और कानून का भय रहता है। दंडात्मक कार्रवाई से ही लोग नियमों का पालन करने के लिए प्रेरित होते हैं।

3. तकनीकी सहायता और निगरानी

आधुनिक तकनीकों का उपयोग भी जरूरी है। इससे निगरानी आसान होती है और उल्लंघनों का पता चलता है। उदाहरण के लिए, ड्रोन, सैटेलाइट इमेजरी, और तद्रुस तकनीक का प्रयोग किया जा सकता है।

4. नीति और कानून में सुधार

समय-समय पर नीति और कानून में सुधार भी आवश्यक है। इससे नई चुनौतियों का सामना किया जा सकता है। सरकार को चाहिए कि वह किसानों की आवश्यकताओं और पर्यावरणीय मानकों को ध्यान में रखते हुए कानून बनाए।

निष्कर्ष

अंत में, यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण कृषि ढांचे के सुधार के लिए कानूनी उपाय अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन उपायों का सही ढंग से कार्यान्वयन ही कृषि क्षेत्र में स्थिरता और समृद्धि ला सकता है। सिंचाई और भंडारण के क्षेत्र में कानूनी प्रावधानों का पालन सुनिश्चित करने के लिए सभी संबंधित पक्षों को मिलकर काम करना चाहिए। तभी हम एक मजबूत, टिकाऊ और समृद्ध ग्रामीण भारत का सपना साकार कर सकते हैं। अतः, सरकार, किसान, और समाज सभी को मिलकर इन उपायों को लागू करने में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। तभी हम अपने कृषि क्षेत्र को नई ऊंचाइयों पर ले जा सकते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हरियाणा

खरगोश पालन-वैज्ञानिक प्रबंधन एवं आर्थिक संभावनाएं

✍ **डॉ. उज्ज्वल अग्रवाल, डॉ. आदित्य प्रताप**
एम. आर. कॉलेज ऑफ वेट्नेरी साइंस एण्ड रिसर्च सेंटर, हसनपुर, झज्जर, (हरियाणा)

✍ **डॉ. असद खान** भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, (हरियाणा)

✍ **डॉ. मारिया खान** संवेदना डेवलपमेंट सोसायटी, बी.एफ.आई.एल.-सी.एस.आर., राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन, रायसेन (म.प्र.)

खरगोश पालन अनेक दृष्टियों से लाभकारी सिद्ध होता है। इस उद्यम को प्रारम्भ करने के लिए अपेक्षाकृत कम पूंजी की आवश्यकता होती है तथा इसे सीमित स्थान में भी सफलतापूर्वक संचालित किया जा सकता है। खरगोशों की प्रजनन क्षमता अत्यधिक होती है जिसके कारण कम समय में पशुधन संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि संभव होती है। एक स्वस्थ मादा खरगोश वर्ष में लगभग पाँच से छह बार बच्चों को जन्म दे सकती है तथा प्रत्येक बार सामान्यतः छह से दस शावकों को जन्म देती है। यही विशेषता इसे तीव्र उत्पादन क्षमता वाला उद्यम बनाती है। खरगोश पालन से उच्च गुणवत्ता वाले मांस और मूल्यवान ऊन का उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही, इसका प्रबंधन अपेक्षाकृत सरल होने के कारण यह महिलाओं, युवाओं तथा लघु एवं सीमांत किसानों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। कृषि, बागवानी तथा अन्य पशुधन गतिविधियों के साथ इसे एकीकृत रूप में अपनाकर अतिरिक्त आय अर्जित की जा सकती है।

प्रमुख नस्लें-उत्पादन के उद्देश्य के अनुसार विभिन्न नस्लों का चयन किया जाता है। मांस उत्पादन के लिए न्यूजीलैंड व्हाइट, कैलिफोर्नियन, सोवियत चिनचिला तथा ग्रे जायंट प्रमुख नस्लें हैं। इनमें न्यूजीलैंड व्हाइट एवं कैलिफोर्नियन नस्लें अपनी तीव्र वृद्धि दर, अच्छे शरीर भार तथा बेहतर मांस उत्पादन क्षमता के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय मानी जाती हैं। ऊन उत्पादन के लिए अंगोरा, जर्मन अंगोरा तथा फ्रेंच अंगोरा नस्लों का विशेष महत्व है। इन नस्लों से प्राप्त ऊन अत्यंत मुलायम, हल्की तथा उच्च बाजार मूल्य वाली होती है। पालतू पशु के रूप में डच, लायनहेड तथा मिनी रेक्स नस्लों की लोकप्रियता भी निरंतर बढ़ रही है।

आवास प्रबंधन-खरगोशों के स्वास्थ्य, कल्याण तथा उत्पादकता के लिए उपयुक्त आवास की व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है। खरगोश शाला स्वच्छ, सूखी तथा हवादार होनी चाहिए। आवास स्थल पर पर्याप्त वायु संचार की व्यवस्था हो, किन्तु पशुओं को प्रत्यक्ष धूप, वर्षा तथा अत्यधिक ठंडी हवाओं से सुरक्षित रखा जाना चाहिए। गर्मियों में अपेक्षाकृत ठंडा तथा सर्दियों में आरामदायक वातावरण बनाए रखना आवश्यक है। व्यावसायिक इकाइयों में खरगोशों को सामान्यतः जालीदार केजों में रखा जाता है। इस प्रणाली से स्वच्छता बनाए रखना आसान होता है, मल एवं मूत्र का उचित निष्कासन सुनिश्चित होता है तथा संक्रामक रोगों के प्रसार की संभावना कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त, प्रजनन प्रबंधन और शावकों की देखभाल भी अधिक व्यवस्थित रूप से की जा सकती है। एक वयस्क खरगोश के लिए लगभग 60×60×45 सेंटीमीटर का स्थान पर्याप्त माना जाता है।

आहार एवं पोषण प्रबंधन-खरगोश पूर्णतः शाकाहारी प्राणी है तथा उसकी वृद्धि, स्वास्थ्य और प्रजनन क्षमता संतुलित आहार पर निर्भर करती है। हरे चारे के रूप में बरसीम, लूसर्न, नेपियर घास, जई, गाजर की पत्तियाँ, शकरकंद की बेल तथा विभिन्न सब्जियों की पत्तियाँ दी जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त, सूखी घास तथा गुणवत्तायुक्त हे भी आहार में सम्मिलित किए जा सकते हैं। संतुलित दाना मिश्रण में सामान्यतः 16 से 18 प्रतिशत प्रोटीन के साथ पर्याप्त ऊर्जा, खनिज लवण तथा विटामिन होने चाहिए। आहार की मात्रा पशु की आयु, शरीर भार तथा उत्पादन अवस्था के अनुसार निर्धारित की जानी चाहिए। स्वच्छ एवं ताजा पेयजल की निरंतर उपलब्धता भी अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि जल की कमी से वृद्धि दर, स्वास्थ्य तथा उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

प्रजनन प्रबंधन-खरगोशों की प्रजनन क्षमता अन्य पालतू पशुओं की तुलना में अधिक होती है। सामान्यतः छोटी नस्लों में चार से पाँच माह, मध्यम नस्लों में पाँच से छह माह तथा बड़ी नस्लों में छह से आठ माह की आयु में लैंगिक परिपक्वता प्राप्त हो जाती है। प्रजनन के समय मादा खरगोश को नर के केज में ले जाया जाता है। सफल समागम के पश्चात मादा को पुनः उसके मूल केज में वापस रखा जाता है। खरगोश का गर्भकाल सामान्यतः 28 से 32 दिनों का होता है। प्रसव से लगभग एक सप्ताह पूर्व मादा को प्रसव पेटिका (नेस्ट बॉक्स) उपलब्ध करानी चाहिए, जिसमें सूखी घास अथवा भूसा बिछाया गया हो। इससे नवजात शावकों को सुरक्षित एवं अनुकूल वातावरण प्राप्त होता है।

शावकों का प्रबंधन-नवजात खरगोशों को शावक अथवा किट्स कहा जाता है। जन्म के पश्चात घोंसले की स्वच्छता बनाए रखना आवश्यक है तथा मृत शावकों को तुरंत हटा देना चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सभी शावकों को पर्याप्त मात्रा में दूध प्राप्त हो रहा हो। विशेष रूप से सर्द मौसम में उन्हें ठंड तथा नमी से सुरक्षित रखना आवश्यक है। शावक सामान्यतः चार से छह सप्ताह तक माता का दूध ग्रहण करते हैं। पाँच से छह सप्ताह की आयु में उनका दुग्ध-विच्छेदन (वीनिंग) किया जा सकता है तथा उन्हें स्वतंत्र रूप से आहार ग्रहण करने हेतु तैयार किया जाता है।

स्वास्थ्य प्रबंधन-खरगोश पालन में रोगों की रोकथाम उपचार की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होती है। नियमित सफाई, केजों का कीटाणुशोधन, संतुलित पोषण तथा उचित जैव-सुरक्षा उपाय अपनाकर अधिकांश रोगों से बचाव किया जा सकता है। रोगग्रस्त पशुओं को स्वस्थ पशुओं से पृथक रखना तथा अत्यधिक भीड़भाड़ से बचना भी आवश्यक है। खरगोशों में कॉक्सिडियोसिस एक सामान्य रोग है जिसके लक्षणों में दस्त, शरीर भार में कमी तथा कमजोरी प्रमुख हैं। स्वच्छता बनाए रखने और दूषित आहार एवं पानी से बचाव करके इस रोग की रोकथाम की जा सकती है। स्नफल्स एक श्वसन संबंधी रोग है जिसमें छींक आना, नाक से स्राव तथा श्वास लेने में कठिनाई जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। इसी प्रकार मैन्ज रोग में त्वचा पर खुजली, जलन तथा बाल झड़ने की समस्या उत्पन्न होती है। नियमित स्वास्थ्य परीक्षण तथा रोगग्रस्त पशुओं को पृथक रखने से इन रोगों की रोकथाम संभव है।

गर्मी एवं सर्दी में प्रबंधन-खरगोश तापमान में अत्यधिक उतार-चढ़ाव के प्रति संवेदनशील होते हैं। गर्मियों के दौरान शेड में पर्याप्त वेंटिलेशन बनाए रखना आवश्यक है। पशुओं को ठंडा एवं स्वच्छ पानी उपलब्ध कराया जाना चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर छत पर फूस, शेड नेट अथवा शीतलन व्यवस्था का उपयोग किया जा सकता है। तापमान को यथासंभव 30°C से नीचे बनाए रखना लाभकारी होता है। सर्दियों के मौसम में केजों को ठंडी हवाओं से सुरक्षित रखना चाहिए तथा सूखा बिछावन उपलब्ध कराना चाहिए। नवजात शावकों को विशेष सुरक्षा एवं ऊष्मा प्रदान करना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि वे ठंड के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।

खरगोश पालन से प्राप्त उत्पाद-खरगोश पालन से अनेक उपयोगी उत्पाद प्राप्त होते हैं। खरगोश का मांस उच्च प्रोटीन युक्त, कम वसा वाला, कम कोलेस्ट्रॉल युक्त तथा सुपाच्य होता है, जिसके कारण इसकी मांग निरंतर बढ़ रही है। अंगोरा नस्ल से प्राप्त ऊन अत्यंत मुलायम, हल्की तथा ऊष्मारोधी गुणों से युक्त होती है, जिसके कारण इसका बाजार मूल्य अधिक होता है। इसके अतिरिक्त, खरगोश की लीद उत्कृष्ट जैविक खाद के रूप में उपयोगी है। इसका उपयोग बागवानी, फलोत्पादन तथा सब्जी उत्पादन में किया जाता है, जिससे भूमि की उर्वरता में सुधार होता है।

आर्थिक महत्व-खरगोश पालन ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त आय अर्जित करने का एक प्रभावी माध्यम है। कम निवेश, तीव्र प्रजनन क्षमता तथा शीघ्र वृद्धि दर के कारण यह लघु एवं सीमांत किसानों के लिए विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध हो सकता है। महिला स्वयं सहायता समूहों तथा युवा उद्यमियों के लिए भी यह स्वरोजगार का एक आकर्षक विकल्प है। यदि वैज्ञानिक पद्धतियों का समुचित रूप से पालन किया जाए, तो खरगोश पालन से नियमित आय के साथ-साथ स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर भी सृजित किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, यह कृषि आधारित आय के विविधीकरण तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

निष्कर्ष-खरगोश पालन एक लाभकारी, पर्यावरण-अनुकूल तथा कम लागत वाला पशुधन आधारित उद्यम है, जिसमें ग्रामीण आजीविका, पोषण सुरक्षा तथा स्वरोजगार को सुदृढ़ करने की पर्याप्त संभावनाएँ विद्यमान हैं।

जैन बीज भण्डार
एवं पशु आहार
मैन बाजार, चीनोर रोड,
छीमक जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
प्रो. मुकेश जैन, मोबाइल : 9977638510
04/2025-26

डॉ. दिनेश रजक (सह-प्राध्यापक)
डॉ. विशाल कुमार (सह-प्राध्यापक)
डॉ. देवेन्द्र कुमार (प्राध्यापक)
प्रसंसकरण एवं खाद्य अभियन्त्रिकी विभाग, कृषि अभियंत्रण एवं प्रौद्योगिकी महविद्यालय, डॉ. रा. प्र. कें. कृ. वि. पूसा, समस्तीपुर, (बिहार)

फलों एवं सब्जियों के कटाई-पश्चात प्रबंधन के लिए पैकेजिंग प्रौद्योगिकियों में नवीनतम प्रगति: एक समीक्षा

प्रस्तावना-फल एवं सब्जियांअत्यधिक नाशवान कृषि उत्पाद हैं, जिनकी कटाई के बाद गुणवत्ता में तेजी से गिरावट आती है। अनुचित भंडारण, परिवहन तथा पैकेजिंग के कारण बड़ी मात्रा में उत्पाद नष्ट हो जाते हैं, जिससे आर्थिक हानि होती है। आधुनिक पैकेजिंग प्रौद्योगिकियाँ फलों एवं सब्जियों की ताजगी, पोषण गुणवत्ता तथा शेल्फ लाइफ को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस समीक्षा में संशोधित वायुमंडलीय पैकेजिंग (MAP), सक्रिय पैकेजिंग (Active Packaging), बुद्धिमान पैकेजिंग (Intelligent Packaging), जैव-अवक्रमणीय पैकेजिंग तथा नैनो-पैकेजिंग जैसी नवीन तकनीकों की चर्चा की गई है।

मुख्य शब्द: कटाई-पश्चात प्रबंधन, पैकेजिंग प्रौद्योगिकी, फल, सब्जियाँ, शेल्फ लाइफ, सक्रिय पैकेजिंग।

1. परिचय-भारत विश्व के प्रमुख फल एवं सब्जी उत्पादक देशों में से एक है। हालांकि, कटाई-पश्चात हानियाँ कुल उत्पादन का एक महत्वपूर्ण भाग प्रभावित करती हैं। इन हानियों को कम करने के लिए उन्नत पैकेजिंग तकनीकों का विकास किया गया है, जो उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखने और बाजार तक सुरक्षित पहुँच सुनिश्चित करने में सहायक हैं।

कटाई-पश्चात हानियों के प्रमुख कारण

उच्च श्वसन दर: कटाई के बाद भी फल एवं सब्जियाँ जीवित ऊतक के रूप में श्वसन क्रिया करती रहती हैं। श्वसन प्रक्रिया में वे ऑक्सीजन (O_2) ग्रहण करके संग्रहीत कार्बोहाइड्रेट एवं अन्य पोषक तत्वों को ऊर्जा में परिवर्तित करती हैं तथा कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), जल एवं ऊष्मा उत्पन्न करती हैं। जब श्वसन दर अधिक होती है, तो फल एवं सब्जियों में पोषक तत्वों का तेजी से क्षय होता है, जिसके परिणामस्वरूप उनकी ताजगी, स्वाद, बनावट तथा पोषण गुणवत्ता शीघ्र घटने लगती है। इससे उत्पाद जल्दी पक जाते हैं, नरम हो जाते हैं और उनकी शेल्फ लाइफ कम हो जाती है। आम, केला, पपीता, टमाटर तथा हरी पत्तेदार सब्जियाँ उच्च श्वसन दर वाले उत्पादों के उदाहरण हैं।

उच्च श्वसन दर को नियंत्रित करने के लिए निम्न उपाय अपनाए जाते हैं: * कम तापमान पर भंडारण (Cold Storage) * संशोधित वायुमंडलीय पैकेजिंग (MAP) * नियंत्रित वायुमंडलीय भंडारण (Controlled Atmosphere Storage) * उचित आर्द्रता बनाए रखना * शीघ्र परिवहन एवं विपणन। इस प्रकार, श्वसन दर का नियंत्रण फलों एवं सब्जियों की गुणवत्ता बनाए रखने तथा कटाई-पश्चात हानियों को कम करने हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण है।

नमी की हानि- कटाई के बाद फल एवं सब्जियों से वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) की प्रक्रिया द्वारा लगातार जल का नुकसान होता रहता है। यह नमी मुख्यतः उत्पाद की सतह से वाष्प के रूप में वातावरण में निकलती है। जब नमी की हानि अधिक होती है, तो फल एवं सब्जियाँ मुरझाने लगती हैं, उनका वजन कम हो जाता है तथा उनकी ताजगी और बाजार मूल्य घट जाता है। नमी की कमी के कारण उत्पादों की बनावट (Texture) प्रभावित होती है, वे सिकुड़ जाते हैं तथा उनकी गुणवत्ता में गिरावट आती है। पत्तेदार सब्जियाँ, गाजर, मूली, खीरा और फल जैसे अंगूर एवं स्ट्रॉबेरी नमी की हानि के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।

नमी की हानि को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक: * उच्च तापमान * कम सापेक्षिक आर्द्रता (Relative Humidity) * तेज वायु प्रवाह * लंबी भंडारण अवधि * अनुपयुक्त पैकेजिंग

नमी की हानि को कम करने के उपाय: * उच्च सापेक्षिक आर्द्रता वाले भंडारण का उपयोग * उपयुक्त पैकेजिंग सामग्री का प्रयोग * प्लास्टिक फिल्म, जैव-अवक्रमणीय फिल्म या खाद्य-ग्रेड कोटिंग का उपयोग * शीत भंडारण (Cold Storage) * सावधानीपूर्वक परिवहन एवं हैंडलिंग

सूक्ष्मजीवों का संक्रमण: कटाई के बाद फल एवं सब्जियाँ विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवों जैसे जीवाणु (Bacteria), फफूंद (Fungi) और यीस्ट (Yeast) के संक्रमण के प्रति संवेदनशील हो जाती हैं। ये सूक्ष्मजीव उत्पाद की सतह पर उपस्थित घावों, कटे हुए भागों या प्राकृतिक छिद्रों के माध्यम से प्रवेश कर सकते हैं और तेजी से वृद्धि करके सड़न तथा गुणवत्ता हानि का कारण बनते हैं। सूक्ष्मजीवों के संक्रमण से फल एवं सब्जियों का रंग, स्वाद, गंध और बनावट प्रभावित होती है। गंभीर संक्रमण की स्थिति में उत्पाद उपभोग के लिए अनुपयुक्त हो जाता है, जिससे आर्थिक हानि और खाद्य अपशिष्ट बढ़ता है। आम, अंगूर, टमाटर, स्ट्रॉबेरी तथा पत्तेदार सब्जियाँ विशेष रूप से सूक्ष्मजीवी संक्रमण से प्रभावित होती हैं।

सूक्ष्मजीव संक्रमण के प्रमुख कारण * कटाई एवं परिवहन के दौरान यांत्रिक क्षति * अस्वच्छ हैंडलिंग एवं भंडारण * उच्च तापमान और आर्द्रता * दूषित पानी या उपकरणों का उपयोग * अनुपयुक्त पैकेजिंग

संक्रमण को नियंत्रित करने के उपाय: * स्वच्छता (Sanitation) का पालन * शीत भंडारण का उपयोग * रोगाणुरोधी (Antimicrobial) पैकेजिंग का प्रयोग * उचित पैकेजिंग एवं सावधानीपूर्वक हैंडलिंग * गुणवत्ता युक्त जल और स्वच्छ उपकरणों का उपयोग

यांत्रिक क्षति: कटाई, छंटाई, पैकिंग, परिवहन और भंडारण के दौरान फलों एवं सब्जियों पर लगने वाले भौतिक आघात (physical injury) को यांत्रिक क्षति कहा जाता है। इसमें दबाव, चोट, कटाव, रगड़ (abrasion) तथा टूट-फूट शामिल होते हैं, जो उत्पाद की बाहरी सतह और आंतरिक ऊतकों को प्रभावित करते हैं। यांत्रिक क्षति होने पर फलों एवं सब्जियों में तेजी से गुणवत्ता में गिरावट आती है, क्योंकि क्षतिग्रस्त स्थानों से नमी की हानि बढ़ जाती है और सूक्ष्मजीवों का संक्रमण आसानी से शुरू हो जाता है। इससे उत्पाद जल्दी सड़ने लगते हैं और उनकी शेल्फ लाइफ कम हो जाती है।

यांत्रिक क्षति के प्रमुख कारण: * गलत तरीके से कटाई एवं हैंडलिंग * अधिक ऊँचाई से गिराना या फेंकना * अत्यधिक भराव या दबाव * अनुचित पैकेजिंग सामग्री का उपयोग * परिवहन के दौरान कंपन (vibration) और झटके

यांत्रिक क्षति के प्रभाव: * रंग, बनावट और स्वाद में गिरावट * नमी की हानि में वृद्धि * सूक्ष्मजीव संक्रमण की संभावना बढ़ना * बाजार मूल्य में कमी

नियंत्रण के उपाय: * सावधानीपूर्वक कटाई और हैंडलिंग * उपयुक्त कुशनिंग सामग्री का उपयोग (जैसे फोम, पेपर ट्रे) * मजबूत और वेंटिलेटेड पैकेजिंग * कम तापमान पर भंडारण और परिवहन * प्रशिक्षित श्रमिकों का उपयोग

इस प्रकार, यांत्रिक क्षति को नियंत्रित करके फलों एवं सब्जियों की गुणवत्ता, सुरक्षा और शेल्फ लाइफ को प्रभावी रूप से बढ़ाया जा सकता है।

तापमान एवं आर्द्रता में परिवर्तन: कटाई के बाद फलों एवं सब्जियों की गुणवत्ता पर तापमान (Temperature) और सापेक्षिक आर्द्रता (Relative Humidity) का अत्यंत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। भंडारण एवं परिवहन के दौरान इन दोनों कारकों में अनियंत्रित परिवर्तन होने से उत्पाद की शारीरिक एवं जैविक प्रक्रियाएँ तेज हो जाती हैं, जिससे उनकी गुणवत्ता शीघ्र खराब होती है।

तापमान बढ़ने पर फल एवं सब्जियों की श्वसन दर (Respiration rate) और वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) बढ़ जाते हैं, जिसके कारण पकने की प्रक्रिया तेज हो जाती है और शेल्फ लाइफ कम हो जाती है। वहीं, आर्द्रता में कमी होने पर नमी की हानि बढ़ जाती है, जिससे उत्पाद मुरझाने लगते हैं और उनका वजन घट जाता है।

तापमान एवं आर्द्रता परिवर्तन के प्रमुख प्रभाव: * श्वसन दर में वृद्धि * नमी की अधिक हानि * शीघ्र पकना और नरमी आना * सूक्ष्मजीवों की वृद्धि में सहायता * गुणवत्ता एवं बाजार मूल्य में गिरावट

प्रमुख कारण * अपर्याप्त शीत भंडारण व्यवस्था * अनियंत्रित परिवहन परिस्थितियाँ * खुले या असुरक्षित भंडारण * मौसमी तापमान में उतार-चढ़ाव

नियंत्रण के उपाय: * शीत श्रृंखला (Cold Chain) का उपयोग * नियंत्रित वातावरण भंडारण (Controlled Atmosphere Storage) * उपयुक्त पैकेजिंग सामग्री का उपयोग * उच्च सापेक्षिक आर्द्रता बनाए रखना * तापमान एवं आर्द्रता की निरंतर निगरानी

आधुनिक पैकेजिंग प्रौद्योगिकियां

संशोधित वायुमंडलीय पैकेजिंग (Modified Atmosphere Packaging - MAP)-इस तकनीक में पैकेज के भीतर ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन गैसों का संतुलन नियंत्रित किया जाता है। इससे श्वसन दर कम होती है तथा उत्पाद की ताजगी अधिक समय तक बनी रहती है।

सक्रिय पैकेजिंग (Active Packaging)-इसमें ऑक्सीजन अवशोषक, नमी नियंत्रक तथा रोगाणुरोधी पदार्थों का उपयोग किया जाता है। यह तकनीक सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को रोककर शेल्फ लाइफ बढ़ाती है।

बुद्धिमान पैकेजिंग (Intelligent Packaging)-इस तकनीक में सेंसर और संकेतक लगाए जाते हैं, जो उत्पाद की गुणवत्ता, तापमान तथा ताजगी की वास्तविक समय में जानकारी प्रदान करते हैं।

जैव-अवक्रमणीय पैकेजिंग (Biodegradable Packaging)-पर्यावरण संरक्षण के उद्देश्य से स्टार्च, सेलुलोज, चिटोसैन तथा अन्य जैव-आधारित पदार्थों से निर्मित पैकेजिंग सामग्री का उपयोग बढ़ रहा है।

नैनो-पैकेजिंग (Nano-Packaging)-नैनोकणों के उपयोग से पैकेजिंग सामग्री की अवरोधक क्षमता तथा रोगाणुरोधी गुणों में वृद्धि होती है, जिससे खाद्य उत्पाद अधिक समय तक सुरक्षित रहते हैं।

नवीनतम अनुसंधान एवं विकास-हाल के वर्षों में इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT), कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) तथा स्मार्ट सेंसर आधारित पैकेजिंग प्रणालियों का विकास हुआ है। ये प्रणालियाँ उत्पाद की स्थिति की निगरानी कर वास्तविक समय में शेल्फ लाइफ का अनुमान लगाने में सक्षम हैं।

5. लाभ * कटाई-पश्चात हानियों में कमी * शेल्फ लाइफ में वृद्धि * गुणवत्ता एवं पोषण मूल्य का संरक्षण * सुरक्षित परिवहन एवं विपणन * खाद्य अपशिष्ट में कमी

6. चुनौतिया * उच्च लागत * तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता * छोटे किसानों द्वारा सीमित अपनाना * पर्यावरणीय एवं नियामक चुनौतियाँ

निष्कर्ष-उन्नत पैकेजिंग प्रौद्योगिकियाँ फलों एवं सब्जियों के कटाई-पश्चात प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। संशोधित वायुमंडलीय, सक्रिय, बुद्धिमान तथा जैव-अवक्रमणीय पैकेजिंग तकनीकों के माध्यम से उत्पादों की गुणवत्ता और शेल्फ लाइफ में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। भविष्य में स्मार्ट सेंसर, AI और IoT आधारित प्रणालियाँ इस क्षेत्र को और अधिक प्रभावी एवं टिकाऊ बनाएंगी।

जल संरक्षण और बेहतर उत्पादन का माध्यमः धान की सीधी बुवाई (DSR)

आलोक कुमार जिला कृषि पदाधिकारी
कालीकान्त चौधरी उप परियोजना निदेशक आत्मा
रौशन कुमार उप परियोजना निदेशक (आत्मा)
प्रमोद कुमार तिवारी प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी (आत्मा)
वैभव पाण्डेय प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी सिवान सदर
मनीष पाण्डेय प्रखण्ड तकनीकी प्रबंधक, जिला कृषि कार्यालय (आत्मा) सिवान कृषि विभाग, (बिहार)

भारत में धान एक प्रमुख खाद्यान्न फसल है। परंपरागत रूप से धान की खेती रोपाई विधि से की जाती है जिसमें पहले नर्सरी तैयार की जाती है और बाद में पौधों को खेत में रोपा जाता है। लेकिन बढ़ती मजदूरी लागतए श्रमिकों की कमी तथा जल संकट को देखते हुए धान की सीधी बुवाई (डीएसआर) तकनीक किसानों के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रही है।

धान की सीधी बुवाई क्या है

धान की सीधी बुवाई वह विधि है जिसमें धान के बीजों को सीधे मुख्य खेत में बोया जाता है। इसमें नर्सरी तैयार करने और पौधों की रोपाई की आवश्यकता नहीं होती। बीजों की बुवाई सीड ड्रिल या अन्य उपयुक्त कृषि यंत्रों द्वारा की जाती है। धान की सीधी बुवाई एक आधुनिक, किफायती और जल-संरक्षण आधारित खेती तकनीक है। यह किसानों की उत्पादन लागत कम करने के साथ-साथ समय और श्रम की भी बचत करती है। उचित प्रबंधन और वैज्ञानिक तरीकों को अपनाकर किसान इस तकनीक से अच्छी उपज और अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

धान की सीधी बुवाई के लाभ

1. **पानी की बचत-** पारंपरिक रोपाई विधि की तुलना में डीएसआर तकनीक से 30 से 40 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है। खेत को लगातार पानी से भरे रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती जिससे भू-जल संरक्षण में भी सहायता मिलती है।

2. **श्रम एवं समय की बचत-** इस तकनीक में नर्सरी तैयार करने और रोपाई के लिए अतिरिक्त मजदूरों की आवश्यकता नहीं होती। इससे किसानों का समय और श्रम दोनों बचते हैं।

3. **उत्पादन लागत में कमी-** कम मजदूरी, कम सिंचाई और कम कृषि कार्यों के कारण खेती की कुल लागत में उल्लेखनीय कमी आती है जिससे किसानों का लाभ बढ़ता है। प्रति हेक्टेयर 20 से 25 प्रतिशत लागत में कमी में आती है।

4. **पर्यावरण संरक्षण-** बार.बार खेत की जुताई और जलभराव की आवश्यकता कम होने से ग्रीनहाउस गैसें जैसे-मीथेन, कार्बन डाई आक्साइड, नाईट्रस आक्साइड एवं क्लारो फ्लोरो कार्बन का उत्सर्जन घटता है तथा पर्यावरण को कम नुकसान होता है।

5. **समय पर फसल की बुवाई-** मानसून के आगमन के साथ ही किसान सीधे बुवाई कर सकते हैं जिससे फसल का विकास समय पर होता है और उत्पादन में सुधार की संभावना बढ़ती है।

सफल सीधी बुवाई हेतु आवश्यक सावधानियां

* खेत पूरी तरह समतल होना चाहिए। * उच्च गुणवत्ता वाले प्रमाणित बीजों का उपयोग करना चाहिए।
* बीज उपचार अवश्य करना चाहिए ताकि रोगों और कीटों से सुरक्षा मिल सके।
* बुवाई के बाद पर्याप्त नमी बनाए रखनी चाहिए।
* खरपतवार नियंत्रण पर विशेष ध्यान देना चाहिएए क्योंकि डीएसआर में खरपतवार की समस्या अधिक होती है।
* उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण के आधार पर करना चाहिए।

धान की सीधी बुवाई (डीएसआर) में बीज दर

धान की सीधी बुवाई में सामान्यतः 08 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ (20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) के दर से बुआई की जाती है।

बीज दर निम्न बातों पर निर्भर करती है-

* बीज की अंकुरण क्षमता
* बुवाई की विधि (सीड ड्रिल या प्रसारण)
* धान की किस्म
* खेत की नमी एवं मिट्टी की स्थिति

बीज उपचार

बुवाई से पहले बीजों का फफूंदनाशी जैसे कार्बेन्डाजिम+मेंकोजेब 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से या ट्राइकोडर्मा वीरडी 05 ग्राम/किलो ग्राम बीज दर से उपचार करना चाहिए ताकि शुरुआती अवस्था में रोग जैसे- पत्ती धब्बा, झोका एवं हरदीया रोगों का प्रकोप फसल पर ना हो।

चुनौतियां

हालांकि यह तकनीक अत्यंत लाभकारी है, फिर भी कुछ चुनौतियां मौजूद हैं। खरपतवार नियंत्रण, असमान वर्षा, जलभराव तथा प्रारंभिक अवस्था में पौधों की वृद्धि पर विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है। यदि उचित प्रबंधन नहीं किया जाए तो उपज प्रभावित हो सकती है।

निष्कर्ष

धान की सीधी बुवाई (डीएसआर) आधुनिक कृषि की एक महत्वपूर्ण तकनीक है जो कम पानी, कम श्रम और कम लागत में अधिक लाभ प्राप्त करने का अवसर प्रदान करती है। वर्तमान परिस्थितियों में, जब जल संरक्षण और लागत कम करना कृषि की प्रमुख आवश्यकता बन गई है, तब यह तकनीक किसानों के लिए एक वरदान सिद्ध हो सकती है। वैज्ञानिक सलाह और उचित प्रबंधन के साथ अपनाई गई धान की सीधी बुवाई किसानों की आय बढ़ाने तथा कृषि को अधिक टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

'कम पानी, कम लागत और अधिक लाभ-यही है धान की सीधी बुवाई की पहचान।'

02/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

✍ **अदिति संख्यान** (शोधार्थी) सब्जी विज्ञान विभाग, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)

✍ **विवेक सिंह** (शोधार्थी सब्जी विज्ञान विभाग, चौधरी सरवण कुमार हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर, हिमाचल प्रदेश)

किचन गार्डन: पोषण सुरक्षा और स्वस्थ परिवारों की आधारशिला

आज के बदलते दौर में लोग स्वास्थ्य, पोषण और भोजन की गुणवत्ता के प्रति अधिक जागरूक हो रहे हैं। वहीं दूसरी ओर सब्जियों की बढ़ती कीमतें, कीटनाशकों के अवशेषों को लेकर चिंताएं और बदलती खान-पान की आदतें परिवारों के सामने नई चुनौतियाँ पैदा कर रही हैं। ऐसे समय में किचन गार्डन एक सरल, किफायती और प्रभावी समाधान के रूप में उभरकर सामने आया है, जिसे हर परिवार आसानी से अपना सकता है। चाहे परिवार गाँव में रहता हो, कस्बे में या शहर में, एक छोटा सा किचन गार्डन रोज़मर्रा की जरूरतों के लिए ताज़ी और पौष्टिक सब्जियाँ उपलब्ध करा सकता है।

किचन गार्डन, जिसे गृह वाटिका या पोषण वाटिका भी कहा जाता है, घर के पास का वह छोटा क्षेत्र होता है जहाँ सब्जियाँ, फल, जड़ी-बूटियाँ और औषधीय पौधे मुख्य रूप से परिवार की खपत के लिए उगाए जाते हैं। इसे घर के पीछे के हिस्से, छत, बालकनी, आँगन या गमलों में भी स्थापित किया जा सकता है। किचन गार्डन का मुख्य उद्देश्य व्यावसायिक उत्पादन नहीं बल्कि परिवार की आवश्यकताओं के लिए ताज़ी उपज उपलब्ध कराना है। पहले के समय में भारतीय घरों, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, किचन गार्डन एक सामान्य परंपरा थी। परिवार अपने घरों के आसपास पालक, धनिया, मिर्च, टमाटर, बैंगन, भिंडी, लौकी तथा अन्य मौसमी सब्जियाँ उगाते थे। लेकिन आधुनिक जीवनशैली और व्यस्त दिनचर्या के कारण यह परंपरा धीरे-धीरे कम होती गई। आज स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं और सब्जियों की बढ़ती कीमतों के कारण लोग फिर से किचन गार्डन की ओर आकर्षित हो रहे हैं। किचन गार्डन का सबसे बड़ा लाभ ताज़ी और स्वास्थ्यवर्धक सब्जियों की उपलब्धता है। बगीचे से सीधे तोड़ी गई सब्जियाँ बाज़ार से लंबी दूरी तय करके आने वाली सब्जियों की तुलना में अधिक ताज़ी और पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं। इनमें आवश्यक विटामिन, खनिज, प्रोटीन और आहार फाइबर पाए जाते हैं, जो अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने और पोषण संबंधी कमियों को दूर करने में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए पालक और अन्य हरी पत्तेदार सब्जियाँ आयरन और विटामिन का अच्छा स्रोत हैं, जबकि टमाटर में एंटीऑक्सीडेंट और विटामिन सी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। किचन गार्डन का एक अन्य महत्वपूर्ण लाभ आर्थिक बचत है। पूरे वर्ष सब्जियों की कीमतों में उतार-चढ़ाव होता रहता है और कई मौसमों में ये काफी महंगी हो जाती हैं। ऐसे में एक छोटा किचन गार्डन परिवारों की बाजार पर निर्भरता कम कर सकता है और खर्च में बचत करने में मदद करता है। किसान और परिवार अपनी दैनिक सब्जियों की आवश्यकता को कम लागत में पूरा कर सकते हैं। सीमित स्थान होने पर भी सही प्रबंधन के माध्यम से घर की जरूरतों के लिए पर्याप्त सब्जियाँ उगाई जा सकती हैं। किचन गार्डन खाद्य सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्तमान समय में बाजार में उपलब्ध सब्जियों में कीटनाशक अवशेषों को लेकर उपभोक्ताओं की चिंता बढ़ती जा रही है। रासायनिक पदार्थों का अत्यधिक उपयोग स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। किचन गार्डन में जैविक विधियों कोअपनाकर कम से कम रसायनों के उपयोग से सब्जियाँ उगाई जा सकती हैं। रसोई से निकलने वाले जैविक अपशिष्ट जैसे सब्जियों के छिलके, फलों का कचरा, सूखी पत्तियाँ और अन्य जैविक सामग्री को खाद में परिवर्तित करके प्राकृतिक उर्वरक के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और घरेलू कचरे का भी बेहतर प्रबंधन होता है। किचन गार्डन न केवल भोजन और आर्थिक बचत प्रदान करता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान देता है। पौधे कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करके ऑक्सीजन छोड़ते हैं, जिससे वायु गुणवत्ता में सुधार होता है। घरों के आसपास अधिक पौधे लगाने से वातावरण हराभरा बनता है और प्रदूषण कम करने में सहायता मिलती है। साथ ही यह लाभकारी कीटों, तितलियों और परागण करने वाले जीवों को आकर्षित कर जैव विविधता को भी बढ़ावा देता है।किचन गार्डन जल संरक्षण और संसाधनों के बेहतर उपयोग में भी सहायक है। ड्रिप सिंचाई, मल्चिंग और वर्षा जल संचयन जैसी तकनीकों को अपनाकर पानी की बचत की जा सकती है। मल्चिंग मिट्टी की नमी बनाए रखने और खरपतवार नियंत्रण में मदद करती है। पुराने कंटेनर, बाल्टियां, प्लास्टिक की बोतलें और अन्य घरेलू सामग्री का पुनः उपयोग करके भी सब्जियाँ उगाई जा सकती हैं।परिवार के पोषण स्तर को सुधारने में किचन गार्डन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। किचन गार्डन के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक लाभ भी हैं। बागवानी करने से तनाव कम होता है और मानसिक संतुष्टि प्राप्त होती है। पौधों के साथ समय बिताने से खुशी और शांति का अनुभव होता है। परिवार के सदस्य पौधे लगाने, सिंचाई करने और फसल कटाई जैसी गतिविधियों में मिलकर भाग ले सकते हैं। विशेष रूप से बच्चों को इससे प्रकृति, पौधों की वृद्धि और स्वस्थ खान-पान की आदतों के बारे में व्यावहारिक जानकारी मिलती है।सफल किचन गार्डन के लिए उचित योजना बनाना आवश्यक है। स्थान का चयन ऐसा होना चाहिए जहाँ प्रतिदिन कम से कम छह से आठ घंटे पर्याप्त धूप मिल सके। मिट्टी उपजाऊ और जल निकास वाली होनी चाहिए। फसलों का चयन मौसम और परिवार की आवश्यकताओं के अनुसार किया जाना चाहिए। मौसमी सब्जियाँ सामान्यतः बेहतर उत्पादन देती हैं और कम प्रबंधन की आवश्यकता होती है।किचन गार्डन के लिए उपयुक्त सब्जियों में टमाटर, बैंगन, मिर्च, भिंडी, पालक, मूली, गाजर, धनिया, मेथी, लौकी, खीरा, करेला और मटर शामिल हैं। तेज़ी से बढ़ने वाली पत्तेदार सब्जियाँ विशेष रूप से उपयोगी होती हैं क्योंकि इनसे लगातार उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने और कीट समस्याओं को कम करने के लिए फसल चक्र और मिश्रित खेती जैसी तकनीकों को अपनाना चाहिए। नीम का अर्क, लहसुन का घोल तथा जैविक नियंत्रण जैसे प्राकृतिक उपायों के माध्यम से रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम की जा सकती है।कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केंद्रों, विस्तार कार्यकर्ताओं और सरकारी संस्थानों को जागरूकता कार्यक्रमों तथा प्रशिक्षण गतिविधियों के माध्यम से किचन गार्डन को बढ़ावा देना चाहिए। घर-घर किचन गार्डन स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करना पोषण सुरक्षा को मजबूत करने और समुदाय स्तर पर स्वास्थ्य सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।वर्तमान परिस्थितियों में किचन गार्डन केवल एक शौक नहीं बल्कि एक आवश्यकता बनता जा रहा है। घर पर सब्जियाँ उगाने का छोटा सा प्रयास ताज़ा भोजन उपलब्ध कराने, खर्च कम करने, स्वास्थ्य की रक्षा करने और स्वच्छ वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। "अपना भोजन स्वयं उगाएँ" की सोच स्वस्थ परिवारों और टिकाऊ भविष्य के निर्माण की दिशा में एक बड़ा कदम साबित हो सकती है।स्वस्थ घर की शुरुआत स्वस्थ भोजन से होती है, और एक बेहतर भविष्य की शुरुआत हर घर के छोटे से किचन गार्डन से हो सकती है।

निष्कर्ष- वर्तमान समय में किचन गार्डन केवल एक शौक नहीं बल्कि स्वस्थ और आत्मनिर्भर जीवनशैली की आवश्यकता बनता जा रहा है। घर के छोटे से स्थान में उगाई गई ताज़ी एवं पौष्टिक सब्जियाँ परिवार को बेहतर पोषण, सुरक्षित भोजन और आर्थिक बचत प्रदान कर सकती हैं। इसके साथ ही यह पर्यावरण संरक्षण, जैविक खेती को बढ़ावा देने तथा बच्चों में प्रकृति और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता विकसित करने में भी सहायक है। यदि प्रत्येक परिवार अपने घर में छोटा सा किचन गार्डन विकसित करे, तो यह न केवल पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करेगा बल्कि स्वस्थ समाज, स्वच्छ पर्यावरण और टिकाऊ भविष्य के निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान देगा।

01/2025-26

अंशु कुमार पाण्डेय
निखिल शर्मा, कृष्णा प्रिया जी शोधार्थी
रामप्रीत सिंह अतिथि प्राध्यापक, वीर चंद्र सिंह गढ़वाली उत्तराखंड औंधानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, भरसार, पौंड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड 246123

फल फटने की समस्या, कारण, प्रभाव एवं प्रभावी प्रबंधन रणनीतियां

सारांश

फल फटना फल उत्पादन की प्रमुख समस्याओं में से एक है, जो मुख्यतः जल असंतुलन, तापमान में उतार-चढ़ाव तथा कैल्शियम एवं बोरॉन जैसे पोषक तत्वों की कमी के कारण उत्पन्न होती है। इससे फलों की गुणवत्ता, बाजार मूल्य एवं भंडारण क्षमता में उल्लेखनीय कमी आती है तथा किसानों को भारी आर्थिक नुकसान होता है। यह समस्या अनार, सेब, लीची, नाशपाती एवं अंगूर जैसे फलों में अधिक पाई जाती है। इसके प्रभावी नियंत्रण हेतु संतुलित सिंचाई, ड्रिप इरिगेशन, मल्चिंग तथा कैल्शियम-बोरॉन का नियमित पर्णीय छिड़काव अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं। उचित बाग प्रबंधन अपनाकर फल फटने की समस्या को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे उच्च गुणवत्ता युक्त एवं बाजार योग्य फल उत्पादन सुनिश्चित होता है।

परिचय

फल उत्पादन, कृषि, मानव पोषण एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण घटक है। जनसंख्या वृद्धि स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता तथा पौध-आधारित आहार की बढ़ती मांग के परिणाम स्वरूप वैश्विक स्तर पर फल उत्पादन में निरंतर वृद्धि हो रही है। चीन, भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्राजील प्रमुख फल उत्पादक देशों में सम्मिलित हैं, जबकि भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा फल उत्पादक देश है। देश में आम, केला, साइट्रस, अमरूद, पपीता एवं सेब जैसे फलों का वाणिज्यिक स्तर पर व्यापक उत्पादन किया जाता है। फल उत्पादन के दौरान विभिन्न जैविक, भौतिक एवं पर्यावरणीय कारक उत्पादकता, गुणवत्ता एवं बाजार मूल्य को प्रभावित करते हैं। इन्हीं में से एक प्रमुख शारीरिक विकार फल फटना है, जिसमें फल की बाह्य सतह पर दरारें विकसित हो जाती हैं। प्रारंभिक अवस्था में ये दरारें सूक्ष्म होती हैं, किंतु अनुकूल परिस्थितियों में इनका विस्तार होकर फल के पूर्ण रूप से फटने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिससे फल विपणन एवं भंडारण के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। फल फटने की समस्या मुख्यतः जल असंतुलन से संबंधित मानी जाती है, विशेषकर लंबे समय तक जल अभाव के पश्चात अचानक अत्यधिक वर्षा अथवा सिंचाई का होना। इसके अतिरिक्त, अत्यधिक फल भार, उच्च तापमान, शुष्क जलवायु, उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग तथा हार्मोनल असंतुलन। मिट्टी में कैल्शियम, पोटैशियम, बोरॉन एवं फॉस्फोरस जैसे आवश्यक पोषक तत्वों की कमी भी फल फटने की संभावना को बढ़ा देती है। यह समस्या सेब, स्वीट चेरी, खुबानी, लीची, केला, अनार, एवोकाडो, साइट्रस, अंगूर एवं आड़ू जैसे फलों में सामान्यतः पाई जाती है।

फल फटने से होने वाले नुकसान की सीमा

फल फटने के लिए कई कारक उत्तरदायी होते हैं, जिनमें बाग में अपनाई जाने वाली प्रबंधन क्रियाएँ जैसे सिंचाई एवं पोषण, पर्यावरणीय परिस्थितियाँ जैसे तापमान एवं हवा, तथा फल की

किस्म शामिल हैं। औसतन, फल फटने के कारण 50 से 85 प्रतिशत तक फसल का नुकसान होता है। फटे हुए फलों का ताजा बाजार में मूल्य घट जाता है और यदि वे फफूंद संक्रमण से प्रभावित न हों, तो सामान्यतः उनका उपयोग केवल प्रसंस्करण में किया जाता है। ऐसे फल भंडारण रोगों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं तथा उनकी भंडारण अवधि भी कम होती है। फल फटने से होने वाला आर्थिक नुकसान सामान्यतः 10 से 40 प्रतिशत के बीच होता है, लेकिन कुछ परिस्थितियों में यह 70 प्रतिशत तक भी पहुँच सकता है। अनार के बागानों में फल फटने से फलों का बाजार मूल्य लगभग 50 प्रतिशत तक कम हो सकता है।

फल फटना को नियंत्रित करने के उपाय

* फल बनने और बढ़ने की अवस्था में मिट्टी में नमी का संतुलन बनाए रखना सबसे जरूरी है। लंबे समय तक सूखा रहने के बाद अचानक अधिक सिंचाई करने से फल तेजी से पानी सोख लेते हैं, जिससे उनका छिलका फट जाता है। इसलिए बाग में नियमित और नियंत्रित सिंचाई करनी चाहिए।
* जहाँ संभव हो, वहाँ ड्रिप सिंचाई प्रणाली अपनानी चाहिए। इससे मिट्टी में नमी धीरे-धीरे और समान रूप से बनी रहती है, जिससे फलों के अंदर दबाव नहीं बढ़ता और फल फटने की समस्या कम होती है।
* फल के छिलके को मजबूत रखने के लिए कैल्शियम का पर्याप्त होना आवश्यक है। फल विकास अवस्था में कैल्शियम युक्त घोल का पत्तियों पर छिड़काव करने से फल फटने की संभावना कम होती है और फलों की गुणवत्ता भी सुधरती है।
* बाग में मल्चिंग करने से मिट्टी की नमी बनी रहती है, तापमान का प्रभाव कम होता है और जड़ों को अनुकूल वातावरण मिलता है। इससे फलों पर पड़ने वाला तनाव घटता है और क्रैकिंग की समस्या कम होती है।
* अधिक वर्षा की स्थिति में बाग में अच्छी जल निकास व्यवस्था होनी चाहिए तथा साथ ही साथ उर्वरकों का संतुलित प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार करना चाहिए।
* फलों की समय पर तुड़ाई बहुत महत्वपूर्ण है। अधिक पकने पर फल कमजोर हो जाते हैं और आसानी से फटने लगते हैं, इसलिए सही अवस्था में तुड़ाई करनी चाहिए।

सेब में फल फटने (क्रैकिंग) से कैसे बचें

सेब के फलों के बढ़ने के समय मिट्टी में नमी का संतुलन बहुत जरूरी होता है। यदि लंबे समय तक सूखा रहने के बाद अचानक अधिक पानी दे दिया जाए, तो फल तेजी से पानी सोख लेते हैं और उनका छिलका फट जाता है। इसलिए बाग में नियमित और हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए।

फल का छिलका मजबूत रखने के लिए कैल्शियम की पर्याप्त मात्रा आवश्यक होती है। इसके लिए फल विकास अवस्था में कैल्शियम क्लोराइड (0.3-0.5%) का 3-4 बार पत्तियों पर छिड़काव करना लाभकारी रहता है। यदि बोरॉन की कमी हो, तो बोरिक एसिड (0.1%) का छिड़काव भी करना चाहिए। बाग में मल्चिंग करने से मिट्टी में नमी बनी रहती है और फल फटने की समस्या कम होती है।

नाशपाती में फल फटने की समस्या और समाधान

नाशपाती में फल फटने का मुख्य कारण अनियमित सिंचाई है। कभी अधिक और कभी कम पानी देने से फलों के अंदर दबाव बढ़ जाता है, जिससे छिलका फट जाता है। इसलिए मिट्टी में नमी हमेशा एक बनाए रखना जरूरी है। फल की मजबूती हेतु कैल्शियम नाइट्रेट (1%) या कैल्शियम क्लोराइड (0.5%) का पत्तियों पर छिड़काव करना लाभकारी होता है। साथ ही पोटाश और बोरॉन का संतुलित प्रयोग करने से फलों की गुणवत्ता भी बेहतर होती है।

आलूबुखारा में फल फटने से बचाव

आलूबुखारा में फल बढ़ने के समय यदि मिट्टी की नमी में अचानक उतार-चढ़ाव हो जाए, तो फल फटने लगते हैं। इसलिए नियमित सिंचाई और अच्छी जल निकास व्यवस्था बहुत जरूरी है, विशेषकर बारिश के बाद। फल के छिलके की मजबूती बढ़ाने के लिए कैल्शियम क्लोराइड (0.3-0.5%) का 2-3 बार पत्तियों पर छिड़काव करना चाहिए। अधिक गर्मी और तेज धूप में बाग में मल्चिंग करने से फलों पर पड़ने वाला तनाव कम होता है। इसके अलावा, समय पर तुड़ाई करने से भी फल फटने की समस्या घटती है।

निष्कर्ष

फल फटना अनेक कारणों से होता है, जिनमें फल के आनुवंशिक गुण जैसे उसका आकार, कठोरता एवं परिपक्वता शामिल हैं, साथ ही बाग प्रबंधन की कमजोरियां जैसे जल तनाव, पोषक तत्वों की कमी तथा कीट एवं रोग समस्याएँ भी इसके लिए जिम्मेदार होती हैं। इसके अतिरिक्त तापमान और हवा जैसे पर्यावरणीय कारक भी फल फटने को प्रभावित करते हैं। फल फटना कम करने के लिए यह आवश्यक है कि उचित बाग प्रबंधन अपनाया जाए, जिससे जल, पोषण एवं अन्य कारकों से उत्पन्न तनाव को न्यूनतम किया जा सके। साथ ही, अच्छी गुणवत्ता बनाए रखते हुए फल फटने के प्रति अधिक प्रतिरोधी किस्मों का चयन सफल फल उत्पादन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रभावी बाग प्रबंधन तथा फल फटने के प्रति प्रतिरोधी किस्मों की खेती का संयोजन ही फल फटना कम करने और स्वस्थ एवं गुणवत्तापूर्ण फल उत्पादन सुनिश्चित करने का सर्वोत्तम उपाय

हॉर्टिकल्चर में खाद्य सुरक्षा और पोषण का योगदान

नीलम उपाध्याय पीएच.डी. शोधार्थी, उद्यानिकी विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय (केंद्रीय विश्वविद्यालय), उत्तराखंड

डॉ. के. एन. शाह सहायक प्रोफेसर, उद्यानिकी विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय (केंद्रीय विश्वविद्यालय), श्रीनगर (गढ़वाल), उत्तराखंड

सारांश

हॉर्टिकल्चर (बागवानी) कृषि का एक महत्वपूर्ण घटक है, जो खाद्य सुरक्षा और पोषण सुधार में अहम भूमिका निभाता है। वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन और सीमित संसाधनों के कारण संतुलित एवं पर्याप्त भोजन की उपलब्धता एक बड़ी चुनौती है। ऐसे में फल, सब्जियां, मसाले एवं औषधीय पौधों का उत्पादन आहार में विविधता लाकर आवश्यक विटामिन, खनिज, फाइबर और एंटीऑक्सिडेंट्स की पूर्ति करता है, जिससे मानव स्वास्थ्य एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार होता है। हॉर्टिकल्चर स्थानीय स्तर पर उत्पादन को बढ़ावा देता है, जिससे ताजे और गुणवत्तापूर्ण खाद्य पदार्थ सुलभ होते हैं तथा आपूर्ति श्रृंखला मजबूत होती है। इसके साथ ही, ड्रिप सिंचाई, मल्चिंग एवं जैविक खेती जैसी सतत तकनीकों का उपयोग जल संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य सुधार और पर्यावरण संरक्षण में सहायक होता है। आर्थिक दृष्टि से यह क्षेत्र किसानों को उच्च आय, रोजगार के अवसर और निर्यात संभावनाएं प्रदान करता है।

इस प्रकार, हॉर्टिकल्चर खाद्य सुरक्षा, पोषण संवर्धन, पर्यावरणीय स्थिरता और ग्रामीण विकास के बीच संतुलन स्थापित करते हुए सतत विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

Keywords:

हॉर्टिकल्चर, खाद्य सुरक्षा, पोषण, फल एवं सब्जियां, आहार विविधता, सूक्ष्म पोषक तत्व, एंटीऑक्सिडेंट्स, सतत कृषि, जल संरक्षण, ग्रामीण अर्थव्यवस्था

हॉर्टिकल्चर, यानी बागवानी, कृषि का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जो न केवल पर्यावरण की रक्षा करता है, बल्कि खाद्य सुरक्षा और पोषण में भी अहम भूमिका निभाता है। आज के समय में बढ़ती हुई जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन और कृषि उत्पादन में कमी के कारण खाद्य सुरक्षा एक बड़ी चुनौती बन चुकी है। इस चुनौती का समाधान हॉर्टिकल्चर के क्षेत्र में निहित है, जो पौधों की खेती, फल, फूल, सब्जियां, मसाले, और औषधीय पौधों की पैदावार को बढ़ावा देता है।

1. खाद्य सुरक्षा में योगदान

हॉर्टिकल्चर से उत्पादन होने वाले फल, सब्जियां और मसाले हमारे आहार में विविधता लाते हैं और इनका सेवन सेहत के लिए अत्यधिक लाभकारी होता है। बागवानी के माध्यम से हम न केवल खाद्य पदार्थों की उपलब्धता बढ़ाते हैं, बल्कि इनकी गुणवत्तापूर्ण आपूर्ति सुनिश्चित करते हैं, जो खाद्य सुरक्षा के लिए आवश्यक है।

विविधता: हॉर्टिकल्चर की फसलें जैसे फल, सब्जियां

और मसाले हमारी भोजन में आवश्यक विटामिन, खनिज, और अन्य पोषक तत्वों की कमी को पूरा करती हैं। इनकी विविधता से आहार में संतुलन बना रहता है।

स्थानीय स्तर पर उत्पादन: हॉर्टिकल्चर से स्थानीय स्तर पर उत्पादन बढ़ता है, जिससे खाद्य पदार्थों की आपूर्ति सुलभ और सस्ती होती है। यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी सशक्त बनाता है।

2. पोषण में योगदान

फलों और सब्जियों में आवश्यक पोषक तत्व होते हैं, जो शारीरिक विकास, रोग प्रतिरोधक क्षमता, और स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। हॉर्टिकल्चर के द्वारा उगाए जाने वाले फल और सब्जियां जैसे कि टमाटर, आलू, गाजर, सेब, आम, केला, आदि शरीर के लिए आवश्यक विटामिन, खनिज, और फाइबर का प्रमुख स्रोत होते हैं।

विटामिन और खनिज: फल और सब्जियां शरीर को विटामिन C, A, और K, आयरन, कैल्शियम और पोटेशियम जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व प्रदान करती हैं। ये तत्व शरीर को स्वस्थ बनाए रखने में मदद करते हैं।

रोग प्रतिरोधक क्षमता: बागवानी से उत्पादित हरी सब्जियां और फल हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं। ये शरीर को एंटीऑक्सिडेंट्स, फाइटोन्यूट्रिएंट्स और अन्य महत्वपूर्ण पदार्थ प्रदान करते हैं, जो स्वस्थ जीवन हेतु आवश्यक हैं।

3. सतत कृषि और पर्यावरणीय सुरक्षा

हॉर्टिकल्चर में खेती के दौरान सतत कृषि पद्धतियों का उपयोग किया जाता है, जो न केवल खाद्य सुरक्षा बढ़ाता है, बल्कि पर्यावरण को भी बचाता है। जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय असंतुलन के बावजूद, बागवानी के माध्यम से कम जल और कम संसाधनों में भी अच्छी पैदावार संभव होती है।

जल संरक्षण: अत्याधुनिक तकनीकों जैसे ड्रिप इरिगेशन से जल की बचत होती है और भूमि की उर्वरक क्षमता बनी रहती है।

जैविक खेती: बागवानी में रासायनिक उर्वरकों का कम से कम उपयोग किया जाता है, जिससे मिट्टी की सेहत बनी रहती है और प्रदूषण कम होता है।

4. आर्थिक दृष्टिकोण से योगदान

हॉर्टिकल्चर न केवल पोषण और खाद्य सुरक्षा में योगदान देता है, बल्कि यह किसानों के लिए एक स्थिर और लाभकारी आय का स्रोत भी बनता है। फलों और सब्जियों की अच्छी उपज से किसानों को अच्छा मुनाफा मिलता है और वे अपने जीवनस्तर को बेहतर बना सकते हैं। इसके अलावा, यह स्थानीय बाजारों और निर्यात के माध्यम से रोजगार के अवसर भी उत्पन्न करता है।

निष्कर्ष

हॉर्टिकल्चर का योगदान खाद्य सुरक्षा और पोषण के क्षेत्र में अतुलनीय है। यह न केवल हमारी सेहत को लाभ पहुंचाता है, बल्कि पर्यावरण की रक्षा, जल और भूमि संसाधनों का संरक्षण, और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सशक्तिकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसलिए, इस क्षेत्र में निवेश और विकास के अवसरों को बढ़ावा देना न केवल हमारे लिए, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी फायदेमंद होगा।

12/2025-26

पुष्पेन्द्र यादव, शुभ्रांशु सिंह कृषि विस्तार प्रभाग, भाकृअनुप, कृषि अनुसंधान भवन-I, पूसा नई दिल्ली–110012

डॉ. रविकेश कुमार पाल, रिचा यादव
रामा विश्वविद्यालय मंधना, कानपुर (उ.प्र.)

आधुनिक कृषि : आत्मनिर्भर, टिकाऊ एवं समृद्ध भारत की आधारशिला

प्रस्तावना- भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ आज भी लगभग आधी से अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषि केवल खाद्यान्न उत्पादन का माध्यम नहीं, बल्कि देश की अर्थव्यवस्था, ग्रामीण रोजगार और खाद्य सुरक्षा का आधार भी है। बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन, भूमि संसाधनों में कमी तथा प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण जैसी चुनौतियों ने कृषि क्षेत्र के समक्ष नई परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीकों और वैज्ञानिक विधियों को अपनाना समय की आवश्यकता बन गया है।

आधुनिक कृषि वह प्रणाली है जिसमें विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सूचना एवं संचार तकनीक, यंत्रीकरण, जैव प्रौद्योगिकी तथा डिजिटल उपकरणों का उपयोग करके कृषि उत्पादन, उत्पादकता और लाभप्रदता को बढ़ाया जाता है। आधुनिक कृषि का उद्देश्य केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करना नहीं, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए टिकाऊ एवं लाभकारी कृषि प्रणाली विकसित करना भी है। भारत सरकार तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) द्वारा डिजिटल कृषि, जलवायु-स्मार्ट कृषि, प्राकृतिक खेती तथा सटीक कृषि (Precision Agriculture) को बढ़ावा दिया जा रहा है।

आधुनिक कृषि की अवधारणा- आधुनिक कृषि पारंपरिक कृषि का उन्नत स्वरूप है, जिसमें वैज्ञानिक ज्ञान और आधुनिक तकनीकों का समन्वय किया जाता है। इसके अंतर्गत उन्नत बीज, आधुनिक कृषि यंत्र, सिंचाई तकनीक, ड्रोन, सेंसर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT), उपग्रह आधारित निगरानी, मोबाइल ऐप्स तथा डिजिटल सलाहकारी सेवाओं का उपयोग किया जाता है। इन तकनीकों के माध्यम से किसान सही समय पर सही निर्णय ले सकते हैं, जिससे उत्पादन लागत कम होती है और उत्पादकता बढ़ती है।

आधुनिक कृषि की आवश्यकता- वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है। कृषि भूमि का आकार लगातार घट रहा है, जल संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है तथा मौसम की अनिश्चितता किसानों के लिए जोखिम उत्पन्न कर रही है। ऐसी स्थिति में पारंपरिक खेती की सीमाएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। **आधुनिक कृषि निम्नलिखित कारणों से आवश्यक है—** 1. बढ़ती जनसंख्या के लिए पर्याप्त खाद्यान्न उत्पादन। 2. सीमित भूमि और जल संसाधनों का कुशल उपयोग। 3. उत्पादन लागत में कमी। 4. किसानों की आय में वृद्धि। 5. जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना। 6. कृषि को युवाओं के लिए आकर्षक और लाभकारी बनाना। 7. कृषि क्षेत्र में टिकाऊ विकास सुनिश्चित करना। भारत में कृषि के आधुनिकीकरण के लिए सरकार द्वारा डिजिटल एग्रीकल्चर मिशन, प्राकृतिक खेती मिशन तथा विभिन्न कृषि विकास योजनाएँ संचालित की जा रही हैं।

आधुनिक कृषि के प्रमुख घटक

1. उन्नत एवं जलवायु सहनशील किस्में- आधुनिक कृषि का पहला आधार उन्नत बीज हैं। वैज्ञानिकों द्वारा विकसित नई किस्में अधिक उत्पादन देने के साथ-साथ रोगों, कीटों तथा सूखा, बाढ़ और तापमान जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने में सक्षम होती हैं। ICAR द्वारा हजारों उन्नत एवं तनाव-सहनशील किस्मों का विकास किया गया है, जिससे किसानों को बेहतर उत्पादन प्राप्त हो रहा है।

2. कृषि यंत्रीकरण-कृषि यंत्रीकरण आधुनिक कृषि का महत्वपूर्ण अंग है। ट्रैक्टर, सीड ड्रिल, हैप्पी सीडर, रीपर, थ्रेशर, कंबाइन हार्वेस्टर तथा ड्रोन

जैसे उपकरणों ने खेती को अधिक कुशल बनाया है। यंत्रीकरण से श्रम लागत कम होती है, समय की बचत होती है तथा कृषि कार्यों की गुणवत्ता में सुधार होता है। आधुनिक कृषि में यंत्रों का उपयोग बढ़ने के कारण उत्पादन क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

3. सटीक कृषि (Precision Agriculture)-सटीक कृषि एक ऐसी तकनीक है जिसमें खेत की वास्तविक आवश्यकता के अनुसार बीज, उर्वरक, पानी तथा कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। GPS, GIS, ड्रोन, सेंसर और उपग्रह चित्रों की सहायता से खेत की स्थिति का विश्लेषण किया जाता है। इससे संसाधनों की बचत होती है तथा उत्पादन में वृद्धि होती है।

4. डिजिटल कृषि- डिजिटल कृषि आधुनिक कृषि की क्रांतिकारी अवधारणा है। इसमें मोबाइल ऐप, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, बिग डेटा, भू-स्थानिक सूचना प्रणाली तथा ऑनलाइन प्लेटफॉर्म का उपयोग किया जाता है। डिजिटल कृषि के माध्यम से किसानों को मौसम, बाजार मूल्य, फसल रोग, कीट प्रबंधन तथा सरकारी योजनाओं की जानकारी समय पर प्राप्त होती है। भारत सरकार का डिजिटल एग्रीकल्चर मिशन इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

5. स्मार्ट सिंचाई प्रणाली- जल संरक्षण आधुनिक कृषि का प्रमुख उद्देश्य है। ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर सिंचाई तथा सेंसर आधारित सिंचाई प्रणालियाँ पानी की बचत करते हुए फसलों को आवश्यक मात्रा में जल उपलब्ध कराती हैं। इससे जल उपयोग दक्षता बढ़ती है और उत्पादन में सुधार होता है।

6. ड्रोन तकनीक- ड्रोन आधुनिक कृषि में तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। इनका उपयोग फसल निगरानी, उर्वरक एवं कीटनाशक छिड़काव, पौधों की वृद्धि का आकलन तथा रोगों की पहचान के लिए किया जाता है। ड्रोन तकनीक समय, श्रम तथा लागत की बचत करती है।

आधुनिक कृषि और जलवायु परिवर्तन- जलवायु परिवर्तन कृषि हेतु गंभीर चुनौती बन चुका है। अनियमित वर्षा, तापमान में वृद्धि, सूखा तथा बाढ़ जैसी घटनाएँ फसल उत्पादन को प्रभावित कर रही हैं। आधुनिक कृषि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

जलवायु-स्मार्ट कृषि के अंतर्गत निम्न उपाय अपनाए जाते हैं— * सूखा एवं बाढ़ सहनशील किस्मों का उपयोग। * जल संरक्षण तकनीकों का प्रयोग। * फसल विविधीकरण। * कृषि वानिकी को बढ़ावा। * मौसम आधारित कृषि सलाह। * कार्बन उत्सर्जन में कमी।

ICAR तथा विभिन्न कृषि संस्थान जलवायु-स्मार्ट कृषि तकनीकों के विकास एवं प्रसार पर विशेष ध्यान दे रहे हैं।

आधुनिक कृषि में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) की भूमिका- सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने कृषि क्षेत्र में नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं। ICT आधारित कृषि सेवाएँ किसानों को वैज्ञानिक जानकारी शीघ्रता से उपलब्ध कराती हैं। मोबाइल ऐप, किसान पोर्टल, डिजिटल कियोस्क, ऑनलाइन प्रशिक्षण तथा विशेषज्ञ सलाह सेवाएँ किसानों की निर्णय क्षमता को मजबूत बनाती हैं। ICAR द्वारा ICT आधारित कीट निगरानी और सलाहकारी सेवाओं को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिससे किसान समय रहते रोग एवं कीट प्रबंधन कर सकते हैं।

टिकाऊ कृषि और आधुनिक तकनीक- आधुनिक कृषि का उद्देश्य केवल अधिक उत्पादन नहीं, बल्कि टिकाऊ विकास भी है। टिकाऊ कृषि ऐसी प्रणाली है जिसमें वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण किया जाता है।

टिकाऊ कृषि के प्रमुख घटक हैं— * मृदा स्वास्थ्य संरक्षण * जैविक एवं प्राकृतिक खेती* समेकित पोषक तत्व प्रबंधन * समेकित कीट प्रबंधन * जल संरक्षण * कृषि वानिकी

नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग-पंजाब सहित विभिन्न राज्यों में फसल अवशेष प्रबंधन, प्रत्यक्ष बुवाई तथा पुनर्योजी कृषि तकनीकों को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिससे पर्यावरणीय प्रदूषण में कमी आ रही है।

किसान उत्पादक संगठन (FPO) और आधुनिक कृषि-आधुनिक कृषि में किसान उत्पादक संगठनों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। FPO छोटे एवं सीमांत किसानों को संगठित करके उन्हें बेहतर बाजार, उन्नत तकनीक, गुणवत्तापूर्ण आदान तथा वित्तीय सेवाओं तक पहुँच प्रदान करते हैं। सामूहिक विपणन एवं संसाधन प्रबंधन के माध्यम से किसानों की आय में वृद्धि संभव होती है।

आधुनिक कृषि के लाभ

आधुनिक कृषि अपनाने से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं— 1.फसल उत्पादकता में वृद्धि। 2.उत्पादन लागत में कमी। 3.संसाधनों का कुशल उपयोग। 4.जल एवं ऊर्जा की बचत। 5.किसानों की आय में वृद्धि। 6.कृषि जोखिमों में कमी। 7.बेहतर गुणवत्ता वाली उपज। 8.पर्यावरण संरक्षण। 9.कृषि क्षेत्र में रोजगार के नए अवसर।10. खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना।

आधुनिक कृषि की चुनौतियाँ

यद्यपि आधुनिक कृषि के अनेक लाभ हैं, फिर भी इसके सामने कुछ चुनौतियाँ मौजूद हैं- * आधुनिक उपकरणों की उच्च लागत। * छोटे किसानों की सीमित आर्थिक क्षमता। * तकनीकी ज्ञान की कमी। * डिजिटल साक्षरता का अभाव। * इंटरनेट एवं विद्युत सुविधाओं की कमी। * जलवायु परिवर्तन की अनिश्चितताएँ। * कृषि निवेश की सीमाएँ। इन चुनौतियों को दूर करने हेतु सरकार, अनुसंधान संस्थानों, कृषि विश्वविद्यालयों तथा कृषि विज्ञान केंद्रों को मिलकर कार्य करना होगा।

आधुनिक कृषि में युवाओं की भूमिका- भारत में कृषि क्षेत्र को आधुनिक बनाने में युवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। आज अनेक युवा एग्री-स्टार्टअप, ड्रोन सेवाएँ, डिजिटल सलाहकारी प्लेटफॉर्म, जैविक खेती, संरक्षित खेती तथा कृषि उद्यमिता के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। आधुनिक कृषि तकनीकों के माध्यम से कृषि को लाभकारी व्यवसाय के रूप में विकसित किया जा सकता है। ICAR भी कृषि उद्यमिता एवं नवाचार को प्रोत्साहित कर रहा है।

निष्कर्ष- आधुनिक कृषि भारत की खाद्य सुरक्षा, किसानों की समृद्धि और ग्रामीण विकास की आधारशिला है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के समुचित उपयोग से कृषि को अधिक उत्पादक, लाभकारी तथा पर्यावरण-अनुकूल बनाया जा सकता है। डिजिटल कृषि, सटीक कृषि, जलवायु-स्मार्ट कृषि, यंत्रीकरण तथा टिकाऊ कृषि पद्धतियाँ भविष्य की कृषि का मार्ग प्रशस्त कर रही हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिक तकनीकों को खेत स्तर तक पहुँचाया जाए और किसानों को इनके उपयोग हेतु प्रशिक्षित किया जाए। जब वैज्ञानिक अनुसंधान, सरकारी योजनाएँ और किसानों का अनुभव एक साथ मिलेंगे, तब भारत की कृषि वास्तव में आत्मनिर्भर, टिकाऊ और समृद्ध बन सकेगी। आधुनिक कृषि केवल तकनीकी परिवर्तन नहीं, बल्कि ग्रामीण भारत के समग्र विकास का माध्यम है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

अकोला मिनी दाल मिलः दलहन प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन एवं ग्रामीण उद्यमिता का प्रभावी यंत्र

डॉ. मो. इरफान अहमद अंसारी सह-प्राध्यापक सह वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रधान अन्वेषक, अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (फसलोपरांत अभियंत्रण एवं प्रौद्योगिकी) कृषि अभियंत्रण विभाग, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, रांची, झारखंड

प्रस्तावनाः झारखंड एक कृषि एवं वन संपदा से समृद्ध राज्य है, जहाँ दलहन खेती ग्रामीण आजीविका का महत्वपूर्ण हिस्सा है। राज्य में अरहर, चना, मसूर, मूंग, उड़द तथा कुल्थी जैसी दलहनी फसलों की खेती व्यापक रूप से की जाती है। दलहन न केवल किसानों के लिए आय का महत्वपूर्ण स्रोत हैं, बल्कि राज्य की पोषण सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दालें प्रोटीन का सस्ता एवं सुलभ स्रोत हैं, जिनमें सामान्यतः 20-25% प्रोटीन पाया जाता है। इसलिए दालों को प्रायः "गरीब आदमी का प्रोटीन" कहा जाता है। प्रोटीन शरीर की वृद्धि, ऊतकों की मरम्मत, मांसपेशियों के विकास तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता को सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक है। झारखंड में भी प्रतिवर्ष बड़ी मात्रा में दलहन का उत्पादन होता है, किन्तु प्रसंस्करण सुविधाओं की सीमित उपलब्धता के कारण अधिकांश उपज कच्चे रूप में ही बाजार में बेच दी जाती है। परिणाम स्वरूप मूल्य संवर्धन का लाभ किसानों तक नहीं पहुँच पाता तथा उन्हें अपनी उपज का अपेक्षित मूल्य प्राप्त नहीं होता। अधिकांश प्रसंस्करण कार्य शहरी क्षेत्रों में स्थित दाल मिलों में होने के कारण किसानों को अतिरिक्त परिवहन, भंडारण एवं विपणन लागत भी वहन करनी पड़ती है। कटाई के बाद प्रसंस्करण कृषि मूल्य श्रृंखला का एक महत्वपूर्ण चरण है। इसके माध्यम से उत्पाद की गुणवत्ता, उपयोगिता, भंडारण क्षमता तथा बाजार मूल्य में वृद्धि होती है। यदि दलहन उत्पादन क्षेत्रों में ही प्रसंस्करण सुविधाएँ उपलब्ध हों, तो किसान स्थानीय स्तर पर मूल्य संवर्धन कर अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। दाल मिलिंग के माध्यम से किसान तैयार दाल के साथ-साथ टूटी दाल, भूसी एवं चूरी जैसे उप-उत्पादों से भी अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते हैं। इससे बिचौलियों पर निर्भरता कम होती है, परिवहन लागत घटती है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार और उद्यमिता के नए अवसर सृजित होते हैं। झारखंड में किसानों की आय बढ़ाने, महिला स्वयं सहायता समूहों (SHGs) को सशक्त बनाने, किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) को प्रोत्साहित करने तथा ग्रामीण युवाओं के लिए स्वरोजगार के अवसर विकसित करने की दृष्टि से दलहन प्रसंस्करण की अपार संभावनाएँ हैं। अकोला मिनी दाल मिल जैसी कम लागत वाली एवं वैज्ञानिक तकनीकें ग्रामीण स्तर पर दाल प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन को बढ़ावा दे सकती हैं। इस प्रकार दाल मिलिंग केवल एक प्रसंस्करण तकनीक नहीं, बल्कि झारखंड में किसानों की आय वृद्धि, ग्रामीण रोजगार सृजन, महिला सशक्तिकरण तथा आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के निर्माण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

अकोला मिनी दाल मिलः दाल को उपभोग योग्य बनाने के लिए भूसी हटाने तथा दानों को दो भागों में विभाजित करने (स्प्लिटिंग) की आवश्यकता होती है। सफाई, ग्रेडिंग, कंडीशनिंग, डीहस्किंग, स्प्लिटिंग, पॉलिशिंग एवं पैकेजिंग जैसी प्रक्रियाओं को सामूहिक रूप से दाल मिलिंग कहा जाता है। वैज्ञानिक दाल मिलिंग से दाल की गुणवत्ता, रिकवरी एवं बाजार मूल्य में वृद्धि होती है तथा प्रसंस्करण हानियाँ कम होती हैं। अकोला मिनी दाल मिल ग्रामीण क्षेत्रों के लिए एक कम लागत वाली, सरल एवं व्यावहारिक दलहन प्रसंस्करण यंत्र है। यह अरहर, चना, मूंग, उड़द, मसूर आदि प्रमुख दलहनों के प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त है तथा किसानों, किसान उत्पादक संगठनों (FPOs), स्वयं सहायता समूहों (SHGs), कृषि स्नातकों एवं ग्रामीण उद्यमियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। इस मिल में फीड हॉपर कच्चे दलहन को मशीन में पहुँचाता है, जबकि क्लीनर एवं ग्रेडर धूल, मिट्टी, कंकड़ तथा असमान आकार के दानों को अलग कर मिलिंग की दक्षता बढ़ाते हैं। इसके बाद कंडीशनिंग यूनिट नमी या तेल उपचार द्वारा भूसी को ढीला करती है, जिससे आगे की मिलिंग प्रक्रिया आसान हो जाती है। एमरी रोलर आधारित डीहस्कर एवं स्प्लिटर छिलका हटाने और दानों को दो भागों में विभाजित करने का कार्य करते हैं। एस्पिरेटर या ब्लोअर भूसी एवं हल्के कणों को अलग करता है, जबकि सिविंग यूनिट साबुत, टूटी एवं प्रसंस्कृत दाल को अलग-अलग वर्गों में विभाजित करती है। इसके बाद पॉलिशर दाल के रंग एवं चमक को बेहतर बनाता है तथा कलेक्शन बिन तैयार दाल एवं उप-उत्पादों को एकत्र करता है। इन सभी इकाइयों को लगभग 5 हॉर्सपावर की विद्युत मोटर एवं बेल्ट-पुली आधारित पावर ट्रांसमिशन प्रणाली द्वारा संचालित किया जाता है। अकोला मिनी दाल मिल की क्षमता लगभग 100-150 किलोग्राम प्रति घंटा है। इसकी संरचना मजबूत, रखरखाव में आसान तथा ग्रामीण परिस्थितियों के अनुकूल है। नियंत्रित कंडीशनिंग एवं एमरी रोलर तकनीक के कारण दाल की रिकवरी अधिक प्राप्त होती है तथा टूटे दानों और पाउडर की मात्रा न्यूनतम रहती है। इसके अतिरिक्त, प्रसंस्करण के दौरान प्राप्त टूटी दाल, भूसी एवं चूरी जैसे उप-उत्पादों का उपयोग पशु आहार एवं अन्य औद्योगिक प्रयोजनों में कर अतिरिक्त आय अर्जित की जा सकती है। कम निवेश, बेहतर दाल रिकवरी, स्थानीय स्तर पर मूल्य संवर्धन तथा रोजगार सृजन की क्षमता के कारण अकोला मिनी दाल मिल किसानों की आय बढ़ाने, ग्रामीण उद्यमिता को प्रोत्साहित करने तथा आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है ।

पैकेजिंग, ब्रांडिंग, विपणन तथा आवश्यक पंजीकरणः दाल मिलिंग व्यवसाय की सफलता में गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के साथ-साथ पैकेजिंग, ब्रांडिंग, विपणन एवं आवश्यक वैधानिक पंजीकरणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उचित पैकेजिंग दालों को नमी, कीटों, धूल तथा अन्य प्रदूषकों से सुरक्षित रखकर उनकी गुणवत्ता एवं शेल्फ लाइफ बढ़ाती है। आकर्षक एवं स्वच्छ पैकेजिंग उपभोक्ताओं का विश्वास बढ़ाने के साथ उत्पाद को विशिष्ट पहचान भी प्रदान करती है। पैकेट पर उत्पाद का नाम, शुद्ध वजन, पोषण संबंधी जानकारी, निर्माण एवं समाप्ति तिथि, MRP, बैच संख्या तथा स्नस्स्द्ध लाइसेंस जैसी जानकारियों का उल्लेख उत्पाद की विश्वसनीयता को सुदृढ़ बनाता है। पैकेजिंग के साथ ब्रांडिंग एवं विपणन भी मूल्य संवर्धन के महत्वपूर्ण साधन हैं। किसान उत्पादक संगठन (FPO), स्वयं सहायता समूह (SHG) तथा ग्रामीण उद्यमी यदि स्थानीय पहचान के आधार पर अपना ब्रांड विकसित करें, तो वे बेहतर बाजार मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। वर्तमान में पैकेज्ड एवं ब्रांडेड दालों की मांग बढ़ रही है तथा सुपरमार्केट, किसान बाजार, सहकारी भंडार एवं ऑनलाइन प्लेटफॉर्म नए विपणन अवसर प्रदान कर रहे हैं। दाल मिलिंग इकाई के सुचारु संचालन हेतु उद्यम (MSME) पंजीकरण, FSSAI लाइसेंस तथा आवश्यकतानुसार त्नस्ञ्ज पंजीकरण एवं स्थानीय अनुमतियाँ प्राप्त करना आवश्यक है। यदि उत्पाद को ब्रांड नाम से बेचा जाता है, तो FSSAI के पैकेजिंग एवं लेबलिंग नियमों का पालन करना चाहिए तथा ब्रांड सुरक्षा के लिए ट्रेडमार्क पंजीकरण भी कराया जा सकता है। इन उपायों के माध्यम से किसान, FPO, SHG एवं ग्रामीण उद्यमी संगठित बाजारों तक बेहतर पहुँच बनाकर मूल्य संवर्धन और आय में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं।

सफल संचालन हेतु आवश्यक सावधानियांः मिनी दाल मिल की सफल स्थापना एवं संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। सबसे पहले, इकाई के निरंतर संचालन हेतु पर्याप्त मात्रा में गुणवत्तायुक्त कच्चे दलहन की उपलब्धता सुनिश्चित होनी चाहिए। मिल के कुशल संचालन के लिए प्रशिक्षित ऑपरेटर एवं श्रमिकों की आवश्यकता होती है, जिससे दाल की गुणवत्ता एवं रिकवरी बेहतर बनी रहती है। इसके साथ ही नियमित एवं निर्बाध विद्युत आपूर्ति आवश्यक है, ताकि प्रसंस्करण कार्य बिना व्यवधान के संचालित हो सके। मशीनों का समय-समय पर रखरखाव एवं मरम्मत करने से उनकी कार्यक्षमता बनी रहती है तथा अनावश्यक खराबी और उत्पादन हानि से बचा जा सकता है। उत्पादित दाल के बेहतर विपणन और उचित मूल्य प्राप्त करने के लिए बाजार से सीधा जुड़ाव भी महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) एवं स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से सामूहिक रूप से दाल मिल का संचालन करने पर कच्चे माल की उपलब्धता, वित्तीय संसाधनों का प्रबंधन, विपणन तथा लाभ वितरण अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। इन सभी पहलुओं पर समुचित ध्यान देकर मिनी दाल मिल को एक लाभकारी एवं टिकाऊ ग्रामीण उद्यम के रूप में विकसित किया जा सकता है।

दाल मिलिंग और ग्रामीण उद्यमिता विकासः दाल मिलिंग केवल एक प्रसंस्करण गतिविधि नहीं, बल्कि ग्रामीण उद्यमिता, रोजगार सृजन, आय वृद्धि और महिला सशक्तिकरण का प्रभावी माध्यम है। यह एक कृषि-आधारित उद्यम है, जिसमें अपेक्षाकृत कम पूंजी निवेश की आवश्यकता होती है तथा कच्चा माल स्थानीय स्तर पर आसानी से उपलब्ध रहता है। किसान यदि दलहनों को कच्चे दाने के रूप में बेचने के बजाय प्रसंस्कृत दाल के रूप में विपणन करें, तो उन्हें मूल्य संवर्धन का लाभ प्राप्त होता है और उनकी आय में वृद्धि हो सकती है। अकोला मिनी दाल मिल से दाल बनाने का कार्य गाँव स्तर पर ही किया जा सकता है। इससे परिवहन एवं प्रसंस्करण लागत में कमी आती है। इस प्रकार दाल मिलिंग आधारित सूक्ष्म उद्यम किसानों को मूल्य संवर्धन का लाभ दिलाने, महिलाओं एवं युवाओं को स्वरोजगार उपलब्ध कराने, ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा देने तथा आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के निर्माण में उत्कृष्ट अवसर प्रदान करती है।

निष्कर्षः दाल भारतीय आहार, पोषण सुरक्षा एवं कृषि अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार हैं। अकोला मिनी दाल मिल दलहन प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन के लिए एक सरल, कम लागत वाली और प्रभावी यंत्र है, जिसके माध्यम से अरहर, चना, मूंग, उड़द एवं मसूर जैसी फसलों का स्थानीय स्तर पर प्रसंस्करण कर किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त हो सकता है। झारखंड सहित अन्य दलहन उत्पादक क्षेत्रों में उत्पादन स्थलों के निकट दाल मिलों की स्थापना से परिवहन लागत में कमी, ग्रामीण रोजगार सृजन, महिला सशक्तिकरण तथा कृषि-आधारित उद्यमों के विकास में बढ़ावा मिल सकता है। साथ ही, वैज्ञानिक प्रसंस्करण, आकर्षक पैकेजिंग, ब्रांडिंग एवं विपणन के माध्यम से किसान, स्वयं सहायता समूह तथा किसान उत्पादक संगठन मूल्य संवर्धित उद्यमियों के रूप में विकसित हो सकते हैं। इस प्रकार अकोला मिनी दाल मिल केवल एक प्रसंस्करण यंत्र नहीं, बल्कि किसानों की आय वृद्धि, ग्रामीण उद्यमिता, पोषण सुरक्षा और आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने का एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावी माध्यम है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

महिमा सामंत रसायन शास्त्र की प्राध्यापिका
बेंगलुरु, (कर्नाटक)

सुनहरी हल्दी: किसानों के खेतों से विश्व बाजार तक

भारत की कृषि केवल अन्न उत्पादन तक सीमित नहीं रही है। यहाँ की मिट्टी ने सदियों से ऐसे मसाले और औषधीय पौधे दिए हैं, जिन्होंने दुनिया को स्वाद, स्वास्थ्य और सुगंध प्रदान की है। उन्हीं में से एक है–हल्दी। अपनी सुनहरी चमक, औषधीय गुणों और आर्थिक महत्व के कारण हल्दी को भारतीय कृषि की "सुनहरी फसल" कहा जाए तो गलत नहीं होगा।

हल्दी केवल रसोई का मसाला नहीं, बल्कि किसानों की आय बढ़ाने वाली एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है। इसकी मांग देश के साथ-साथ विदेशों में भी लगातार बढ़ रही है। आज हल्दी का उपयोग भोजन, औषधि, सौंदर्य प्रसाधन, प्राकृतिक रंग, आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा तक में हो रहा है। यही कारण है कि हल्दी की खेती किसानों के लिए लाभकारी और भविष्य की संभावनाओं से भरी हुई मानी जा रही है। विशेष बात यह है कि हल्दी का संबंध केवल कृषि से नहीं, बल्कि रसायन विज्ञान और स्वास्थ्य विज्ञान से भी जुड़ा हुआ है। हल्दी में पाया जाने वाला कर्क्यूमिन (Curcumin) नामक रासायनिक तत्व उसे औषधीय महत्व प्रदान करता है। आज वैज्ञानिक भी हल्दी के गुणों पर लगातार शोध कर रहे हैं। खेती की दृष्टि से हल्दी ऐसी फसल है जिसमें कम क्षेत्र से भी अच्छा लाभ प्राप्त किया जा सकता है। यदि किसान आधुनिक तकनीकों, जैविक खेती और उचित बाजार प्रबंधन को अपनाएँ, तो हल्दी उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने वाली फसल सिद्ध हो सकती है।

हल्दी का परिचय

हल्दी का वैज्ञानिक नाम Curcuma longa है। यह अदरक कुल का पौधा है। इसकी भूमिगत गांठें (Rhizomes) को सुखाकर और पीसकर हल्दी तैयार की जाती है। हल्दी का पीला रंग उसमें उपस्थित कर्क्यूमिन के कारण होता है। भारत विश्व में हल्दी का सबसे बड़ा उत्पादक, उपभोक्ता और निर्यातक देश है। आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, ओडिशा और पश्चिम बंगाल में इसकी बड़े पैमाने पर खेती की जाती है।

हल्दी की खेती के लिए उपयुक्त जलवायु

हल्दी एक उष्णकटिबंधीय फसल है, जिसे गर्म और आर्द्र जलवायु अत्यंत अनुकूल होती है। इसकी खेती के लिए 20°C से 35°C तक का तापमान उपयुक्त माना जाता है। अच्छी वर्षा वाली जलवायु में हल्दी का उत्पादन बेहतर होता है, क्योंकि इसकी वृद्धि के लिए पर्याप्त नमी आवश्यक होती है। हल्दी की फसल को प्रारंभिक अवस्था में हल्की धूप तथा बाद के चरणों में पर्याप्त नमी की आवश्यकता पड़ती है। अधिक जलभराव या अत्यधिक ठंड इसकी वृद्धि को प्रभावित कर सकती है। भारत के कई राज्यों जैसे तेलंगाना, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, ओडिशा तथा केरल में इसकी खेती बड़े पैमाने पर की जाती है।

मिट्टी और बुवाई

हल्दी की खेती हेतु अच्छी जलनिकासी वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त मानी जाती है। मिट्टी का pH मान लगभग 5.5 से 7.5 के बीच होना चाहिए। जलभराव वाली भूमि में कंद सड़ने की संभावना अधिक रहती है, इसलिए खेत की उचित तैयारी आवश्यक होती है। बुवाई से पहले खेत की अच्छी तरह जुताई करके उसमें गोबर की सड़ी हुई खाद मिलाई जाती है। हल्दी की बुवाई सामान्यतः अप्रैल से जून के बीच की जाती है। इसके लिए स्वस्थ एवं रोगमुक्त कंदों का चयन किया जाता है। कंदों को लगभग 4-5 सेंटीमीटर गहराई पर कतारों में लगाया जाता है। पौधों के बीच उचित दूरी

रखने से उत्पादन बेहतर होता है और रोगों का खतरा कम होता है।

उन्नत किस्में

आजकल हल्दी की कई उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, जो अधिक उत्पादन और बेहतर गुणवत्ता प्रदान करती हैं। इनमें 'सुगंधम', 'प्रतिभा', 'राजेंद्र सोनिया', 'अलप्पी', 'रोमा' तथा 'सुवर्णा' जैसी किस्में प्रमुख हैं। कुछ किस्मों में करक्यूमिन की मात्रा अधिक पाई जाती है, जिससे उनका औषधीय और व्यावसायिक महत्व बढ़ जाता है। उन्नत किस्मों का उपयोग किसानों को अधिक उपज और बेहतर बाजार मूल्य दिलाने में सहायक होता है।

किसानों के लिए आय का स्रोत

हल्दी केवल एक मसाला फसल ही नहीं, बल्कि किसानों के लिए आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत भी बन चुकी है। घरेलू उपयोग के साथ-साथ औषधीय, कॉस्मेटिक तथा खाद्य उद्योगों में इसकी मांग लगातार बढ़ रही है। हल्दी से पाउडर, तेल, अर्क तथा स्वास्थ्य उत्पाद तैयार किए जाते हैं, जिससे किसानों को अतिरिक्त आर्थिक लाभ प्राप्त हो सकता है। यदि किसान प्रसंस्करण और पैकेजिंग पर ध्यान दें, तो वे अपने उत्पाद को अधिक मूल्य

पर बाजार में बेच सकते हैं। कई क्षेत्रों में हल्दी की खेती किसानों के लिए नकदी फसल के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

हल्दी और रसायन विज्ञान

हल्दी में उपस्थित कर्क्यूमिन उसे विशेष बनाता है। यही रसायन हल्दी को पीला रंग और औषधीय गुण देता है। यह एक प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट है और वैज्ञानिक शोधों में इसकी उपयोगिता पर लगातार अध्ययन हो रहे हैं। रसायन विज्ञान की प्रयोगशालाओं में हल्दी का उपयोग प्राकृतिक संकेतक के रूप में भी किया जाता है। क्षारीय पदार्थों के संपर्क में आने पर इसका रंग बदल जाता है।

विश्व बाजार में हल्दी की बढ़ती मांग

आज अमेरिका, यूरोप और खाड़ी देशों में भारतीय हल्दी की मांग तेजी से बढ़ रही है।

मांग बढ़ने के कारण

प्राकृतिक उत्पादों की लोकप्रियता, आयुर्वेद और हर्बल चिकित्सा, जैविक हल्दी की बढ़ती मांग, स्वास्थ्य जागरूकता। यदि किसान प्रसंस्करण और पैकेजिंग पर ध्यान दें, तो वे अधिक लाभ कमा सकते हैं।

जैविक हल्दी : भविष्य की खेती

वर्तमान समय में जैविक खेती के प्रति लोगों की रुचि तेजी से बढ़ रही है। रसायनमुक्त और प्राकृतिक रूप से उगाई गई हल्दी की मांग देश और विदेश दोनों बाजारों में बढ़ती जा रही है। जैविक हल्दी में करक्यूमिन की गुणवत्ता बेहतर मानी जाती है तथा इसे स्वास्थ्य के लिए अधिक सुरक्षित समझा जाता है। यूरोप, अमेरिका और अन्य देशों में भारतीय जैविक हल्दी की मांग लगातार बढ़ रही है। इससे किसानों को निर्यात के नए अवसर भी प्राप्त हो रहे हैं।

नैनो कर्क्यूमिन

आज नैनो प्रौद्योगिकी (Nanotechnology) के क्षेत्र में हल्दी पर व्यापक शोध किए जा रहे हैं। हल्दी में पाया जाने वाला मुख्य रासायनिक यौगिक कर्क्यूमिन (Curcumin) अत्यंत लाभकारी माना जाता है, लेकिन सामान्य रूप में यह शरीर में आसानी से अवशोषित नहीं हो पाता। इसी समस्या को दूर करने के लिए वैज्ञानिक कर्क्यूमिन को अत्यंत सूक्ष्म नैनोकणों (Nanoparticles) में परिवर्तित कर रहे हैं, जिसे नैनो कर्क्यूमिन (Nano Curcumin) कहा जाता है। नैनो आकार में परिवर्तित होने पर इसकी औषधीय क्षमता बढ़ जाती है और यह शरीर की कोशिकाओं तक अधिक प्रभावी ढंग से पहुँच पाता है। वैज्ञानिक शोधों के अनुसार नैनो कर्क्यूमिन कैंसर, सूजन, मधुमेह, त्वचा रोग तथा संक्रमण संबंधी उपचारों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसे "Targeted Drug Delivery System" के रूप में भी देखा जा रहा है, जिसमें दवा सीधे प्रभावित अंगों तक पहुँचाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त नैनो हल्दी आधारित एंटीबैक्टीरियल क्रीम, घाव भरने वाले पदार्थ और त्वचा सुरक्षा उत्पाद भी विकसित किए जा रहे हैं।

केवल चिकित्सा ही नहीं, बल्कि खाद्य विज्ञान और कृषि क्षेत्र में भी नैनो हल्दी का महत्व तेजी से बढ़ रहा है। वैज्ञानिक हल्दी आधारित नैनोकणों का उपयोग खाद्य पैकेजिंग सामग्री में कर रहे हैं, जिससे भोजन लंबे समय तक सुरक्षित रह सके और बैक्टीरिया की वृद्धि कम हो। कृषि क्षेत्र में हल्दी आधारित नैनो उत्पाद जैविक कीटनाशक, रोग नियंत्रण तथा पौध संरक्षण में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। चूँकि हल्दी प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त होती है, इसलिए नैनो हल्दी आधारित तकनीकें पर्यावरण के लिए अपेक्षाकृत सुरक्षित मानी जाती हैं और हरित प्रौद्योगिकी (Green Technology) को बढ़ावा देती हैं। भविष्य में उच्च गुणवत्ता वाली और अधिक कर्क्यूमिन युक्त हल्दी की मांग बढ़ने से भारतीय किसानों को भी आर्थिक लाभ मिल सकता है। इस प्रकार खेतों में उगने वाली साधारण-सी हल्दी अब आधुनिक विज्ञान, चिकित्सा, खाद्य सुरक्षा और भविष्य की तकनीकों का महत्वपूर्ण हिस्सा बनती जा रही है। हल्दी भारतीय कृषि की वह सुनहरी पहचान है, जिसमें स्वास्थ्य, विज्ञान और किसानों की समृद्धि तीनों छिपे हुए हैं। यह फसल केवल खेतों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि रसोई, औषधि, सौंदर्य और अंतरराष्ट्रीय व्यापार तक अपनी महत्ता सिद्ध करती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि किसान आधुनिक तकनीकों, जैविक खेती और वैज्ञानिक प्रबंधन को अपनाकर हल्दी उत्पादन को और अधिक उन्नत बनाएँ। यदि सही दिशा में प्रयास किए जाएँ, तो हल्दी आने वाले समय में किसानों की आय बढ़ाने और भारतीय कृषि को नई पहचान दिलाने वाली प्रमुख फसल बन सकती है। वास्तव में, हल्दी की असली चमक केवल उसके रंग में नहीं, बल्कि उस मेहनत, विज्ञान और प्रकृति के समन्वय में छिपी है, जो इसे खेत से दुनिया के बाजार तक पहुंचाता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सब्जी की खेती में महिला उद्यमिता: टिकाऊ खेती के ज़रिए ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं को सशक्त बनाना

✍ **सृष्टि** (पीएच.डी. शोधार्थी) सब्जी विज्ञान विभाग, बागवानी महाविद्यालय, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन, हिमाचल प्रदेश–173230

✍ **डॉ. आंचल चौहान** (असिस्टेंट प्रोफेसर) सब्जी विज्ञान विभाग, बागवानी महाविद्यालय, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन, हिमाचल प्रदेश–173230

सारांश: खेती-बाड़ी में महिलाओं की अहम भूमिका होती है; वे सब्जियों के उत्पादन, कटाई के बाद के प्रबंधन और मार्केटिंग में बड़ा योगदान देती हैं। हाल के वर्षों में, सब्ज़ी की खेती महिलाओं के लिए एक अच्छे बिज़नेस के तौर पर उभरी है, जिससे उन्हें कमाई करने, रोज़गार पाने और आर्थिक रूप से मज़बूत होने के मौके मिल रहे हैं। ट्रेनिंग, लोन की सुविधा, स्वयं-सहायता समूहों (SHGs) और सरकारी सहायता कार्यक्रमों तक बेहतर पहुँच के कारण, महिलाएँ सब्ज़ी-आधारित बिज़नेस सफलतापूर्वक शुरू कर रही हैं। सब्ज़ी की खेती करने वाली महिला उद्यमी न केवल अपने परिवार की आजीविका को बेहतर बनाती हैं, बल्कि पोषण सुरक्षा और ग्रामीण विकास में भी योगदान देती हैं। यह लेख सब्ज़ी की खेती में महिला उद्यमिता के महत्व, अवसरों, चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं पर प्रकाश डालता है।

परिचय: भारत में ग्रामीण आजीविका के लिए खेती आज भी मुख्य आधार है और खेती-बाड़ी के काम में लगी कुल आबादी में महिलाओं की बड़ी हिस्सेदारी है। पारंपरिक रूप से, महिलाएं खेती से जुड़े कई कामों में शामिल रही हैं, जैसे बीज बोना, पौधे लगाना, खरपतवार निकालना, फसल काटना और कटाई के बाद के काम। हालाँकि, अब उनकी भूमिका सिर्फ़ मज़दूरी करने वालों से बदलकर उद्यमी (entrepreneur) बनने की ओर बढ़ रही है। सब्जी की खेती महिलाओं के लिए बेहतरीन अवसर देती है क्योंकि इसकी फसल कम समय में तैयार हो जाती है, प्रति यूनिट क्षेत्र से अच्छी कमाई होती है और बाज़ार में इसकी लगातार मांग बनी रहती है। बेहतर उत्पादन तकनीकों को अपनाकर और वैल्यू-एडेड (मूल्य-संवर्धित) गतिविधियों में शामिल होकर, महिलाएं सब्जी की खेती को एक मुनाफ़े वाले व्यवसाय में बदल सकती हैं।

सब्जी की खेती में महिला उद्यमी: महिला उद्यमी सब्जी की वैल्यू चेन के कई हिस्सों में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं, जिनमें शामिल हैं-

1. **सब्जी उत्पादन-** महिलाएं टमाटर, बैंगन, मिर्च, भिंडी, पत्तागोभी, फूलगोभी और कद्दू-वर्गीय (cucurbits) जैसी कई तरह की सब्जियां उगाती हैं। छोटे स्तर पर सब्जी की खेती उन्हें उपलब्ध ज़मीन का सही इस्तेमाल करते हुए नियमित आय कमाने में मदद करती है।

2. **नर्सरी तैयार करना-**सब्जी की नर्सरी तैयार करना महिलाओं हेतु एक फायदेमंद काम बन गया है। स्वस्थ पौधे (सीडलिंग) तैयार करके किसानों को बेचना उन्हें अतिरिक्त आय देता है और अच्छी गुणवत्ता वाली फसल उगाने में मदद करता है।

3. **संरक्षित खेती (Protected Cultivation)-** कई महिला उद्यमी साल भर अच्छी गुणवत्ता वाली सब्जियां उगाने के लिए पॉलीहाउस और शेड-नेट खेती अपना रही हैं, जिससे पैदावार बढ़ती है और बाज़ार में बेहतर दाम मिलते हैं।

4. **वैल्यू एडिशन और प्रोसेसिंग-** सब्जियों से अचार, सॉस, सूखे उत्पाद और पकाने के लिए तैयार (ready-to-cook) आइटम बनाना महिलाओं को उत्पाद की कीमत बढ़ाने, फसल कटाई के बाद होने वाले नुकसान को कम करने और नए बाज़ारों तक पहुँचने में मदद करता है।

5. **सीधी मार्केटिंग (Direct Marketing)-** महिला किसान स्थानीय बाज़ारों, किसान बाज़ारों, सहकारी समितियों और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म के ज़रिए तेज़ी से सब्जियां बेच रही हैं, जिससे उन्हें बेहतर दाम मिलते हैं और मुनाफ़ा बढ़ता है।

सब्जी की खेती में महिला उद्यमिता के फ़ायदे

★ इससे घर की आय और आर्थिक आज़ादी बढ़ती है।
★ ग्रामीण इलाकों में रोज़गार के मौके पैदा होते हैं।
★ सब्जियों की खपत बढ़ने से पोषण सुरक्षा बेहतर होती है।
★ छोटी ज़मीन के कुशल इस्तेमाल को बढ़ावा मिलता है।
★ फ़ैसले लेने और लीडरशिप की भूमिकाओं में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा मिलता है।
★ ग्रामीण आर्थिक विकास और ग़रीबी कम करने में योगदान मिलता है।

महिला उद्यमियों के सामने आने वाली चुनौतियाँ

बढ़ती भागीदारी के बावजूद, महिलाओं को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है-

★ ज़मीन के मालिकाना हक और क्रेडिट सुविधाओं तक सीमित पहुँच।
★ तकनीकी जानकारी और ट्रेनिंग के मौकों की कमी।
★ आधुनिक टेक्नोलॉजी और अच्छी क्वालिटी के इनपुट तक अपर्याप्त पहुँच।
★ मार्केटिंग की दिक्कतें और कीमतों में उतार-चढ़ाव।
★ कुछ ग्रामीण समुदायों में सीमित आवाजाही और सामाजिक रुकावटें।

पॉलिसी सपोर्ट, ट्रेनिंग, फाइनेंशियल समावेशन और मार्केट लिंकेज के ज़रिए इन चुनौतियों का समाधान करके महिलाओं की उद्यमिता में सफलता को काफ़ी बढ़ाया जा सकता है।

सरकारी सहायता और अवसर-खेती-बाड़ी के क्षेत्र में महिला उद्यमियों के लिए कई सरकारी योजनाएं और कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, जिनमें शामिल हैं- ★ स्व-सहायता समूह (SHGs) ★ राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) ★ PM-FME (सूक्ष्म खाद्य प्रसंस्करण उद्यमों के औपचारिकीकरण की योजना) ★ राष्ट्रीय बागवानी मिशन (NHM) ★ कृषि कौशल विकास और उद्यमिता कार्यक्रम

ये पहल महिलाओं के नेतृत्व वाले कृषि उद्यमों को बढ़ावा देने के लिए प्रशिक्षण, आर्थिक मदद और बाज़ार से जुड़ी सहायता प्रदान करती हैं।

निष्कर्ष: सब्जी की खेती में महिलाओं की उद्यमिता आर्थिक सशक्तिकरण, आजीविका में सुधार और ग्रामीण इलाकों के टिकाऊ विकास के लिए एक सशक्त ज़रिया है। सब्जी उत्पादन, नर्सरी मैनेजमेंट, वैल्यू एडिशन और मार्केटिंग में सक्रिय रूप से शामिल होकर, महिलाएं खेती को एक मुनाफ़े वाले कारोबार में बदल रही हैं। संसाधनों, ट्रेनिंग, टेक्नोलॉजी और बाज़ारों तक पहुंच को बेहतर बनाने से खेती के क्षेत्र में उनका योगदान और बढ़ेगा। सब्जी की खेती में महिला उद्यमियों को सशक्त बनाना न सिर्फ़ जेंडर इक्वालिटी के लिए ज़रूरी है, बल्कि खाद्य सुरक्षा, पोषण और ग्रामीण इलाकों के समावेशी विकास के लिए भी अहम है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

✍आकर्ष चौधरी, मनोज कुमार सिंह
✍आकांक्षा राय और वीरेंद्र पाल

भिंडी के उत्पादन में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका

सारांश-भिंडी भारत की प्रमुख हरी सब्जियों में से एक है, जो अपने उच्च पोषण मूल्य एवं आर्थिक महत्व के कारण किसानों के बीच अत्यंत लोकप्रिय है। उच्च गुणवत्ता एवं अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए संतुलित पोषण प्रबंधन आवश्यक है। सामान्यतः किसान नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश जैसे प्रमुख पोषक तत्वों पर अधिक ध्यान देते हैं, जबकि सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपेक्षा कर देते हैं। जिंक (Zn), बोरॉन (B), आयरन (Fe), मैंगनीज (Mn), कॉपर (Cu) तथा मॉलिब्डेनम (Mo) जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व पौधों की शारीरिक एवं जैव-रासायनिक क्रियाओं के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। इनकी कमी से पौधों की वृद्धि, पुष्पन, फलन, उपज तथा गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उचित मात्रा में इन तत्वों का प्रयोग पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करता है, फूल एवं फलों की संख्या बढ़ाता है तथा रोग एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति सहनशीलता में वृद्धि करता है।

परिचय- भिंडी (ऐबेलमॉस्कस एस्कुलेंटस (एल.) मोएंच) भारत की एक महत्वपूर्ण सब्जी फसल है। इसकी खेती वर्षभर विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में की जाती है। यह विटामिन A, विटामिन C, फोलिक अम्ल, कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा आहार रेशा (Dietary Fibre) का उत्कृष्ट स्रोत है। पिछले कुछ वर्षों में निरंतर खेती एवं असंतुलित उर्वरक उपयोग के कारण अधिकांश कृषि भूमि में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी देखी जा रही है। परिणामस्वरूप भिंडी की उत्पादकता एवं गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। इसलिए आधुनिक कृषि में सूक्ष्म पोषक तत्वों का वैज्ञानिक प्रबंधन अत्यंत आवश्यक हो गया है।

सूक्ष्म पोषक तत्व क्या हैं?: सूक्ष्म पोषक तत्व वे आवश्यक पोषक तत्व हैं जिनकी पौधों को अत्यंत कम मात्रा में आवश्यकता होती है, किंतु उनकी अनुपस्थिति में पौधों की सामान्य वृद्धि, विकास तथा विभिन्न जैव-रासायनिक क्रियाएँ प्रभावित हो जाती हैं। यद्यपि इनकी आवश्यकता प्रमुख पोषक तत्वों की तुलना में बहुत कम होती है, फिर भी ये एंजाइमों की सक्रियता, प्रकाश संश्लेषण, प्रोटीन संश्लेषण, हार्मोन निर्माण, परागण, फल विकास तथा पोषक तत्वों के अवशोषण जैसी महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भिंडी की फसल में जिंक (Zn), बोरॉन (B), आयरन (स्नद्), मैंगनीज (Mn), कॉपर (Cu), मॉलिब्डेनम (स्श्र), क्लोरीन (Cl) तथा निकल (Ni) प्रमुख सूक्ष्म पोषक तत्व हैं। इन तत्वों की संतुलित उपलब्धता पौधों की स्वस्थ वृद्धि, अधिक पुष्पन एवं फलन, उच्च गुणवत्ता तथा बेहतर उपज सुनिश्चित करती है, जबकि इनकी कमी से पौधों की वृद्धि मंद पड़ जाती है और उत्पादन एवं गुणवत्ता दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

भिंडी में प्रमुख सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका

1. **जिंक (Zn):** जिंक भिंडी की वृद्धि एवं विकास के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण सूक्ष्म पोषक तत्व है। यह अनेक एंजाइमों की सक्रियता, ऑक्सिन (Auxin) जैसे वृद्धि हार्मोन के निर्माण तथा प्रोटीन संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिंक की पर्याप्त उपलब्धता से पौधों की ऊँचाई, शाखाओं की संख्या तथा पत्तियों का आकार और हरितिमा बढ़ती है। इसके साथ ही पौधों में शीघ्र पुष्पन होता है, फल अधिक संख्या में बनते हैं तथा उपज और गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। जिंक की कमी होने पर नई पत्तियाँ छोटी एवं संकरी रह जाती हैं, पत्तियों में पीली धारियाँ (इंटरवेनियल क्लोरोसिस) दिखाई देती हैं, पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा फलन में कमी आ जाती है।

2. **बोरॉन (B)**- बोरॉन पौधों में कोशिका विभाजन, कोशिका भित्ति के निर्माण, परागण, पराग नलिका की वृद्धि तथा फल बनने की प्रक्रिया के लिए अत्यंत आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व है। भिंडी में इसकी पर्याप्त उपलब्धता से फूलों की संख्या बढ़ती है, फल-स्थापन (Fruit set) का प्रतिशत अधिक होता है तथा फल सीधे, कोमल, आकर्षक एवं उच्च गुणवत्ता वाले बनते हैं। इसके परिणामस्वरूप कुल उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। बोरॉन की कमी होने पर फूल एवं छोटी फलियाँ झड़ने लगती हैं, फल टेढ़े-मेढ़े एवं विकृत बनते हैं, उनमें दरारें पड़ सकती हैं तथा पौधों की शीर्ष वृद्धि प्रभावित हो जाती है।

3. **आयरन (Fe):** आयरन (लौह) पौधों में क्लोरोफिल के निर्माण में अप्रत्यक्ष रूप से भाग लेने वाला महत्वपूर्ण सूक्ष्म पोषक तत्व है। यह प्रकाश संश्लेषण, श्वसन तथा विभिन्न एंजाइमों की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक होता है। भिंडी में आयरन की पर्याप्त मात्रा से पत्तियाँ गहरे हरे रंग की रहती हैं, प्रकाश संश्लेषण की क्षमता बढ़ती है तथा पौधों की वृद्धि एवं विकास में तेजी आती है, जिससे उपज और गुणवत्ता दोनों में सुधार होता है। आयरन की कमी होने पर नई पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं जबकि उनकी शिराएँ हरी बनी रहती हैं। इस स्थिति को इंटरवेनियल क्लोरोसिस कहा जाता है। लंबे समय तक कमी रहने पर पौधे कमजोर हो जाते हैं तथा उनकी वृद्धि एवं उत्पादन प्रभावित होता है।

4. **मैंगनीज (Mn):** मैंगनीज पौधों में प्रकाश संश्लेषण, क्लोरोफिल निर्माण, नाइट्रोजन उपापचय तथा अनेक एंजाइमों की सक्रियता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भिंडी में इसकी पर्याप्त उपलब्धता से पौधों की वृद्धि अच्छी होती है, पत्तियाँ स्वस्थ एवं हरी रहती हैं तथा रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। मैंगनीज पौधों की विभिन्न चयापचय प्रक्रियाओं को सुचारु रूप से संचालित करने में भी सहायक होता है। इसकी कमी होने पर पत्तियों पर हल्के पीले अथवा भूरे धब्बे दिखाई देने लगते हैं, क्लोरोफिल निर्माण प्रभावित होता है तथा पौधों की वृद्धि धीमी पड़ जाती है।

5. **कॉपर (Cu):** कॉपर एक आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व है जो एंजाइमों की सक्रियता, श्वसन क्रिया, लिग्निन निर्माण तथा पौधों की ऊतकीय मजबूती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के साथ-साथ उनकी समग्र वृद्धि एवं विकास में भी योगदान देता है। भिंडी में कॉपर की पर्याप्त उपलब्धता से पौधे अधिक मजबूत बनते हैं, विभिन्न रोगों का प्रकोप कम होता है तथा उच्च गुणवत्ता वाले फल प्राप्त होते हैं। इसकी कमी होने पर नई पत्तियाँ मुरझाई हुई दिखाई देती हैं, पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा तनों की मजबूती कम हो जाती है।

6. **मॉलिब्डेनम (स्श्र):** मॉलिब्डेनम पौधों में नाइट्रोजन के अवशोषण एवं उपयोग, नाइट्रेट को अमोनिया में परिवर्तित करने वाली एंजाइम क्रियाओं तथा प्रोटीन संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भिंडी की फसल में इसकी पर्याप्त उपलब्धता से नाइट्रोजन का उपयोग अधिक दक्षता से होता है, पौधों की वृद्धि तेज होती है तथा उपज एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है। मॉलिब्डेनम की कमी होने पर नाइट्रोजन का समुचित उपयोग नहीं हो पाता, जिससे पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं, पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है तथा उत्पादन में कमी आती है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग कैसे करें?

1. **मृदा परीक्षण के आधार पर**- भिंडी की फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग सदैव मृदा परीक्षण (Soil Testing) की रिपोर्ट के आधार पर करना चाहिए। मृदा परीक्षण से यह ज्ञात हो जाता है कि मिट्टी में कौन-से पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं तथा किन तत्वों की कमी है। इसके आधार पर आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों की उचित मात्रा का चयन किया जाता है, जिससे पौधों को संतुलित पोषण प्राप्त होता है। मृदा परीक्षण आधारित पोषण प्रबंधन से उर्वरकों का अनावश्यक उपयोग कम होता है, उत्पादन लागत घटती है तथा भिंडी की उपज एवं गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। साथ ही, यह मृदा की उर्वरता एवं स्वास्थ्य को दीर्घकाल तक बनाए रखने में भी सहायक सिद्ध होता है।

2. **भूमि में प्रयोग**-भिंडी की फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए जिंक सल्फेट (ZnSO4), बोरेक्स तथा फेरस सल्फेट (FeSO4) का प्रयोग मृदा में किया जाता है। इन उर्वरकों को अंतिम जुताई के समय खेत में समान रूप से बिखेरकर अच्छी तरह मिट्टी में मिला देना चाहिए, जिससे पौधों की जड़ों को प्रारंभिक अवस्था से ही आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध हो सकें। भूमि में इनका प्रयोग मृदा परीक्षण की अनुशंसा के अनुसार करने से पोषक तत्वों की कमी दूर होती है तथा पौधों की वृद्धि, पुष्पन और फलन में सुधार होता है। साथ ही, इससे भिंडी की उपज एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है और मृदा की उर्वरता भी लंबे समय तक बनी रहती है।

3. **पर्णीय छिड़काव (Foliar Spray):** भिंडी की फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए पर्णीय छिड़काव (Foliar Spray) एक प्रभावी एवं त्वरित विधि है। इस विधि में पोषक तत्वों का घोल सीधे पत्तियों पर छिड़का जाता है, जिससे वे शीघ्रता से पौधों द्वारा अवशोषित होकर अपनी कमी को पूरा करते हैं। विशेष रूप से क्षारीय एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी वाली मिट्टियों में यह विधि अधिक लाभकारी सिद्ध होती है। सामान्यतः जिंक सल्फेट का 0.5%, बोरिक अम्ल का 0.1-0.2% तथा फेरस सल्फेट का 0.5% घोल तैयार कर पौधों पर छिड़काव किया जाता है। भिंडी की फसल में प्रथम छिड़काव बुवाई के लगभग 30-35 दिन बाद तथा दूसरा छिड़काव 45-50 दिन की अवस्था में करने से पौधों की वृद्धि, पुष्पन, फलन एवं उपज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों के उपयोग से होने वाले लाभ- भिंडी की फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित एवं वैज्ञानिक उपयोग पौधों की समग्र वृद्धि एवं विकास के लिए अत्यंत लाभकारी होता है। इनके उचित प्रयोग से पौधों की वृद्धि तीव्र होती है, शाखाओं एवं पत्तियों की संख्या बढ़ती है तथा प्रकाश संश्लेषण की क्षमता में सुधार होता है। इसके परिणामस्वरूप अधिक पुष्पन एवं फलन होता है, फलों का आकार, रंग, कोमलता एवं गुणवत्ता बेहतर होती है तथा कुल उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्व पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं पोषक तत्व उपयोग दक्षता को बढ़ाते हैं, जिससे फसल स्वस्थ रहती है और उत्पादन लागत की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त होता है। गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के कारण बाजार में बेहतर मूल्य मिलता है, जिससे किसानों की आय एवं लाभप्रदता में भी वृद्धि होती है।

सावधानियां-सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग करते समय कुछ आवश्यक सावधानियों का पालन करना चाहिए, जिससे उनका अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके और फसल पर किसी प्रकार का प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। इनका उपयोग सदैव मृदा परीक्षण की अनुशंसा के अनुसार करना चाहिए तथा अनुशंसित मात्रा से अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि अधिक मात्रा पौधों के लिए हानिकारक हो सकती है। पर्णीय छिड़काव प्रातःकाल या सायंकाल के समय करना अधिक उपयुक्त रहता है, जिससे घोल का अवशोषण बेहतर होता है और पत्तियों के झुलसने की संभावना कम रहती है। वर्षा की संभावना होने पर छिड़काव नहीं करना चाहिए, क्योंकि वर्षा से घोल धुल सकता है। साथ ही, विभिन्न उर्वरकों या रसायनों को एक साथ मिलाने से पहले उनकी संगतता (Compatibility) की जाँच अवश्य कर लेनी चाहिए, ताकि किसी प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रिया से फसल को नुकसान न पहुँचे।

निष्कर्ष- भिंडी की अधिक एवं गुणवत्तापूर्ण उपज प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित एवं वैज्ञानिक उपयोग अत्यंत आवश्यक है। जिंक, बोरॉन, आयरन, मैंगनीज, कॉपर तथा मॉलिब्डेनम जैसे तत्व पौधों की वृद्धि, पुष्पन, फलन एवं गुणवत्ता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। मृदा परीक्षण आधारित पोषण प्रबंधन तथा आवश्यकता अनुसार भूमि एवं पर्णीय छिड़काव अपनाकर किसान भिंडी की उत्पादकता, गुणवत्ता तथा लाभप्रदता में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। सतत एवं संतुलित पोषण प्रबंधन न केवल फसल की उत्पादकता बढ़ाता है, बल्कि मृदा स्वास्थ्य को भी दीर्घकाल तक बनाए रखने में सहायक होता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

हिमांशु यादव शोधार्थी, प्रसार शिक्षा विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश- 221005

डॉ. सर्वेश कुमार सह-प्राध्यापक, प्रसार शिक्षा विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश- 221005

ईशिका गौतम शोधार्थी, प्रसार शिक्षा विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश- 221005

अभिषेक कुमार शोधार्थी, प्रसार शिक्षा विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश- 221005

कृषि अपशिष्ट से अतिरिक्त आय: कचरे से कमाई का नया मॉडल

भूमिका- अक्टूबर-नवंबर की शामें, उत्तर भारत के खेतों से उठता गाढ़ा धुआँ आसमान को धुँधला कर देता है, और दिल्ली से लेकर लखनऊ तक साँस लेना दूभर हो जाता है। हर साल यह नज़ारा दोहराया जाता है, धान की कटाई के बाद खेत को जल्दी खाली करने के लिए किसान पराली में आग लगा देता है। पर इस आग में जो जल रहा है, वह सिर्फ़ 'कचरा' नहीं, वह पोषक तत्वों, ऊर्जा और आमदनी का एक पूरा भंडार है, जो हर साल राख होकर धुएँ में उड़ जाता है।

आँकड़े चौंकाने वाले हैं। नवीन एवं नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय (MNRE) के अनुसार भारत हर वर्ष लगभग 500 मिलियन टन (50 करोड़ टन) कृषि अपशिष्ट पैदा करता है। इसमें से लगभग 140 मिलियन टन अधिशेष (surplus) रहता है, और करीब 92 मिलियन टन हर साल खेतों में ही जला दिया जाता है। यानी जिसे हम 'कचरा' समझकर आग के हवाले करते हैं, वही अगर सही ढंग से इस्तेमाल हो, तो किसान की जेब में अतिरिक्त पैसा और देश की अर्थव्यवस्था में नई ऊर्जा भर सकता है। यह विषय हर किसान के लिए ज़रूरी है। एक ओर पराली जलाने से मिट्टी के मित्र-जीव मरते हैं, उर्वरता घटती है और वायु प्रदूषण से हमारे ही बच्चों के फेफड़े बीमार होते हैं; दूसरी ओर, यही अपशिष्ट खाद, ऊर्जा, चारा, मशरूम, कागज़, पैकेजिंग और जैव-ईंधन जैसे दर्जनों उत्पादों का कच्चा माल बन सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर भी यह विषय बेहद प्रासंगिक है, भारत आज 'चक्रीय अर्थव्यवस्था' (circular economy) और 'वेस्ट-टू-वेल्थ' (कचरे से कमाई) की दिशा में तेज़ी से बढ़ रहा है, जहाँ किसान केवल 'अन्नदाता' नहीं, बल्कि 'ऊर्जादाता' भी बन रहा है। यह आलेख इसी बदलाव की कहानी है, कैसे खेत का कचरा कंचन बन सकता है।

सोचिए , जिस चीज़ को ठिकाने लगाने के लिए किसान पैसे और मेहनत दोनों ख़र्च करता है, वही अगर उसकी आमदनी का ज़रिया बन जाए, तो कितना बड़ा बदलाव आएगा! यही इस लेख का मूल विचार है : कृषि अपशिष्ट को 'समस्या' के चश्मे से नहीं, 'अवसर' के चश्मे से देखना।

क्या आप जानते हैं? भारत में हर साल जलाई जाने वाली पराली से लगभग 15 करोड़ टन कार्बन डाइऑक्साइड और भारी मात्रा में सूक्ष्म कण (PM 2.5) निकलते हैं। यही अपशिष्ट अगर ऊर्जा में बदले, तो अनुमानतः 18,000 मेगावाट से अधिक बिजली पैदा करने की क्षमता रखता है।

सूचक	मात्रा / स्थिति	स्रोत
भारत में कुल वार्षिक फसल अवशेष	9500 मिलियन टन	MNRE
अधिशेष (surplus) अवशेष	9140 मिलियन टन	NPMCR
हर साल खेतों में जलाया जाने वाला हिस्सा	992 मिलियन टन	NPMCR
सर्वाधिक अवशेष वाले राज्य	उ. प्र. (960 Mt), पंजाब (951 Mt), महाराष्ट्र (946 Mt)	NPMCR
अनाज फसलों का हिस्सा	970त्न (धान अकेले 934%)	शोध अध्ययन
ऊर्जा उत्पादन क्षमता	18,000 मेगावाट से अधिक	MNRE

सारणी 1 : भारत में कृषि अपशिष्ट की मात्रा और स्थिति (अनुमानित)।

मुख्य विषय : कृषि अपशिष्ट को समझें: इस पूरे विचार की जड़ में एक बड़ा सिद्धांत है, 'चक्रीय अर्थव्यवस्था' (circular economy)। परंपरागत 'रेखीय' सोच कहती है : बनाओ, इस्तेमाल करो, फेंक दो। इसके विपरीत चक्रीय सोच कहती है : हर 'अपशिष्ट' किसी दूसरी प्रक्रिया का 'कच्चा माल' है। प्रकृति ख़ुद इसी नियम पर चलती है, सूखा पत्ता सड़कर खाद बनता है, और वही खाद नए पौधे को जन्म देती है। कृषि अपशिष्ट से आय का मॉडल इसी प्राकृतिक चक्र को खेती में लौटाने की कोशिश है, जहाँ कुछ भी बर्बाद नहीं होता, सब कुछ लौटकर मूल्य बनता है।

परिभाषा : कृषि अपशिष्ट है क्या?: सरल शब्दों में, फसल की कटाई और प्रसंस्करण के बाद खेत या प्रोसेसिंग इकाई में जो हिस्सा बच जाता है, उसे कृषि अपशिष्ट या 'फसल अवशेष' (crop residue) कहते हैं। इसमें दो तरह के अवशेष आते हैं, पहला, खेत में बचने वाले अवशेष जैसे धान-गेहूँ की पराली, डंठल, भूसा, पत्तियाँ और जड़ें; और दूसरा, प्रसंस्करण के बाद बचने वाले अवशेष जैसे धान की भूसी (चोकर), गन्ने की खोई (बगास), दलहन के छिलके, तिलहन की खली और फलों-सब्ज़ियों के छिलके। इसके अलावा पशुधन से मिलने वाला गोबर और मुर्गी-खाद भी इसी 'जैविक अपशिष्ट' परिवार का हिस्सा है।

पृष्ठभूमि : किसान पराली जलाते हैं?: यह समझना ज़रूरी है कि किसान शौक़ से आग नहीं लगाता, यह मजबूरी है। इसके पीछे कुछ ठोस कारण हैं। धान की कटाई और अगली फसल (गेहूँ/आलू) की बुआई के बीच बहुत कम समय (लगभग 15-20 दिन) बचता है। मशीन (कम्बाइन हार्वेस्टर) से कटाई करने पर खेत में ऊँची-ऊँची पराली खड़ी रह जाती है, जिसे हटाना मुश्किल होता है। मज़दूरों की कमी और बढ़ती मज़दूरी, तथा पराली को इकट्ठा करने-ढोने की लागत, किसान के लिए बोझ बन जाती है। सबसे बड़ी बात, अब तक पराली का कोई सुनिश्चित बाज़ार या ख़रीददार नहीं था। इन्हीं कारणों से किसान इसे 'सबसे सस्ता और तेज़' उपाय समझकर जला देता है।

दिलचस्प बात यह है कि पराली जलाना कोई बहुत पुरानी परंपरा नहीं है। जब तक कटाई हाथ से या दराँती से होती थी, तब पराली को नीचे से काटकर पशुओं के चारे, छप्पर और खाद के काम में लाया जाता था, यानी 'कचरा' कहलाने वाली यह चीज़ पहले पूरी तरह इस्तेमाल होती थी। हरित क्रांति के बाद जब कम्बाइन हार्वेस्टर आए और धान-गेहूँ का सघन चक्र फैला, तब खेत में बचने वाली पराली की मात्रा अचानक बहुत बढ़ गई और उसे ठिकाने लगाने का सबसे आसान रास्ता 'आग' बन गया। इसलिए असली समाधान भी वहीं छिपा है, पराली को दोबारा 'उपयोगी संसाधन' बनाना, जैसा वह पहले था।

वैज्ञानिक व्याख्या : अपशिष्ट में छिपा 'ख़ज़ाना': विज्ञान की दृष्टि से देखें तो फसल अवशेष केवल सूखा कचरा नहीं, बल्कि कार्बन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम और सल्फर जैसे पोषक तत्वों तथा सेल्युलोज़-लिग्निन से भरपूर जैव-द्रव्यमान (biomass) है। जब हम एक टन पराली जलाते हैं, तो उसके साथ कई किलोग्राम पोषक तत्व और मिट्टी के लाखों उपयोगी सूक्ष्मजीव भी नष्ट हो जाते हैं। इसके विपरीत, यदि इसी पराली को मिट्टी में मिला दिया जाए या खाद बना दिया जाए, तो यह मृदा में जैविक कार्बन बढ़ाती है, नमी रोकती है और उर्वरता सुधारती है। और यदि इसे ऊर्जा में बदला जाए, तो इसकी ऊष्मीय क्षमता (calorific value) इसे कोयले का एक स्वच्छ विकल्प बना देती है। यही कारण है कि वैज्ञानिक इसे 'गलत जगह पड़ा संसाधन' कहते हैं, कचरा नहीं, कच्चा माल। इसे एक सीधे हिसाब से समझें। धान की पराली में लगभग 0.6% नाइट्रोजन, 0.1% फॉस्फोरस और 1.5% तक पोटैशियम होता है, साथ ही भरपूर सिलिका और कार्बनिक पदार्थ। इसका मतलब है कि हर टन पराली अपने भीतर कई किलो पोषक तत्व लेकर चलती है। जब यह जलती है, तो नाइट्रोजन और सल्फर का बड़ा हिस्सा गैस बनकर उड़ जाता है और मिट्टी की ऊपरी सतह के लाभकारी जीवाणु व केंचुए झुलस जाते हैं। इसीलिए बार-बार पराली जलाने वाले खेतों की उर्वरता धीरे-धीरे घटने लगती है, यानी किसान दोहरा नुक़सान उठाता है : आमदनी का भी और मिट्टी का भी।

भारत में वर्तमान स्थिति: भारत दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी कृषि-अर्थव्यवस्था है, इसलिए यहाँ अपशिष्ट भी बड़ी मात्रा में बनता है। अनाज वाली फसलें (धान, गेहूँ, मक्का, बाजरा) सबसे अधिक अवशेष देती हैं – कुल का लगभग 70 प्रतिशत, जिसमें अकेले धान का हिस्सा करीब 34 प्रतिशत है। राज्यवार

देखें तो सबसे अधिक अवशेष उत्तर प्रदेश, फिर पंजाब और महाराष्ट्र में बनता है। समस्या सबसे गंभीर सिंचित पंजाब-हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के धान-गेहूँ चक्र वाले इलाकों में है। एक और तरीके से देखें तो भारत लगभग 350 मिलियन टन कृषि अपशिष्ट (व्यापक अर्थ में, फसल अवशेष, पशु-अपशिष्ट व फसलोत्तर हानि सहित) पैदा करता है। वैश्विक स्तर पर हर साल लगभग 1.3 अरब टन खाद्य पदार्थ बर्बाद हो जाता है (FAO), और फलों-सब्ज़ियों का 20-30 प्रतिशत हिस्सा तो फसलोत्तर संभाल में ही नष्ट हो जाता है। इतना बड़ा 'कचरा' असल में इतनी ही बड़ी संभावना भी है।

किसानों के लिए लाभ : कचरे से कमाई के रास्ते- कृषि अपशिष्ट का सही प्रबंधन किसान को दोहरा फ़ायदा देता है – एक ओर पराली जलाने की समस्या से मुक्ति, दूसरी ओर आमदनी का नया स्रोत। प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं:

* **अतिरिक्त नक़द आय :** पराली को जलाने के बजाय बेचकर या उससे उत्पाद बनाकर किसान प्रति एकड़ अच्छी-ख़ासी अतिरिक्त कमाई कर सकता है – भूसे/पराली की गाँठ (bale) बनाकर बायोमास उद्योग को बेचना इसका सीधा उदाहरण है।

* **मृदा स्वास्थ्य में सुधार** : अवशेष को खेत में मिलाने या कम्पोस्ट बनाकर डालने से जैविक कार्बन, नमी-धारण क्षमता और उर्वरता बढ़ती है, जिससे अगली फसल में रासायनिक खाद की ज़रूरत घटती है।

* **इनपुट लागत में कमी :** अपने ही खेत की पराली से वर्मीकम्पोस्ट, बायोचार या पशु-चारा बनाकर किसान बाहरी खाद और चारे पर होने वाला ख़र्च बचा सकता है।

* **रोज़गार व उद्यमिता :** पराली इकट्ठा करने, गाँठ बनाने, ढुलाई, कम्पोस्ट व मशरूम उत्पादन में गाँव के युवाओं और महिला समूहों के लिए रोज़गार के अवसर बनते हैं।

* **स्वच्छ पर्यावरण व स्वास्थ्य** : पराली न जलाने से वायु प्रदूषण घटता है, जिससे साँस व आँखों की बीमारियाँ कम होती हैं, यह अप्रत्यक्ष पर बड़ा लाभ है।

* **ऊर्जा सुरक्षा में योगदान** : अपशिष्ट से बनी बिजली, बायोगैस और जैव-ईंधन देश की ऊर्जा ज़रूरत पूरी करते हैं और आयात-निर्भरता घटाते हैं।

* **कार्बन क्रेडिट की संभावना** : पराली न जलाकर मीथेन/CO2 उत्सर्जन घटाने पर आगे चलकर किसान 'कार्बन क्रेडिट' से भी अतिरिक्त आय कमा सकते हैं।

अपशिष्ट से उत्पाद : एक व्यावहारिक नक्शा

कृषि अपशिष्ट	बनने वाला उत्पाद	आय का ज़रिया
धान/गेहूँ की पराली	गाँठ (bale), पेलेट, ब्रिकेट	बायोमास पावर, ष्क्न संयंत्र, उद्योग
पराली + गोबर	वर्मीकम्पोस्ट, जैविक खाद	खाद बिक्री + अपने खेत में उपयोग
धान की पराली	मशरूम की खेती का बेड	मशरूम बिक्री (उच्च मूल्य)
पराली/भूसी	बायोचार	मृदा-सुधारक व कार्बन भंडारण
धान/गन्ना अवशेष	कागज़, पल्प, पैकेजिंग, दोना-पत्तल	इको-फ्रेंडली उत्पाद बाज़ार
गन्ने की खोई, भूसी	जैव-ईंधन, इथेनॉल (2%)	तेल कंपनियों को बिक्री
गोबर + फार्म अपशिष्ट	बायोगैस/बायो-CNG, स्लरी खाद	GOBARdhan/SATAT के तहत आय

सारणी 2 : कृषि अपशिष्ट से बनने वाले प्रमुख मूल्य-वर्धित उत्पाद और आय के स्रोत।

रोचक तथ्य: एक एकड़ खेत से लगभग 4-5 टन तक अवशेष निकलता है। कुछ मॉडलों में किसानों को इसी अवशेष के बदले प्रति टन भुगतान मिलता है, जिससे उन्हें हर महीने अतिरिक्त आय होती है। यानी "जो कल तक जलाना पड़ता था, वही अब बिकने लगा है।"

इन लाभों को जोड़कर देखें तो एक बड़ी तस्वीर उभरती है : कृषि अपशिष्ट प्रबंधन सिर्फ़ 'प्रदूषण रोकने' का उपाय नहीं, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नई ताक़त देने वाला 'हरित उद्योग' है। यह किसान की आय के स्रोत बढ़ाता है, गाँव में रोज़गार पैदा करता है, मिट्टी और हवा दोनों को स्वस्थ रखता है और देश की ऊर्जा-आत्मनिर्भरता में योगदान देता है, एक तीर से कई निशाने।

वर्तमान चुनौतियाँ : राह की अड़चनें: अवसर बड़ा है, पर रास्ता आसान नहीं। कृषि अपशिष्ट से कमाई के इस मॉडल को ज़मीन पर उतारने में कई तरह की बाधाएँ आती हैं। इन्हें पाँच वर्गों में समझा जा सकता है।

1. **तकनीकी चुनौतियां:** पराली को इकट्ठा करने, गाँठ बनाने और ढोने के लिए विशेष मशीनों (बेलर, हैप्पी सीडर, स्ट्रॉ चॉपर) की ज़रूरत होती है, जो हर किसान के पास नहीं होतीं। धान की पराली में सिलिका की मात्रा अधिक होने से मशीनें जल्दी घिसती हैं और उसका प्रसंस्करण गेहूँ के भूसे की तुलना में लगभग 30% महँगा पड़ता है। भंडारण की उचित व्यवस्था न होने पर, मानसून की नमी से अवशेष की ऊष्मीय क्षमता 15-20% तक गिर सकती है। इसके अलावा, अवशेष मौसमी और बिखरा हुआ होता है, यानी साल के कुछ ही हफ़्तों में, बड़े इलाके में फैला हुआ; इसे समय पर इकट्ठा करना अपने आप में एक बड़ी तकनीकी चुनौती है।

2. **आर्थिक चुनौतियां:** छोटे और सीमांत किसान के लिए महँगी मशीनें ख़रीदना संभव नहीं। पराली इकट्ठा करने, बाँधने और मंडी/संयंत्र तक पहुँचाने की ढुलाई लागत अक्सर उसकी क़ीमत से ज़्यादा बैठ जाती है। कम्पोस्ट या बायोचार इकाई लगाने के लिए शुरुआती पूँजी और ऋण की ज़रूरत होती है, जो सबको आसानी से नहीं मिलती। पराली का प्रति टन दाम अक्सर कम होता है, इसलिए दूर के संयंत्र तक ढोने में जितना ख़र्च होता है, उतना मुनाफ़ा नहीं बचता, यही कारण है कि पास में ख़रीददार (लोकल संयंत्र या इकाई) का होना बेहद ज़रूरी है, वरना पूरा गणित उल्टा पड़ जाता है।

3. **सामाजिक चुनौतियां:** जागरूकता की कमी सबसे बड़ी सामाजिक बाधा है। बहुत-से किसान अब भी पराली को 'बेकार कचरा' ही मानते हैं और जलाने को सबसे आसान रास्ता समझते हैं। नई तकनीक अपनाने में हिचक, प्रशिक्षण का अभाव और 'दूसरे करेंगे तो मैं भी करूँगा' वाली सोच बदलाव को धीमा करती है। कई बार किसान को यह पता ही नहीं होता कि उसके ज़िले में कोई बायोमास या CBG संयंत्र है, जो उसकी पराली अच्छे दाम पर ख़रीद सकता है। यही 'सूचना का अंतर' (information gap) संभावनाओं को बाधा में बदल देता है।

4. **पर्यावरणीय चुनौतियां:** यह चुनौती और अवसर, दोनों है। एक ओर पराली जलाना ही सबसे बड़ी पर्यावरणीय समस्या है–वायु प्रदूषण, मृदा-जीवों की मृत्यु और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन। दूसरी ओर, अवशेष का गलत भंडारण या खुले में सड़ना भी मीथेन जैसी हानिकारक गैस छोड़ सकता है। इसलिए प्रबंधन वैज्ञानिक ढंग से होना ज़रूरी है।

5. **नीतिगत चुनौतियां:** योजनाएँ अनेक हैं, पर उनका लाभ हर किसान तक समान रूप से नहीं पहुँच पाता। मशीनों पर सब्सिडी की प्रक्रिया जटिल हो सकती है, बायोमास की आपूर्ति-शृंखला (supply chain) अभी पूरी तरह विकसित नहीं है, और बायोमास की गुणवत्ता व मूल्य-निर्धारण के मानक भी हर जगह एक-से नहीं। संयंत्रों को साल भर एक-सी आपूर्ति न मिल पाना एक बड़ी अड़चन है।

एक नज़र में : पाँच बड़ी बाधाएँ

मशीन व भंडारण की कमी- बेलर, चॉपर व सुरक्षित स्टोरेज का अभाव

ढुलाई व शुरुआती लागत- क़ीमत से ज़्यादा परिवहन ख़र्च

जागरूकता व प्रशिक्षण की कमी- 'कचरा' वाली पुरानी सोच

अविकसित आपूर्ति-शृंखला- संयंत्रों को अनियमित आपूर्ति

जटिल प्रक्रिया व मानक-सब्सिडी व गुणवत्ता मानकों की उलझन

भारत के सफल उदाहरण : बदलाव की मिसालें

देश भर में संस्थाएँ, विश्वविद्यालय, प्रगतिशील किसान और स्टार्टअप मिलकर यह साबित कर रहे हैं कि कृषि अपशिष्ट सचमुच 'कंचन' बन सकता है।

ICAR का 'पूसा डीकम्पोज़र' : पराली गलाने का चमत्कारी उपाय

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (ICAR–IARI), नई दिल्ली ने एक अनूठा समाधान विकसित किया है, 'पूसा डीकम्पोज़र'। यह कवक (fungi) की कई प्रजातियों का सूक्ष्मजीवी मिश्रण है, जो कैप्सूल, तरल और पाउडर रूपों में मिलता है। चार कैप्सूल (क़ीमत मात्र लगभग 20 रुपये) से बने घोल का छिड़काव कर पराली को खेत में ही लगभग 20-25 दिनों में गला दिया जाता है, जिससे वह जैविक खाद बन जाती है। इसका नारा है, "जलाना नहीं, गलाना है।"

यह तकनीक इतनी सस्ती और असरदार है कि इसे उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, मध्य प्रदेश, बिहार और उत्तराखंड सहित कई राज्यों में अपनाया गया है। ICAR-IARI ने इसे 12 कंपनियों को उत्पादन व विपणन के लिए लाइसेंस दिया है। छिड़काव के बाद मिट्टी में जैविक कार्बन और पोषक तत्व दोनों बढ़ते हैं, और खेत अगली फसल के लिए तैयार हो जाता है।

ICAR के अलावा देश का समर्पित संस्थान ICAR–केंद्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान और विभिन्न राज्य कृषि विश्वविद्यालय भी पराली-प्रबंधन की मशीनें और जैविक-खाद तकनीकें विकसित करते रहे हैं। 'इन-सीटू' (खेत में ही निपटान) के लिए हैप्पी सीडर, सुपर सीडर व मल्चर, और 'एक्स-सीटू' (खेत से बाहर उपयोग) के लिए बेलर व रेकर जैसी मशीनें अब आम होती जा रही हैं। इन दोनों रास्तों का मेल ही पराली की समस्या का स्थायी हल है।

कृषि विश्वविद्यालय व कृषि विज्ञान केंद्र (KVK)– पंजाब कृषि विश्वविद्यालय (PAU), लुधियाना जैसे संस्थान वर्षों से पराली प्रबंधन की मशीनों और तकनीकों पर काम कर रहे हैं। देश भर के KVK किसानों को हैप्पी सीडर से बुआई, बेलर से गाँठ बनाने, वर्मीकम्पोस्ट, बायोचार और पराली पर मशरूम उत्पादन का व्यावहारिक प्रशिक्षण देते हैं। ये केंद्र गाँव और तकनीक के बीच सेतु का काम करते हैं।

स्टार्टअप : कचरे से 'कारोबार'-युवा उद्यमी इस क्षेत्र में

नई जान फूँक रहे हैं। IIT दिल्ली में इनक्यूबेट हुआ स्टार्टअप 'क्रिया लैब्स' (Kriya Labs) धान की पराली को पल्प (लुगदी) में बदलकर उससे बायोडिग्रेडेबल कागज़, प्लेट और कप बनाता है – जो प्लास्टिक का सस्ता व पर्यावरण-हितैषी विकल्प हैं। इस मॉडल में किसान पराली जलाने के बजाय उसे बेचकर कमाई कर सकते हैं। इसी तरह पंजाब का 'फार्म2एनर्जी' (FarmwEnergy) किसानों के खेतों से पराली की गाँठें बनाकर उसे जैव-ईंधन और बायोपावर उद्योगों तक पहुँचाता है। ऐसे अनेक उद्यम अब पराली को 'बोझ' से 'व्यापार' में बदल रहे हैं।

दूसरी पीढ़ी का इथेनॉल : पानीपत का उदाहरण- पराली से जैव-ईंधन बनाने का सबसे बड़ा उदाहरण है हरियाणा के पानीपत में स्थापित दूसरी पीढ़ी (2%) का इथेनॉल संयंत्र, जो धान की पराली को गाड़ी चलाने लायक ईंधन (इथेनॉल) में बदलता है। इससे एक साथ तीन काम होते हैं – पराली जलाना रुकता है, प्रदूषण घटता है, और किसानों को अवशेष बेचकर अतिरिक्त आय मिलती है। यह 'वेस्ट-टू-वेल्थ' का जीवंत प्रमाण है।

प्रगतिशील किसानों की मिसाल- देश भर में हज़ारों प्रगतिशील किसान अब पराली को आमदनी में बदल रहे हैं। कहीं किसान समूह मिलकर बेलर से पराली की गाँठें बनाकर पास के बायोमास बिजलीघर या CBG संयंत्र को बेच रहे हैं, तो कहीं किसान अपने ही खेत की पराली और गोबर से वर्मीकम्पोस्ट बनाकर उसे 'जैविक खाद' के रूप में बाज़ार में बेच रहे हैं। पंजाब-हरियाणा में कई किसानों ने धान की पराली को मशरूम उत्पादन का बेड बनाकर कम जगह में अच्छा मुनाफ़ा कमाया है – मशरूम एक उच्च-मूल्य वाली उपज है, जिसकी माँग शहरों में लगातार बढ़ रही है। ये उदाहरण बताते हैं कि सही जानकारी और थोड़ी पहल से हर छोटा किसान भी 'कचरे' को 'कमाई' में बदल सकता है।

सफलता की झलक

पूसा डीकम्पोज़र (ICAR-IARI) : 920 दिन में पराली से खाद, लागत 9-20/पैकेट

क्रिया लैब्स : पराली से बायोडिग्रेडेबल कागज़, प्लेट व कप

फार्म2एनर्जी : पराली की गाँठ बनाकर बायोमास उद्योग को आपूर्ति

पानीपत 2% संयंत्र : धान की पराली से वाहन-ईंधन (इथेनॉल)

सरकारी योजनाएँ : कमाई के सहारे-सरकार ने कृषि अपशिष्ट को संसाधन में बदलने के लिए कई योजनाएँ और प्रोत्साहन शुरू किए हैं। इस विषय से जुड़ी प्रमुख योजनाओं का सार यहाँ दिया गया है।

फसल अवशेष प्रबंधन (CRM) योजना-यह इस विषय की सबसे केंद्रीय योजना है। इसके तहत पराली प्रबंधन की मशीनों, हैप्पी सीडर, स्ट्रॉ चॉपर, बेलर, रोटावेटर आदि, पर व्यक्तिगत किसानों को 50त्न तक और किसान समूहों/सहकारी समितियों (कस्टम हायरिंग सेंटर) को 80% तक अनुदान दिया जाता है, ताकि छोटे किसान भी किराए पर मशीन इस्तेमाल कर सकें। इसी योजना के ज़रिए पूसा डीकम्पोज़र का प्रसार भी किया जाता है।

SATAT योजना (संपीड़ित बायोगैस - CBG)

'सतत' (SATAT – किफ़ायती परिवहन के लिए टिकाऊ विकल्प) योजना अक्टूबर 2018 में शुरू हुई। इसका लक्ष्य है देश भर में 5,000 संपीड़ित बायोगैस (CBG) संयंत्र लगाना, जो कृषि अवशेष, गोबर व अन्य जैव-अपशिष्ट से CBG बनाएँगे। तेल कंपनियाँ (IOCL, BPCL, HPCL) यह गैस तय दाम पर ख़रीदती हैं और उद्यमियों के साथ दीर्घकालिक ख़रीद-समझौते करती हैं, जिससे किसानों को अवशेष का सुनिश्चित बाज़ार मिलता है। इन संयंत्रों से सालाना लगभग 1.5 करोड़ टन CBG उत्पादन की योजना है, जो देश की CNG खपत का बड़ा हिस्सा पूरा कर सकती है और प्राकृतिक गैस के आयात पर निर्भरता घटा सकती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि CBG संयंत्र से निकलने वाली 'स्लरी' भी बेकार नहीं जाती, वह उच्च गुणवत्ता की जैविक खाद बन जाती है, जिसे किसान अपने खेत में इस्तेमाल कर सकते हैं या बेच सकते हैं। यानी एक ही अपशिष्ट से दो कमाई : गैस भी और खाद भी।

गोबरधन (GOBARdhan) योजना: 2018 में स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) के तहत शुरू 'गोबरधन' (गैल्वनाइज़िंग ऑर्गेनिक बायो-एग्रो रिसोर्सेज़ धन) योजना गोबर और खेत के ठोस अपशिष्ट को बायो-CNG व जैविक खाद में बदलती है। इससे गाँव में स्वच्छता भी बढ़ती है और किसान को अतिरिक्त आय भी मिलती है।

इथेनॉल सम्मिश्रण कार्यक्रम व राष्ट्रीय जैव-ईंधन नीति- राष्ट्रीय जैव-ईंधन नीति 2018 के तहत भारत ने पेट्रोल में 20% इथेनॉल मिलाने (E20) का लक्ष्य वर्ष 2025 में ही निर्धारित समय से लगभग पाँच वर्ष पहले हासिल कर लिया। इससे किसानों को इथेनॉल की आपूर्ति से बड़ी आमदनी हुई और देश का विदेशी मुद्रा भी बचा। दूसरी पीढ़ी (2%) के इथेनॉल में तो सीधे पराली जैसे अवशेष का उपयोग होता है, जिसके लिए PM JI-VAN योजना प्रोत्साहन देती है।

अन्य सहायक योजनाएँ

योजना	इस विषय में उपयोगिता
फसल अवशेष प्रबंधन (CRM)	मशीनों पर 50–80% अनुदान; पूसा डीकम्पोज़र का प्रसार
SATAT (CBG)	अवशेष से बायोगैस; तेल कंपनियों द्वारा सुनिश्चित ख़रीद
GOBARdhan	गोबर व फार्म अपशिष्ट से बायो-ष्टहत्र व जैविक खाद
इथेनॉल सम्मिश्रण / PM JI-VAN	पराली से 2त्न इथेनॉल; किसानों को नया बाज़ार
वेस्ट-टू-एनर्जी कार्यक्रम (MNRE)	बायोगैस/बायोमास ऊर्जा परियोजनाओं को वित्तीय सहायता
राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन (NMSA)	अवशेष-आधारित जैविक खाद व टिकाऊ खेती को बढ़ावा
मृदा स्वास्थ्य कार्ड	अवशेष/खाद से सुधरी मिट्टी की सही जाँच व प्रबंधन

सारणी 3 : कृषि अपशिष्ट प्रबंधन से जुड़ी प्रमुख सरकारी योजनाएँ। (लाभ हेतु स्थानीय KVK/कृषि कार्यालय से संपर्क करें।)

विशेषज्ञों की सलाह : व्यावहारिक क़दम

कृषि वैज्ञानिकों और विस्तार विशेषज्ञों की राय को मिलाकर कुछ ठोस सुझाव इस प्रकार हैं:

* **पहले 'गलाना' अपनाएँ** : पूसा डीकम्पोज़र या हैप्पी सीडर से पराली को खेत में ही मिलाकर सस्ती जैविक खाद बनाएँ, इससे लागत घटती है और मिट्टी सुधरती है।

* **सामूहिक मशीन-उपयोग करें** : अकेले महँगी मशीन ख़रीदने के बजाय कस्टम हायरिंग सेंटर या किसान समूह के ज़रिए किराए पर लें (80त्न तक अनुदान उपलब्ध)।

* **मूल्य-संवर्धन की ओर बढ़ें :** सिर्फ़ पराली बेचने तक न रुकें, वर्मीकम्पोस्ट, मशरूम, बायोचार या पेलेट बनाकर कई गुना अधिक मूल्य कमाएँ।

* **बाज़ार से जुड़ें** : नज़दीकी CBG/बायोमास संयंत्र, इथेनॉल इकाई या स्टार्टअप से पहले ही ख़रीद-समझौता कर लें, ताकि अवशेष का सुनिश्चित दाम मिले।

* **FPO/SHG बनाएँ** : किसान उत्पादक संगठन या स्वयं सहायता समूह बनाकर सामूहिक रूप से अवशेष एकत्र व बेचें, सौदेबाज़ी की ताक़त बढ़ती है।

* **प्रशिक्षण लें** : KVK के पराली प्रबंधन, कम्पोस्टिंग व मशरूम उत्पादन के प्रशिक्षणों में भाग लें और नई तकनीक अपनाएँ।

* **सही भंडारण करें** : अवशेष को नमी से बचाकर सूखा रखें, ताकि उसकी गुणवत्ता व ऊष्मीय क्षमता बनी रहे और अच्छा दाम मिले।

भविष्य की संभावनाएँ : तकनीक और अवसर

आने वाला दशक कृषि अपशिष्ट को 'हरित सोना' बना सकता है, बशर्ते तकनीक और आपूर्ति-शृंखला मज़बूत हो। कुछ उभरती संभावनाएँ:

* **स्मार्ट आपूर्ति-शृंखला :** मोबाइल एप व डिजिटल मंच अवशेष बेचने वाले किसान और ख़रीदने वाले संयंत्र को सीधे जोड़ सकते हैं, जिससे बिचौलिए और ढुलाई-लागत घटेगी।

* **AI व सैटेलाइट निगरानी :** उपग्रह व AI से पराली जलाने की घटनाओं की निगरानी और अवशेष की उपलब्धता का सटीक आकलन संभव, जिससे संयंत्रों को नियमित आपूर्ति मिलेगी।

* **प्रिसिज़न व मशीनीकरण :** बेहतर बेलर, स्वचालित संग्रह मशीनें और IoT-आधारित भंडारण अवशेष-प्रबंधन को सस्ता व तेज़ बनाएँगे।

* **कार्बन बाज़ार :** पराली न जलाकर उत्सर्जन घटाने पर किसान भविष्य में कार्बन क्रेडिट बेचकर अतिरिक्त कमाई कर सकते हैं; भारत का कार्बन बाज़ार इस दिशा में आगे बढ़ रहा है।

* **जैव-रिफाइनरी व नए उत्पाद :** एक ही अवशेष से इथेनॉल, बायोगैस, बायोचार, कागज़ और विशेष रसायन बनाने वाली 'बायो-रिफाइनरियाँ' आय के कई द्वार खोलेंगी।

'जलवायु-स्मार्ट कृषि : अवशेष-आधारित जैविक खाद और मल्चिंग मिट्टी की नमी बचाकर सूखे व जलवायु-जोखिम से बचाव करेगी।

इन सबकी सफलता की एक ही कुंजी है — किसान, संस्था, उद्योग और सरकार के बीच मज़बूत तालमेल। यदि पराली को समय पर, अच्छे दाम पर ख़रीदने का भरोसेमंद तंत्र गाँव-गाँव तक पहुँच जाए, तो कोई किसान अपनी %कमाई' को आग नहीं लगाएगा। अगला दशक तय करेगा कि भारत इस 50 करोड़ टन 'हरित सोने' को धुएँ में उड़ाता है या समृद्धि में बदलता है।

कचरे से कंचन तक : मूल्य-शृंखला (प्रवाह-चित्र)

फसल अवशेष / पराली (धान-गेहूँ का डंठल, भूसा, छिलका)

⤵

संग्रह व प्रसंस्करण (बेलर से गाँठ, चॉपर, डीकम्पोज़र)

⤵

मूल्य-संवर्धन (खाद, बायोचार, मशरूम, पेलेट, बायोगैस, इथेनॉल)

⤵

बाज़ार (CBG/इथेनॉल संयंत्र, खाद-मंडी, स्टार्टअप, उद्योग)

⤵

अतिरिक्त आय + स्वच्छ पर्यावरण (किसान की कमाई, कम प्रदूषण, बेहतर मिट्टी)

चित्र 1 : कृषि अपशिष्ट को आय में बदलने की मूल्य-शृंखला (प्रवाह-चित्र)।

निष्कर्ष : आग नहीं, आमदनी का रास्ता चुनें

भारतीय खेती एक ऐतिहासिक मोड़ पर है। एक ओर पराली जलाने से हर साल करोड़ों रुपये का संसाधन धुएँ में उड़ जाता है और हवा ज़हरीली हो जाती है; दूसरी ओर, वही अपशिष्ट खाद, ऊर्जा, चारा और दर्जनों उत्पादों के रूप में किसान की जेब भर सकता है। पूसा डीकम्पोज़र से लेकर SATAT के बायोगैस संयंत्रों तक, और क्रिया लैब्स जैसे स्टार्टअप से लेकर पानीपत के 2% इथेनॉल संयंत्र तक, हर उदाहरण यही कहता है कि कचरा असल में कच्चा माल है, और सही सोच से इसे कंचन बनाया जा सकता है।

यह केवल पर्यावरण का सवाल नहीं, किसान की आय दोगुनी करने और देश की ऊर्जा सुरक्षा का भी रास्ता है। जब किसान 'अन्नदाता' के साथ-साथ 'ऊर्जादाता' बनेगा, तो गाँव समृद्ध होगा, हवा साफ़ होगी और मिट्टी भी। ज़रूरत बस सोच बदलने की है आग नहीं, आमदनी का रास्ता चुनने की।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

भारतीय कृषि में महिलाओं की भूमिका और सफलता की नई कहानी

✍ **कु. बचना** पीएच.डी. रिसर्च स्कॉलर, संसाधन प्रबंधन और उपभोक्ता विज्ञान विभाग, जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उधम सिंह नगर, उत्तराखंड

अदिति वत्स प्रोफ़ेसर, संसाधन प्रबंधन और उपभोक्ता विज्ञान विभाग, जी. बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उधम सिंह नगर, उत्तराखंड

भूमिका -भारत के किसी भी गाँव में सुबह-सुबह निकल जाइए। धुंध में लिपटे खेतों की ओर जो कदम सबसे पहले बढ़ते हैं, वे अक्सर किसी महिला के होते हैं। वही धान की पौध रोपती है, वही पशुओं को चारा-पानी देती है, वही गोबर की खाद तैयार करती है, वही फसल की निराई-गुड़ाई करती है और वही अनाज को सुखाकर, बीज संभालकर अगली फसल की तैयारी करती है। खेती की पूरी श्रृंखला में महिला हर कड़ी पर मौजूद है, फिर भी जब %किसान% शब्द बोला जाता है, तो हमारी आँखों के सामने प्रायः एक पुरुष का ही चित्र उभरता है। यही विरोधाभास भारतीय कृषि की सबसे बड़ी और सबसे अनदेखी सच्चाई है।

आज ग्रामीण भारत में एक शांत परिवर्तन चल रहा है, जिसे विशेषज्ञ 'कृषि का महिलाकरण' (Feminisation of Agriculture) कहते हैं। पुरुषों के शहरों की ओर पलायन, खेती की घटती आमदनी और गैर-कृषि रोज़गार की कमी के कारण खेत की कमान तेज़ी से महिलाओं के हाथों में आती जा रही है। आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS 2023-24) बताता है कि ग्रामीण भारत में काम करने वाली लगभग 77 प्रतिशत महिलाएँ अब कृषि व सहायक क्षेत्रों में लगी हैं। यह आँकड़ा किसी एक राज्य की बात नहीं, पूरे देश की तस्वीर है। इस बदलाव का राष्ट्रीय महत्व समझना ज़रूरी है। भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान भले ही लगभग 15-18 प्रतिशत रह गया हो, पर यह क्षेत्र आज भी देश की आधी से अधिक आबादी को रोज़गार देता है। ऐसे में जब खेती का बड़ा हिस्सा महिलाओं के भरोसे चल रहा हो, तो देश की खाद्य सुरक्षा, ग्रामीण आय और पोषण, तीनों का भविष्य सीधे-सीधे इस बात से जुड़ जाता है कि हम अपनी महिला किसानों को कितना सक्षम और सम्मानित बनाते हैं। यही कारण है कि किसान, नीति-निर्माता, विद्यार्थी और आम नागरिक, सभी को इस विषय की परवाह करनी चाहिए। वर्ष 2026 इस दृष्टि से ऐतिहासिक है। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने इस वर्ष को 'अंतरराष्ट्रीय महिला किसान वर्ष' घोषित किया है, पूरी दुनिया का ध्यान अब उन करोड़ों हाथों की ओर है जो चुपचाप हमारी थाली भरते हैं। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के लिए यह केवल एक प्रतीकात्मक अवसर नहीं, बल्कि आत्ममंथन का समय है, क्या हम अपनी किसान बहनों को वह पहचान, वे संसाधन और वह सम्मान दे पा रहे हैं, जिनकी वे हक़दार हैं? यह आलेख इसी सवाल के इर्द-गिर्द बुना गया है ⁻ महिलाओं की भूमिका, उनकी चुनौतियाँ, उनकी प्रेरक सफलताएँ और आगे का रास्ता।

क्या आप जानते हैं?- संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 2 मई 2024 को पारित प्रस्ताव के ज़रिए वर्ष 2026 को 'अंतरराष्ट्रीय महिला किसान वर्ष' (International Year of the Woman Farmer) घोषित किया। इस प्रस्ताव को 123 देशों ने सह-प्रायोजित किया और इसे सर्वसम्मति से अपनाया गया।

मुख्य विषय - 'कृषि का महिलाकरण' आखिर है क्या?

परिभाषा

'कृषि में महिलाओं की भूमिका' का अर्थ केवल खेत में मज़दूरी करना नहीं है। इसमें फसल उत्पादन, पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय, मुर्गीपालन, मत्स्यपालन, बीज संरक्षण, फसल कटाई के बाद की प्रोसेसिंग, भंडारण और अब तो कृषि-उद्यमिता तक सब कुछ शामिल है। जब किसी क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी और कार्यभार लगातार बढ़ता जाए, तो अर्थशास्त्री इसे 'महिलाकरण' (Feminisation) कहते हैं। भारतीय कृषि आज इसी दौर से गुज़र रही है।

यहाँ एक बारीक अंतर समझना ज़रूरी है। महिलाकरण अपने आप में न तो पूरी तरह अच्छी ख़बर है, न पूरी तरह बुरी। यदि महिलाएँ अपनी मर्ज़ी से, बराबर संसाधनों और निर्णय-शक्ति के साथ खेती की कमान संभाल रही हैं, तो यह सशक्तिकरण की कहानी है। पर यदि वे केवल मजबूरी में पुरुष के पलायन और गैर-कृषि रोज़गार की कमी के कारण, बिना अधिकार और बिना पहचान के, अवैतनिक श्रम का बोझ ढो रही हैं, तो यह संकट का संकेत भी हो सकता है। इसीलिए असली लक्ष्य केवल 'महिलाओं की संख्या बढ़ाना' नहीं, बल्कि उन्हें सम्मानजनक, अधिकार-संपन्न और लाभकारी खेती से जोड़ना है।

पृष्ठभूमि - यह बदलाव आया कैसे? यह परिवर्तन अचानक नहीं हुआ। इसके पीछे कई गहरी सामाजिक-आर्थिक ताक़तें काम कर रही हैं। सबसे बड़ा कारण है पुरुषों का गाँव से शहर की ओर पलायन। जब घर का पुरुष रोज़गार की तलाश में शहर चला जाता है, तो खेत, पशुधन और परिवार तीनों की ज़िम्मेदारी महिला के कंधों पर आ जाती है। दूसरा कारण है खेती की घटती लाभप्रदता, जिसके चलते पुरुष गैर-कृषि कामों की ओर मुड़ रहे हैं, जबकि महिलाएँ खेती से जुड़ी रह रही हैं। तीसरा कारण है ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के लिए गैर-कृषि रोज़गार के सीमित अवसर। इतिहास पर नज़र डालें तो 1991 में हर 10 पुरुष कृषि-श्रमिकों के मुक़ाबले लगभग 4 महिलाएँ खेती में थीं; 2011 तक यह अनुपात बढ़कर 6 महिलाओं तक पहुँच गया। पशुधन के क्षेत्र में तो यह भागीदारी और भी अधिक है, दूध दुहने, चारा काटने, पशुओं की देखभाल और बकरी-मुर्गी पालन में महिलाओं की हिस्सेदारी पुरुषों से कहीं ज़्यादा रही है। यानी हमारी खाद्य व्यवस्था की रीढ़ लंबे समय से महिलाओं के श्रम पर टिकी है, बस हमने उसे ठीक से गिना नहीं।

वैज्ञानिक व आर्थिक दृष्टि - महिलाओं का 'अदृश्य' योगदान-कृषि अर्थशास्त्र की भाषा में महिलाओं के श्रम का एक बड़ा हिस्सा 'अवैतनिक पारिवारिक श्रम' (unpaid family labour) की श्रेणी में आता है। इसका मतलब है कि वे काम तो पूरा करती हैं, पर उसका कोई अलग वेतन या आर्थिक मूल्यांकन दर्ज नहीं होता। सरकारी आँकड़ों में 'किसान' की परिभाषा प्रायः ज़मीन के मालिकाना हक़ से जुड़ी होती है, और चूँकि अधिकांश महिलाओं के नाम ज़मीन नहीं होती, इसलिए वे आधिकारिक रिकॉर्ड में 'किसान' गिनी ही नहीं जातीं। यही वह 'अदृश्यता' है, जिसे 2026 का अंतरराष्ट्रीय वर्ष तोड़ना चाहता है।

संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) का प्रसिद्ध अध्ययन एक चौंकाने वाली बात कहता है - यदि महिला किसानों को पुरुषों के बराबर संसाधन, बीज, खाद, ऋण, तकनीक और प्रशिक्षण मिल जाएँ, तो उनके खेतों की पैदावार 20 से 30 प्रतिशत तक बढ़ सकती है। इससे विकासशील देशों का कुल कृषि उत्पादन 2.5 से 4 प्रतिशत तक बढ़ सकता है और दुनिया में भूखे लोगों की संख्या 10 से 15 करोड़ तक घट सकती है। यानी महिला किसान को सशक्त करना केवल न्याय का सवाल नबल्कि हीं, खाद्य सुरक्षा का ठोस अर्थशास्त्र भी है।

सिर्फ़ खेत नहीं : पशुपालन और सहायक क्षेत्रों की रानी- महिलाओं की भूमिका को केवल फसल-उत्पादन तक सीमित करके देखना बड़ी भूल होगी। पशुपालन और डेयरी में उनकी भागीदारी तो और भी अधिक है। गाय-भैंस का दूध दुहना, चारा काटना, पशुओं की सफ़ाई और देखभाल, बकरी-पालन, बैकयार्ड मुर्गीपालन और मत्स्यपालन, इन कामों में महिलाएँ प्रायः मुख्य भूमिका निभाती हैं। भारत की विश्व-प्रसिद्ध श्वेत क्रांति (दुग्ध क्रांति) की असली नायिकाएँ गाँव की वही महिलाएँ हैं, जिन्होंने घर-आँगन में पले पशुओं से दूध का समुद्र खड़ा कर दिया। इसी तरह बीज संरक्षण, फसल कटाई के बाद की छँटाई, सुखाई, भंडारण और मूल्य-संवर्धन की महीन जानकारी भी परंपरागत रूप से महिलाओं के पास सुरक्षित रहती है। एक और अहम बात, यह भागीदारी हर जगह एक-सी नहीं है। बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में, जहाँ पुरुषों का पलायन अधिक है, कामकाजी महिलाओं का 80 प्रतिशत से भी बड़ा हिस्सा कृषि में लगा है। यानी 'कृषि का महिलाकरण' कहीं धीमा तो कहीं बहुत तेज़ है, पर दिशा हर जगह एक ही है, खेत की ओर बढ़ते महिला के क़दम।

भारत में वर्तमान स्थिति - आँकड़ों की ज़ुबानी- आइए, कुछ ताज़ा आँकड़ों से भारत की तस्वीर समझें। ये केवल संख्याएँ नहीं, बल्कि करोड़ों बहनों की मेहनत और संघर्ष का लेखा-जोखा है-

सूचक **(Indicator)**	स्थिति	स्रोत
कृषि में लगी ग्रामीण कामकाजी महिलाएँ	लगभग 77%	PLFS 2023-24
कुल कृषि कार्यबल में महिलाओं का हिस्सा	लगभग 42%	PLFS 2024
ग्रामीण महिला श्रम बल भागीदारी दर (FLPR)	41.5%- 47.6% (1 वर्ष में वृद्धि)	PLFS 2023-24
महिलाओं के नाम पर परिचालन जोत (land holdings)	केवल 12.8%	कृषि जनगणना
विश्व में कृषि श्रम बल में महिलाएँ (विकासशील देश)	औसतन 943%	FAO
महिला-प्रबंधित खेतों में भूमि उत्पादकता का अंतर	लगभग 24% कम	FAO (2023)
कृषि मज़दूरी में लैंगिक वेतन अंतर	महिलाओं को 918% कम	FAO (2023)

सारणी 1- भारतीय कृषि में महिलाओं की भागीदारी के प्रमुख सूचक।

इन आँकड़ों में एक गहरा विरोधाभास छिपा है। एक ओर महिलाएँ खेती का 42% कार्यबल संभालती हैं, दूसरी ओर ज़मीन पर उनका मालिकाना हक़ मात्र 12.8% है। यही 'श्रम अधिक, अधिकार कम' की खाई भारतीय कृषि की असली चुनौती है। पहचान और अधिकार के बिना, महिला का श्रम और उसके निर्णय दोनों अदृश्य रह जाते हैं।

महिला भागीदारी के लाभ : पूरे समाज के लिए 'विन-विन'-महिला किसानों को सशक्त करने का फ़ायदा केवल उन तक सीमित नहीं रहता – इसका लाभ पूरे परिवार, गाँव, कृषि-क्षेत्र और राष्ट्र तक पहुँचता है। शोध बार-बार यही दिखाते हैं कि महिला के हाथ में आय और निर्णय आने पर उसका सीधा असर बच्चों के पोषण, शिक्षा और परिवार के स्वास्थ्य पर पड़ता है। प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं-

* **खाद्य एवं पोषण सुरक्षा-** महिलाएँ प्रायः घर की रसोई और खेत दोनों संभालती हैं, इसलिए वे विविध व पोषक फसलों (दालें, सब्ज़ियाँ, मोटे अनाज) को प्राथमिकता देती हैं, जिससे परिवार का पोषण बेहतर होता है।

* **बढ़ती पैदावार व उत्पादन :** बराबर संसाधन मिलने पर महिला-प्रबंधित खेतों की पैदावार 20-30% तक बढ़ सकती है (FAO), जिससे राष्ट्रीय खाद्य उत्पादन को सीधा बल मिलता है।

* **पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण :** देशी बीजों, कृषि-जैव विविधता और मृदा-स्वास्थ्य का व्यावहारिक ज्ञान अक्सर महिलाओं के पास सुरक्षित रहता है, जो जलवायु-अनुकूल खेती की कुंजी है।

* **ग्रामीण अर्थव्यवस्था को गति :** स्वयं सहायता समूहों (SHG) से जुड़कर महिलाएँ बचत, ऋण और लघु उद्यम खड़े करती हैं, जिससे गाँव में पैसे का प्रवाह और रोज़गार बढ़ता है।

* **सामाजिक सशक्तिकरण:** आर्थिक स्वावलंबन से महिला के आत्मविश्वास, निर्णय-क्षमता और सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है, जो लैंगिक समानता की दिशा में ठोस कदम है।

* **सतत व जैविक खेती को बढ़ावा :** अनुभव बताता है कि महिलाएँ स्थानीय व प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित, कम लागत वाली और पर्यावरण-हितैषी पद्धतियों को तेज़ी से अपनाती हैं।

इन लाभों को जोड़कर देखें तो एक बड़ी तस्वीर उभरती है - महिला किसान का सशक्तिकरण कोई अलग-थलग 'महिला मुद्दा' नहीं, बल्कि पूरी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का इंजन है। एक अकेली सशक्त महिला अपने साथ अक्सर पूरे समूह को ऊपर उठाती है, वह दूसरी महिलाओं को प्रशिक्षण देती है, बीज बाँटती है, ऋण-अनुशासन सिखाती है और गाँव में एक नई कार्य-संस्कृति गढ़ती है। यही 'गुणक प्रभाव' (multiplier effect) उसे विकास की सबसे किफ़ायती और टिकाऊ रणनीति बनाता है।

रोचक तथ्य- जब आय महिला के हाथ में आती है, तो शोध के अनुसार उसका बड़ा हिस्सा बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और भोजन पर खर्च होता है। इसीलिए कहा जाता है, "एक महिला किसान को सशक्त करना, पूरी अगली पीढ़ी को सशक्त करना है।"

वर्तमान चुनौतियाँ -राह में बिखरे काँटे-

तस्वीर जितनी उज्ज्वल दिखती है, ज़मीनी हक़ीक़त उतनी आसान नहीं। महिला किसान को हर मोड़ पर कई तरह की बाधाओं से जूझना पड़ता है। इन्हें पाँच वर्गों में समझा जा सकता है।

1. **तकनीकी चुनौतियां**-अधिकांश कृषि-यंत्र और औज़ार पुरुषों के शरीर की बनावट को ध्यान में रखकर बनाए गए हैं। धान की निराई करने वाला वीडर या नारियल छीलने वाला उपकरण महिलाओं के लिए भारी और थकाऊ होता है, जिससे कमर, कंधे और हाथों में लगातार दर्द (musculoskeletal strain) की शिकायत आम है। इसे 'ड्रजरी' यानी अत्यधिक शारीरिक श्रम कहते हैं। इसके अलावा प्रशिक्षण, नई तकनीक और सूचना तक महिलाओं की पहुँच पुरुषों की तुलना में कम रहती है।

एक उदाहरण से समझें : यदि किसी महिला ने पूरे मौसम धान की पौध रोपी, निराई की और फसल काटी, पर उपकरण भारी होने के कारण उसके घुटनों और कमर में स्थायी दर्द बैठ गया, तो यह छिपी हुई %स्वास्थ्य लागत% किसी बही-खाते में दर्ज नहीं होती, फिर भी परिवार की आमदनी और महिला की कार्यक्षमता, दोनों को चुपचाप खाती रहती है।

2. **आर्थिक चुनौतियां**-सबसे बड़ी आर्थिक बाधा ज़मीन का मालिकाना हक़ न होना है। ज़मीन के काग़ज़ नाम पर न होने से महिला को न बैंक ऋण मिलता है, न बीमा, न कई सरकारी योजनाओं का सीधा लाभ। कई बार तो ज़मीन नाम पर न होने के कारण महिला किसान PM-KISAN जैसी योजनाओं के पोर्टल पर पंजीकरण तक नहीं करा पातीं। बिना गारंटी (collateral) के औपचारिक ऋण मिलना कठिन होता है, जिससे वे साहूकारों के ऊँचे ब्याज के जाल में फँस जाती हैं। ऊपर से, कृषि मज़दूरी में उन्हें पुरुषों से लगभग 18% कम भुगतान मिलता है यानी बराबर काम, पर कम मोल।

3. **सामाजिक चुनौतियां**-महिला पर 'दोहरा बोझ' होता है, खेत का काम और घर-परिवार की पूरी ज़िम्मेदारी, दोनों एक साथ। निर्णय लेने की शक्ति प्रायः घर के पुरुष के पास ही रहती है; पुरुष के पलायन के बाद भी ज़मीन और खेती से जुड़े बड़े फ़ैसले अक्सर दूर बैठे पुरुष ही लेते हैं। शिक्षा और गतिशीलता (mobility) की कमी, तथा 'किसान' के रूप में सामाजिक पहचान का अभाव उनके आत्मविश्वास को सीमित करता है।

4. **पर्यावरणीय चुनौतियां**-जलवायु परिवर्तन की मार सबसे पहले और सबसे अधिक ग्रामीण महिलाओं पर पड़ती है। सूखा, बाढ़ और अनियमित वर्षा से फसल चौपट होने पर उन्हें पानी, चारा और ईंधन के लिए और दूर तक जाना पड़ता है, कार्यभार और बढ़ जाता है। संसाधनों की कमी के बावजूद जलवायु-अनुकूलन (adaptation) की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी उन्हीं पर आ जाती है।

5. **नीतिगत चुनौतियां**-नीतियाँ और योजनाएँ बनती तो अच्छी हैं, पर 'किसान' की भूमि-आधारित परिभाषा के कारण अनेक महिला किसान उनके दायरे से बाहर रह जाती हैं। लिंग-पृथक (gender-disaggregated) आँकड़ों की कमी के चलते योजनाएँ ठीक से लक्षित नहीं हो पातीं। किसान क्रेडिट कार्ड, पंजीकरण पोर्टल और प्रशिक्षण कार्यक्रमों तक महिलाओं की पहुँच अक्सर काग़ज़ी अड़चनों में उलझ जाती है।

एक नज़र में - पाँच बड़ी बाधाएँ

भूमि अधिकार का अभाव—केवल 12.8% जोत महिलाओं के नाम

ड्रजरी (अत्यधिक शारीरिक श्रम)—पुरुष-केंद्रित भारी औज़ार

ऋण व बाज़ार तक सीमित पहुँच— गारंटी और पहचान की कमी

दोहरा कार्यभार— खेत + घर, पर निर्णय-शक्ति सीमित

'किसान' के रूप में पहचान का अभाव-आँकड़ों में अदृश्यता

भारत के सफल उदाहरण - प्रेरणा की मिसालें

चुनौतियाँ अपनी जगह, पर भारत की धरती पर ऐसी अनगिनत कहानियाँ लिखी जा रही हैं जो बताती हैं कि सही अवसर और साथ मिले तो महिला किसान क्या कमाल कर सकती है। संस्थाएँ, विश्वविद्यालय और स्वयं महिलाएँ, सब इस बदलाव के वाहक बन रहे हैं।

ICAR और समर्पित संस्थान

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) ने महिला किसानों के लिए एक अनूठी संस्था स्थापित की है, ICAR–केंद्रीय महिला कृषि संस्थान (CIWA), भुवनेश्वर। इसकी शुरुआत 1996 में 'राष्ट्रीय महिला कृषि अनुसंधान केंद्र' के रूप में हुई, जो 2008 में निदेशालय (DRWA) और 2014 में CIWA बना। यह देश का पहला और एकमात्र ऐसा संस्थान है, जो पूरी तरह कृषि में लैंगिक अनुसंधान को समर्पित है। यहाँ ऐसे 'महिला-हितैषी' और 'ड्रजरी-कम करने वाले' औज़ार विकसित किए जाते हैं, जो महिलाओं के शरीर और कार्य-शैली के अनुकूल हों, जैसे हल्के वीडर, बीज-बुआई यंत्र और फसल-प्रोसेसिंग उपकरण।

राज्य कृषि विश्वविद्यालय एवं कृषि विज्ञान केंद्र (KVK)-देश भर के राज्य कृषि विश्वविद्यालय और सैकड़ों कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) महिला किसानों के लिए विशेष प्रशिक्षण चलाते हैं, मशरूम उत्पादन, मधुमक्खी पालन, बीज उत्पादन, मूल्य-संवर्धन (value addition), बैकयार्ड मुर्गीपालन और जैविक खेती जैसे विषयों पर। ये केंद्र गाँव और विज्ञान के बीच पुल का काम करते हैं, और महिलाओं को नई तकनीक सीधे उनके खेत तक पहुँचाते हैं।

'बीज माता' रहीबाई सोमा पोपेरे - एक प्रेरक गाथा

महाराष्ट्र के अहमदनगर (अब अहिल्यानगर) ज़िले के दूरस्थ कोम्भाळणे गाँव की रहीबाई सोमा पोपेरे को पूरा देश 'बीज माता' (Seed Mother) के नाम से जानता है। महादेव कोली जनजाति की इस किसान ने कभी स्कूल का मुँह नहीं देखा, पर देशी बीजों के संरक्षण में उनका काम अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सराहा गया। उन्होंने धान, कुल्थी, सेम और अनेक सब्ज़ियों की सैकड़ों देशी क़िस्मों को सहेजा और सैकड़ों किसानों तक पहुँचाया। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से उन्होंने देशी बीजों का पूरा नेटवर्क खड़ा कर दिया।

उनके इस अतुलनीय योगदान के लिए उन्हें 2018 में बीबीसी की '100 प्रभावशाली महिलाओं' की सूची में स्थान मिला, 2019 में 'नारी शक्ति पुरस्कार' और 2020 में देश का चौथा सर्वोच्च नागरिक सम्मान, पद्मश्री प्रदान किया गया। रहीबाई की कहानी बताती है कि औपचारिक शिक्षा न होने पर भी, अनुभव और परंपरा में डूबा ज्ञान राष्ट्रीय नीति तक को दिशा दे सकता है।

स्वयं सहायता समूह (SHG) - सामूहिक शक्ति का चमत्कार

महिला सशक्तिकरण की सबसे बड़ी मौन क्रांति स्वयं सहायता समूहों के रूप में घटी है। नाबार्ड (NABARD) के 'SHG-बैंक लिंकेज कार्यक्रम', जो 1992 में शुरू हुआ, के

तहत बने समूहों में से लगभग 83.5% विशुद्ध रूप से महिला समूह हैं (31 मार्च 2024 तक), और यह कार्यक्रम देश के लगभग 17.75 करोड़ परिवारों तक पहुँच चुका है। छोटी-छोटी बचत जोड़कर, आपसी ऋण देकर और सामूहिक उद्यम खड़े करके ये समूह लाखों महिलाओं को आत्मनिर्भर बना रहे हैं।

केरल का 'कुडुम्बश्री' - सामूहिक खेती की मिसाल

महिला सशक्तिकरण का शायद सबसे प्रभावशाली भारतीय उदाहरण है केरल का कुडुम्बश्री (Kudumbashree), जो देश का सबसे बड़ा महिला स्वयं सहायता नेटवर्क, जिसकी स्थापना 1998 में हुई। इसकी सदस्य संख्या लगभग 45 लाख है और यह राज्य के आधे से अधिक परिवारों तक पहुँच चुका है। इसकी सबसे नवाचारी पहल 'संघ कृषि' यानी सामूहिक खेती है। लगभग 3.2 लाख महिलाएँ छोटे-छोटे 'संयुक्त देयता समूहों' (JLG) में संगठित होकर, बंजर या परती पड़ी ज़मीन को पट्टे पर लेकर मिलकर खेती करती हैं।

इस मॉडल की खूबसूरती यह है कि महिलाएँ यहाँ 'मज़दूर' के रूप में नहीं, बल्कि 'काश्तकार' के रूप में प्रवेश करती हैं। पंचायत और कुडुम्बश्री नेटवर्क उन्हें ज़मीन का पट्टा दर्ज कराने, सब्सिडी वाले ऋण, बीज, खाद और मशीनों तक पहुँच दिलाने में मदद करते हैं; राज्य कृषि विभाग समय-समय पर प्रशिक्षण देता है। नतीजा, हज़ारों हेक्टेयर परती ज़मीन फिर से लहलहा उठी, महिलाओं को नियमित आय मिली, और परिवारों की खाद्य सुरक्षा मज़बूत हुई। 2018 की भीषण बाढ़ के बाद इन्हीं 'संघ कृषि' समूहों ने अपने एकजुट हौसले से खेतों को दोबारा खड़ा किया – यह दिखाते हुए कि सामूहिक शक्ति किसी भी आपदा से बड़ी होती है।

सफलता की झलक - कुडुम्बश्री

स्थापना-1998, केरल 7 सदस्य : 945 लाख महिलाएँ

सामूहिक खेती-93.2 लाख महिला किसान, 960,000 JLG समूह

मॉडल-परती ज़मीन पट्टे पर लेकर जैविक/कम-लागत सामूहिक खेती

सीख- संगठन + पहुँच + पहचान = टिकाऊ सशक्तिकरण

कृषि-उद्यमिता और स्टार्टअप

अब महिला किसान केवल उत्पादक नहीं, बल्कि उद्यमी भी बन रही हैं। किसान उत्पादक संगठन (FPO) की अगुवाई, अचार-पापड़-मसाले जैसे प्रसंस्कृत उत्पादों की ब्रांडिंग, जैविक उपज की सीधी बिक्री, डेयरी और बकरी-पालन उद्यम - इन सबमें महिलाओं के नेतृत्व वाले उद्यम तेज़ी से उभर रहे हैं। कई कृषि-स्टार्टअप अब महिला SHG को सीधे बाज़ार, तकनीक और ब्रांड से जोड़ रहे हैं, जिससे 'खेत से थाली तक' की पूरी श्रृंखला में महिलाओं की हिस्सेदारी और आमदनी बढ़ रही है।

सरकारी योजनाएँ - सशक्तिकरण के सहारे- सरकार ने महिला किसानों की भागीदारी बढ़ाने के लिए कई योजनाएँ और प्रावधान लागू किए हैं। यहाँ इस विषय से जुड़ी प्रमुख योजनाओं का सार दिया गया है।

महिला किसान सशक्तिकरण परियोजना (MKSP)-यह इस विषय की सबसे केंद्रीय योजना है। दीनदयाल अंत्योदय योजना-राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM) के एक उप-घटक के रूप में 2011 में शुरू यह परियोजना 'महिला' की पहचान को 'किसान' के रूप में मान्यता देती है। इसका उद्देश्य है, महिलाओं को टिकाऊ, कृषि-पारिस्थितिक (agro-ecological) पद्धतियों में दक्ष बनाना। अब तक इसके तहत लगभग 38 लाख महिला किसानों को प्रशिक्षित किया जा चुका है। परियोजनाओं के लिए सरकार 60त्न तक (पूर्वोत्तर राज्यों के लिए 90त्न तक) वित्तीय सहायता देती है।

अन्य प्रमुख योजनाएँ जो महिला किसानों को लाभ देती हैं

योजना	महिला किसान के लिए प्रासंगिकता
MKSP (महिला किसान सशक्तिकरण परियोजना)	प्रशिक्षण, क्षमता-निर्माण व टिकाऊ खेती में विशेष रूप से महिला-केंद्रित
PM-KISAN	पात्र भूमि-धारक महिला किसानों को भी सालाना आय-सहायता
DAY-NRLM / SHG	बचत, ऋण व आजीविका के लिए महिला स्वयं सहायता समूहों का जाल
नाबार्ड SHG-बैंक लिंकेज	बिना गारंटी सामूहिक ऋण; 83.5% समूह महिला-आधारित
मृदा स्वास्थ्य कार्ड	खेत की मिट्टी के अनुसार सही उर्वरक निर्णय में मदद
e-NAM	उपज की सीधी, पारदर्शी व बेहतर मूल्य पर बिक्री
राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन (NMSA)	जलवायु-अनुकूल व टिकाऊ खेती को बढ़ावा
किसान ड्रोन / कृषि-तकनीक पहल	नई तकनीक व कौशल में महिलाओं की भागीदारी के अवसर

सारणी 2 : महिला किसानों के लिए प्रासंगिक प्रमुख योजनाएँ। (लाभ के लिए स्थानीय KVK/कृषि कार्यालय से संपर्क करें।)

इन योजनाओं का पूरा लाभ तभी मिलता है जब जानकारी सही समय पर पहुँचे। यहीं SHG, KVK और सामुदायिक संसाधन व्यक्ति (Community Resource Persons) की भूमिका अहम हो जाती है, जो गाँव-गाँव जाकर महिलाओं को इन अवसरों से जोड़ते हैं। इसलिए हर महिला किसान को चाहिए कि वह अपने गाँव के सखी, आँगनवाड़ी, पंचायत या नज़दीकी कृषि कार्यालय से नियमित संपर्क में रहे और नई योजनाओं की जानकारी लेती रहे।

विशेषज्ञों की सलाह : व्यावहारिक कदम

कृषि वैज्ञानिकों, विस्तार विशेषज्ञों और नीति-निर्माताओं की राय को मिलाकर कुछ ठोस व व्यावहारिक सुझाव इस प्रकार हैं-

* **संयुक्त भूमि अधिकार दिलाएँ :** पति-पत्नी दोनों के नाम संयुक्त पट्टा/भूमि पंजीकरण को बढ़ावा दें, ताकि महिला को ऋण, बीमा और योजनाओं का सीधा हक़ मिले।

* **महिला-हितैषी औज़ार अपनाएँ :** CIWA जैसे संस्थानों द्वारा विकसित हल्के, ड्रजरी-कम करने वाले उपकरणों का उपयोग करें – इससे थकान घटेगी और उत्पादकता बढ़ेगी।

* **SHG से जुड़ें और सक्रिय रहें :** नियमित बैठक, बचत और समय पर ऋण-वापसी वाले 'पंचसूत्र' का पालन करने वाले समूह बैंकों के भरोसेमंद ग्राहक बनते हैं।

* **प्रशिक्षण को प्राथमिकता दें :** नज़दीकी KVK के मशरूम, मधुमक्खी, बीज उत्पादन, मूल्य-संवर्धन व जैविक खेती के प्रशिक्षणों में भाग लें।

* **विविधीकरण अपनाएँ :** केवल एक फसल पर निर्भर न रहें - पशुपालन, मुर्गीपालन, बागवानी और प्रोसेसिंग को जोड़कर आय के कई स्रोत बनाएँ।

* **डिजिटल साक्षरता बढ़ाएँ :** मोबाइल आधारित मौसम, मंडी-भाव और सलाह-सेवाओं का उपयोग सीखें; e-NAM जैसे मंचों से जुड़ें।

* **अभिलेख रखें :** लागत, उपज और बिक्री का सरल हिसाब रखें - इससे बेहतर निर्णय और ऋण-पात्रता दोनों बनती हैं।

* **सामूहिक शक्ति का उपयोग करें :** कुडुम्बश्री की तरह सामूहिक/समूह खेती और सामूहिक खरीद-बिक्री से लागत घटती है और सौदेबाज़ी की ताक़त बढ़ती है।

* **स्वास्थ्य को अनदेखा न करें :** भारी काम के बीच आराम, सही मुद्रा और महिला-हितैषी औज़ारों से 'ड्रजरी' घटाएँ - स्वस्थ किसान ही टिकाऊ किसान है।

भविष्य की संभावनाएँ : तकनीक के पंख

आने वाला दशक महिला किसानों के लिए अवसरों से भरा है। नई तकनीक 'ड्रजरी' घटाकर और सटीक निर्णय देकर खेती को आसान व लाभकारी बना सकती है, बशर्ते ये तकनीक महिलाओं तक भी उतनी ही आसानी से पहुँचे जितनी पुरुषों तक। कुछ उभरती संभावनाएं-

* **ड्रोन तकनीक** : 'नमो ड्रोन दीदी' जैसी पहलें महिला सखी को ड्रोन-संचालक बनाकर छिड़काव सेवाओं से कमाई का नया रास्ता खोल रही हैं।

* **सटीक खेती (Precision Agriculture) :** मृदा-सेंसर और मोबाइल सलाह से सही मात्रा में पानी, खाद व बीज का उपयोग - कम लागत, ज़्यादा मुनाफ़ा।

* **AI व मोबाइल एप :** फसल रोग की पहचान, मौसम पूर्वानुमान और मंडी-भाव अब मोबाइल पर उपलब्ध; आवाज़-आधारित एप भाषा व साक्षरता की बाधा घटाते हैं।

* **IoT व स्मार्ट सिंचाई :** सेंसर-आधारित ड्रिप सिंचाई से समय और श्रम की बचत, विशेषकर जल-संकट वाले क्षेत्रों में उपयोगी।

ज़लवायु-स्मार्ट कृषि : सूखा-सहिष्णु किस्में, मोटे अनाज (श्री अन्न) और मिश्रित खेती से जलवायु-जोखिम के विरुद्ध सुरक्षा।

ज़डिजिटल कृषि मिशन : किसान पंजीकरण और डिजिटल पहचान से महिला किसानों को योजनाओं व सेवाओं से सीधे जोड़ने का अवसर।

इन तकनीकों की सफलता की एक ही शर्त है, पहुँच में समानता। यदि प्रशिक्षण, ऋण और उपकरण महिलाओं तक समान रूप से पहुँचें, तो तकनीक 'लैंगिक खाई' को पाटने का सबसे बड़ा औज़ार बन सकती है। 2026 का अंतरराष्ट्रीय महिला किसान वर्ष इसी दिशा में एक वैश्विक अवसर है, जब सरकारें, कंपनियाँ, विश्वविद्यालय और नागरिक-समाज मिलकर महिला किसानों को संसाधन, तकनीक और निर्णय-शक्ति दिलाने का संकल्प ले सकते हैं। अगला दशक तय करेगा कि खेती की यह 'महिला-क्रांति' मजबूरी की कहानी बनी रहेगी या सशक्तिकरण की।

निष्कर्ष - नई कहानी, जो अब लिखी जा रही है

भारतीय कृषि की कहानी अब बदल रही है और इस बदलाव की लेखिका स्वयं एक महिला किसान है। वह अब केवल 'खेत में मदद करने वाली' नहीं, बल्कि खेत की मालकिन, निर्णय लेने वाली और उद्यम खड़ा करने वाली अगुवा बन रही है। रहीबाई पोपेरे जैसी 'बीज माता' से लेकर करोड़ों सखी बहनों तक, ये कहानियाँ बताती हैं कि जहाँ अवसर मिला, वहाँ महिला ने न सिर्फ़ अपना, बल्कि पूरे गाँव का भाग्य बदल दिया। 2026 का 'अंतरराष्ट्रीय महिला किसान वर्ष' हमें एक मौका देता है - इस अदृश्य योगदान को दृश्य बनाने का, श्रम को सम्मान में और मेहनत को मालिकाना हक़ में बदलने का। यह केवल आधी आबादी के न्याय की बात नहीं; यह देश की खाद्य सुरक्षा, ग्रामीण समृद्धि और सतत विकास लक्ष्यों की भी बात है। जब हम अपनी किसान बहनों को बीज, ऋण, तकनीक और पहचान देंगे, तो पूरा भारत आगे बढ़ेगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

बदलती खेती: आधुनिक तकनीकों से बढ़ती किसानों की आय

✍ **कु. बचना** पीएच.डी. रिसर्च स्कॉलर, संसाधन प्रबंधन और उपभोक्ता विज्ञान विभाग, जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उधम सिंह नगर, उत्तराखंड

अदिति वत्स प्रोफ़ेसर, संसाधन प्रबंधन और उपभोक्ता विज्ञान विभाग, जी. बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उधम सिंह नगर, उत्तराखंड

भूमिका: भारतीय कृषि आज एक निर्णायक मोड़ पर खड़ी है। एक तरफ जलवायु परिवर्तन की मार, घटती जोत का आकार, बढ़ती उत्पादन लागत और अनिश्चित मानसून किसानों की कमर तोड़ रहे हैं, तो दूसरी तरफ ड्रोन, सेंसर, मोबाइल एप और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी आधुनिक तकनीकें खेती के तौर-तरीकों को पूरी तरह बदल रही हैं। कभी हल-बैल और पारंपरिक बीज तक सीमित रहने वाला हमारा किसान आज मिट्टी की सेहत मोबाइल एप से जांच रहा है, ड्रोन से खाद-दवा का छिड़काव करवा रहा है और मौसम के पूर्वानुमान के आधार पर सिंचाई का समय तय कर रहा है।

भारत सरकार ने वर्ष 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखा था। यद्यपि यह लक्ष्य पूरी तरह हासिल नहीं हो सका, फिर भी इसने पूरे देश में कृषि नवाचार और तकनीकी अपनाव को नई गति दी। जो किसान आधुनिक तकनीकों को अपना रहे हैं, कई अध्ययनों और मैदानी अनुभवों में उनकी आय में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है, यह केवल आंकड़ों का खेल नहीं, बल्कि लाखों परिवारों की जिंदगी बदलने वाली हकीकत है। भारत जैसे देश में, जहां लगभग 85-86 प्रतिशत किसान लघु और सीमांत श्रेणी में आते हैं, तकनीक को खेत तक पहुंचाना केवल विकल्प नहीं बल्कि आवश्यकता बन चुका है। यह लेख इसी बदलाव की कहानी है, कि कैसे आधुनिक तकनीकें भारतीय खेती की सूरत बदल रही हैं, किसानों को क्या लाभ मिल रहे हैं, कौन-सी चुनौतियां अब भी बाकी हैं, और आगे का रास्ता क्या हो सकता है।

मुख्य विषय: बदलती खेती को समझें

परिभाषा और पृष्ठभूमि

'बदलती खेती' का अर्थ है - परंपरागत कृषि पद्धतियों से आगे बढ़कर विज्ञान, डेटा और डिजिटल उपकरणों पर आधारित खेती अपनाना। इसमें सटीक कृषि (Precision Agriculture), डिजिटल कृषि (Digital Agriculture), जलवायु-स्मार्ट कृषि (Climate-Smart Agriculture) और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित निर्णय-सहायता प्रणालियां शामिल हैं।

हरित क्रांति (1960-70 के दशक) ने भारत को अनाज के मामले में आत्मनिर्भर बनाया, लेकिन इसके साथ ही अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों के उपयोग और भूजल दोहन जैसी समस्याएं भी पैदा हुईं। अब कृषि क्षेत्र एक नई क्रांति, जिसे कई विशेषज्ञ 'डिजिटल कृषि क्रांति' या 'कृषि 4.0' कहते हैं , से गुजर रहा है, जहां उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ संसाधनों के संतुलित उपयोग पर भी बराबर जोर है।

वैज्ञानिक आधार: आधुनिक कृषि तकनीकें मुख्यतः तीन आधार-स्तंभों पर टिकी हैं, सेंसिंग (मिट्टी, मौसम और फसल की स्थिति का डेटा एकत्र करना), विश्लेषण (कृत्रिम बुद्धिमत्ता व मशीन लर्निंग से डेटा का विश्लेषण कर सुझाव देना), और क्रियान्वयन (ड्रोन, स्वचालित सिंचाई तथा वेरिएबल-रेट एप्लीकेटर के माध्यम से सटीक हस्तक्षेप)। उदाहरण के लिए, मृदा नमी सेंसर मिट्टी में पानी की मात्रा मापते हैं और आवश्यकता पड़ने पर ही सिंचाई शुरू करते हैं, जिससे जल की उल्लेखनीय बचत होती है और फसल भी तनावमुक्त रहती है।

सटीक कृषि की प्रक्रिया

* **मिट्टी, मौसम व फसल का डेटा संग्रहण —** सेंसर, मोबाइल एप और सैटेलाइट इमेजरी के माध्यम से

* **डेटा का विश्लेषण —** एआई/मशीन लर्निंग द्वारा पैटर्न पहचान कर फसल-विशिष्ट सिफारिश तैयार करना

* **सिफारिश का प्रसारण —** मोबाइल एप, एसएमएस या कृषि विज्ञान केंद्र के माध्यम से किसान तक सूचना

* **सटीक क्रियान्वयन —** ड्रोन, वेरिएबल-रेट एप्लीकेटर व स्वचालित सिंचाई से आवश्यकता-आधारित हस्तक्षेप

* **परिणाम की निगरानी —** उपज, लागत व संसाधन उपयोग का आकलन, जो अगले चक्र के डेटा में जुड़ता है

भारत में वर्तमान स्थिति

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के अनुसार, डिजिटल कृषि मिशन के तहत देशभर में किसानों का डिजिटल डेटाबेस, फसल सर्वेक्षण और मिट्टी स्वास्थ्य मानचित्रण का कार्य लगातार आगे बढ़ रहा है। ई-नाम (इलेक्ट्रॉनिक राष्ट्रीय कृषि बाजार) पोर्टल पर अगस्त 2025 तक 1.79 करोड़ से अधिक किसान और डेढ़ हजार से अधिक मंडियां जुड़ चुकी हैं, और इस मंच पर अब तक लगभग 4.4 लाख करोड़ रुपये मूल्य की कृषि उपज का व्यापार हो चुका है, जिससे किसानों को पारदर्शी नीलामी और बेहतर मूल्य मिलना आसान हुआ है।

क्या आप जानते हैं?

संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) के अनुसार, यदि विश्व स्तर पर सटीक कृषि व स्वचालन तकनीकों को व्यापक रूप से अपनाया जाए, तो बिना अतिरिक्त भूमि उपयोग के भी वैश्विक खाद्य उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है।

भारत में 85 प्रतिशत से अधिक किसान लघु और सीमांत श्रेणी के हैं, जिनके पास औसतन एक हेक्टेयर से भी कम भूमि है, इसलिए किफायती और साझा-उपयोग वाली तकनीकें (जैसे किराए पर ड्रोन सेवा) उनके लिए विशेष महत्व रखती हैं।

किसानों के लिए लाभ

आधुनिक तकनीकों को अपनाने से किसानों को कई स्तरों पर ठोस लाभ मिल रहे हैं:

* **उत्पादन लागत में कमी:** सटीक कृषि पद्धतियों से उर्वरक और कीटनाशक का उपयोग आवश्यकता-आधारित हो जाता है, जिससे इनपुट लागत घटती है।

* **उपज एवं गुणवत्ता में सुधार:** बेहतर बीज चयन, समय पर सिंचाई और सटीक पोषण प्रबंधन से उत्पादकता और उपज की गुणवत्ता दोनों में सुधार होता है।

* **जल का विवेकपूर्ण उपयोग:** ड्रिप सिंचाई और मृदा-नमी सेंसर आधारित प्रणालियों से सीमित जल संसाधनों का अधिकतम उपयोग संभव होता है।

* **समय और श्रम की बचत:** ड्रोन से छिड़काव में मैनुअल तरीके की तुलना में बहुत कम समय लगता है, जिससे मजदूरों की कमी की समस्या भी कम होती है।

* **बेहतर बाजार पहुंच:** ई-नाम और मोबाइल एप के माध्यम से वास्तविक समय में मंडी भाव की जानकारी मिलने से बिचौलियों पर निर्भरता घटती है।

* **जोखिम प्रबंधन:** मौसम पूर्वानुमान और फसल सलाहकार एप से समय रहते सावधानी बरतकर फसल क्षति को कम किया जा सकता है।

* **वित्तीय समावेशन:** डिजिटल भूमि रिकॉर्ड, किसान क्रेडिट कार्ड और डिजिटल भुगतान प्रणाली से ऋण व सब्सिडी प्राप्त करना अधिक सरल हुआ है।

* **पर्यावरण संरक्षण:** संतुलित रासायनिक उपयोग से मिट्टी की उर्वरता और भूजल की गुणवत्ता लंबे समय तक बनी रहती है।

परंपरागत खेती बनाम आधुनिक खेती

दोनों पद्धतियों के बीच अंतर को निम्न तालिका के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है:

पैरामीटर	परंपरागत खेती	आधुनिक/सटीक खेती
सिंचाई पद्धति	अनुमान आधारित, अधिक जल उपयोग	सेंसर आधारित, आवश्यकतानुसार जल उपयोग
उर्वरक/कीटनाशक	पूरे खेत में एक समान मात्रा	मृदा परीक्षण अनुसार स्थान-विशिष्ट उपयोग
फसल निगरानी	शारीरिक निरीक्षण, कम आवृत्ति	ड्रोन/सैटेलाइट से नियमित व व्यापक निगरानी
बाजार जानकारी	स्थानीय मंडी तक सीमित	ई-नाम व मोबाइल एप से बहु-मंडी वास्तविक समय भाव
अभिलेख प्रबंधन	कागजी और बिखरा हुआ	डिजिटल भूमि रिकॉर्ड, ऋण-बीमा हेतु सुलभ
निर्णय आधार	मुख्यतः अनुभव व परंपरा	अनुभव के साथ डेटा व वैज्ञानिक सिफारिश

वर्तमान चुनौतियां-तकनीक आधारित खेती की राह में अभी भी कई अड़चनें मौजूद हैं। तकनीकी स्तर पर, ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट कनेक्टिविटी असमान है और डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण कई किसान एप-आधारित सेवाओं का पूरा लाभ नहीं उठा पाते। आर्थिक दृष्टि से, ड्रोन, सेंसर और स्वचालित सिंचाई प्रणालियों की प्रारंभिक लागत अधिक है, जो छोटे और सीमांत किसानों की पहुंच से बाहर हो जाती है, छोटी और बिखरी हुई जोत होने के कारण महंगी मशीनरी का व्यक्तिगत रूप से उपयोग आर्थिक रूप से व्यावहारिक भी नहीं रह जाता।

सामाजिक स्तर पर, आयु-वर्ग का अंतर एक बड़ी चुनौती है, वृद्ध किसान नई तकनीकों को अपनाने में हिचकिचाते हैं, जबकि महिला किसानों की प्रशिक्षण और संसाधनों तक पहुंच अब भी पुरुष किसानों की तुलना में सीमित है, हालांकि नमो ड्रोन दीदी जैसी योजनाएं इस अंतर को पाटने का प्रयास कर रही हैं। पर्यावरणीय दृष्टि से, अत्यधिक मशीनीकरण और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के अनुचित निपटान से नए प्रकार के प्रदूषण की आशंका भी बनी रहती है। नीतिगत स्तर पर, विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन राज्यों में असमान रहा है, स्थानीय भाषा में सामग्री और तकनीकी सहायता की कमी है, और कई बार योजनाओं का लाभ अंतिम पंक्ति के किसान तक समय पर नहीं पहुंच पाता। इन बाधाओं को दूर किए बिना तकनीकी बदलाव का लाभ समावेशी नहीं बन सकता।

चुनौती का प्रकार	मुख्य समस्या	संभावित समाधान
तकनीकी	असमान इंटरनेट कनेक्टिविटी व डिजिटल साक्षरता की कमी	स्थानीय भाषा में सरल एप, ऑफलाइन-सक्षम टूल व गांव-स्तरीय डिजिटल प्रशिक्षण
आर्थिक	ड्रोन, सेंसर व मशीनरी की ऊंची प्रारंभिक लागत	किराए/साझा-उपयोग मॉडल, सब्सिडी व सुलभ कृषि ऋण
सामाजिक	वृद्ध किसानों में हिचकिचाहट, महिलाओं की सीमित पहुंच	प्रदर्शन-आधारित प्रशिक्षण, महिला-केंद्रित योजनाएं
पर्यावरणीय	अत्यधिक मशीनीकरण व ई-कचरे की आशंका	जिम्मेदार निपटान नीति, संतुलित यंत्रीकरण को बढ़ावा
नीतिगत	असमान क्रियान्वयन व देरी से लाभ पहुंचना	एकीकृत डिजिटल ट्रैकिंग, समयबद्ध निगरानी तंत्र

भारत के सफल उदाहरण

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR), राज्य कृषि विश्वविद्यालयों और कृषि विज्ञान केंद्रों (KVK) ने तकनीक को खेत तक पहुंचाने में अग्रणी भूमिका निभाई है। कृषि यंत्रीकरण उप-मिशन (SMAM) के तहत वर्ष 2022-23 से 2025-26 के दौरान ICAR संस्थानों, कृषि विज्ञान केंद्रों और राज्य कृषि विश्वविद्यालयों ने कुल 297 ड्रोन खरीदे और लगभग 36,882 प्रदर्शन आयोजित किए, जिनसे 38,280 हेक्टेयर क्षेत्र आच्छादित हुआ और चार लाख से अधिक किसान प्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित हुए। गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर जैसे राज्य कृषि विश्वविद्यालय भी अपने कृषि विज्ञान केंद्रों के माध्यम से किसानों तक मृदा परीक्षण, बीज प्रौद्योगिकी और यंत्रीकरण संबंधी नवाचार पहुंचाने में सक्रिय हैं।

महिला सशक्तिकरण की दिशा में 'नमो ड्रोन दीदी' योजना एक उल्लेखनीय पहल है। इसके अंतर्गत 1,261 करोड़ रुपये के परिव्यय से 15,000 महिला स्वयं सहायता समूहों को ड्रोन उपलब्ध कराए जाने का लक्ष्य रखा गया है, ताकि वे किसानों को किराए पर छिड़काव सेवाएं देकर अतिरिक्त आय अर्जित कर सकें। जनवरी 2026 तक प्रमुख उर्वरक कंपनियों द्वारा 1,094 ड्रोन वितरित किए जा चुके हैं, जिनमें से 500 योजना के तहत सीधे वितरित हुए, और संबंधित महिलाओं को ड्रोन पायलट के रूप में प्रशिक्षित भी किया गया है।

निजी क्षेत्र में डीहाट (DeHaat), क्रॉपइन (Cropin), फसल (Fasal) और निंजाकार्ट (Ninjacart) जैसे कृषि-तकनीक स्टार्टअप मिट्टी परीक्षण, फसल सलाह, मौसम पूर्वानुमान और सीधी बाजार पहुंच जैसी सेवाएं लाखों किसानों तक पहुंचा रहे हैं, जिससे सरकारी प्रयासों को निजी नवाचार का सशक्त सहयोग मिल रहा है।

केस स्टडी: एक प्रतिनिधि उदाहरण

देशभर के कृषि विज्ञान केंद्रों की फील्ड रिपोर्टों में एक सामान्य पैटर्न बार-बार सामने आता है, दो हेक्टेयर से कम भूमि वाला किसान परिवार जब मृदा स्वास्थ्य कार्ड की सिफारिशों के अनुसार उर्वरक प्रबंधन अपनाता है, ड्रिप सिंचाई व मौसम-आधारित सलाहकार एप का उपयोग करता है, और अपनी उपज ई-नाम के माध्यम से बेचता है, तो इनपुट लागत में उल्लेखनीय कमी और उपज मूल्य में सुधार साथ-साथ दर्ज होते हैं। यह प्रतिनिधि उदाहरण किसी एक व्यक्ति की नहीं बल्कि कई केवीके क्षेत्रों से मिली फील्ड रिपोर्टों में दोहराए गए सामान्य अनुभव की झलक है – यह दर्शाता है कि छोटे, सुनियोजित बदलाव भी सामूहिक रूप से किसान परिवार की आय पर बड़ा असर डाल सकते हैं।

सरकारी योजनाएँ

इस बदलाव को गति देने के लिए भारत सरकार ने कई महत्वपूर्ण योजनाएं शुरू की हैं:

योजना एवं मुख्य उद्देश्य

पीएम-किसान (PM-KISAN): पात्र किसान परिवारों को प्रतिवर्ष 6,000 रु. की प्रत्यक्ष आय सहायता।

पीएमकेएसवाई (PMKSY): 'हर खेत को पानी' के लक्ष्य के साथ सिंचाई दक्षता व जल उपयोग में सुधार।

डिजिटल कृषि मिशन: किसान डेटाबेस, भू-अभिलेख एकीकरण और डिजिटल सलाहकार सेवाओं का विकास।

ई-नाम (e-NAM): मंडियों को ऑनलाइन जोड़कर पारदर्शी नीलामी व बेहतर मूल्य सुनिश्चित करना।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना: मिट्टी की जांच कर संतुलित एवं आवश्यकतानुसार उर्वरक उपयोग को बढ़ावा।

नमो ड्रोन दीदी: महिला स्वयं सहायता समूहों को ड्रोन देकर किराए पर छिड़काव सेवा व अतिरिक्त आय।

आरकेवीवाई (RKVY): राज्यों को कृषि व संबद्ध क्षेत्रों में समग्र विकास हेतु अनुदान सहायता।

विशेषज्ञों की सलाह

* शुरुआत छोटे स्तर पर करें – पूरे खेत में एक साथ नई तकनीक अपनाने के बजाय एक छोटे हिस्से में परीक्षण करके परिणाम देखें।

* नजदीकी कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) या राज्य कृषि विश्वविद्यालय से नियमित संपर्क बनाए रखें और प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लें।

* मृदा स्वास्थ्य कार्ड की सिफारिशों के अनुसार ही उर्वरक व सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपयोग करें।

* संभव हो तो पड़ोसी किसानों के साथ मिलकर ड्रोन या महंगी मशीनरी का साझा उपयोग (कस्टम हायरिंग सेंटर) करें, जिससे लागत कम होगी।

* मौसम व बाजार भाव संबंधी सरकारी मोबाइल एप और हेल्पलाइन नंबरों का नियमित उपयोग करें।

* महिला किसानों को प्रशिक्षण व निर्णय-प्रक्रिया में समान भागीदारी दी जाए, क्योंकि वे कृषि कार्यबल का बड़ा हिस्सा हैं।

ग्रामीण युवाओं और कृषि-उद्यमिता के लिए अवसर

बदलती खेती केवल परंपरागत किसानों के लिए नहीं, बल्कि ग्रामीण युवाओं के लिए भी नए अवसरों का द्वार खोल रही है। ड्रोन पायलट सेवा, कस्टम हायरिंग सेंटर (मशीनरी किराए पर देने की सेवा), मृदा परीक्षण प्रयोगशाला, कृषि-सलाहकार मोबाइल एप और सूक्ष्म प्रसंस्करण इकाइयां, ये सभी युवाओं के लिए स्वरोजगार के व्यावहारिक विकल्प बनकर उभर रहे हैं। कृषि अवसंरचना कोष (Agriculture Infrastructure Fund) के तहत रियायती ब्याज दर पर ऋण सुविधा उपलब्ध है, जिसका उपयोग गोदाम, कोल्ड स्टोरेज या प्रसंस्करण इकाई स्थापित करने के लिए किया जा सकता है।

किसान उत्पादक संगठन (FPO) भी युवाओं के लिए नेतृत्व और व्यवसाय प्रबंधन का व्यावहारिक अवसर प्रदान करते हैं, वे इनपुट खरीद, प्रसंस्करण और सामूहिक विपणन का प्रबंधन कर किसानों की सौदेबाजी क्षमता बढ़ा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, डीजीसीए-अधिकृत रिमोट पायलट प्रशिक्षण संगठनों (RPTO) से ड्रोन पायलट प्रमाणपत्र प्राप्त कर युवा अपने क्षेत्र में किराए पर ड्रोन सेवा प्रदान कर सकते हैं, जैसा कि नमो ड्रोन दीदी योजना के अंतर्गत महिला स्वयं सहायता समूहों को प्रशिक्षित किया जा रहा है।

कृषि-पर्यटन (Agri-tourism), जैविक प्रमाणन परामर्श और डिजिटल मार्केटिंग जैसे नए क्षेत्र भी उभर रहे हैं, जहां तकनीकी दक्षता रखने वाले ग्रामीण युवा शहरी उपभोक्ताओं और किसानों के बीच सेतु का काम कर सकते हैं। यदि उचित प्रशिक्षण, ऋण सुविधा और बाजार संपर्क समय पर मिले, तो कृषि क्षेत्र आने वाले वर्षों में ग्रामीण रोजगार का सबसे बड़ा स्रोत बन सकता है।

भविष्य की संभावनाएं-आने वाले वर्षों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT), ड्रोन और उपग्रह आधारित सुदूर संवेदन तकनीकें भारतीय खेती को और अधिक सटीक व टिकाऊ बनाएंगी। AI आधारित मोबाइल एप अब फसल की पत्तियों की तस्वीर से रोग-कीट की पहचान कर तत्काल सुझाव देने में सक्षम हो रहे हैं, जबकि IoT आधारित सेंसर नेटवर्क खेत की हर स्थिति, मिट्टी की नमी, तापमान और पोषक तत्वों पर वास्तविक समय में नजर रखते हैं।

सटीक कृषि (Precision Agriculture) और जलवायु-स्मार्ट कृषि (Climate-Smart Agriculture) के दायरे का विस्तार होगा, जिससे किसान बदलते मौसम पैटर्न के अनुरूप फसल चक्र और किस्मों का चयन कर सकेंगे। डिजिटल कृषि मिशन के तहत तैयार हो रहा एकीकृत डेटा ढांचा भविष्य में किसानों को व्यक्तिगत सलाह, बेहतर ऋण सुविधा और बीमा दावों के त्वरित निपटान में भी सहायक होगा। हालांकि, इन संभावनाओं का पूरा लाभ तभी मिलेगा जब तकनीक की पहुंच हर छोटे और सीमांत किसान तक समान रूप से सुनिश्चित की जाए।

जरूरी सुझाव

* किसी भी नई तकनीक में निवेश करने से पहले नजदीकी कृषि विज्ञान केंद्र या कृषि विश्वविद्यालय से तकनीकी सलाह अवश्य लें।

* सरकारी योजनाओं की सब्सिडी और पात्रता की जानकारी के लिए ग्राम पंचायत, कृषि विभाग के कार्यालय या pmkisan.gov.in व enam.gov.in जैसी आधिकारिक वेबसाइट पर संपर्क करें।

आंकड़ों में बदलती खेती (इन्फोग्राफिक विवरण)

नीचे दिए गए आंकड़े इस बदलाव की रफ्तार को संक्षेप में दर्शाते हैं, इन्हें एक इन्फोग्राफिक की तरह पढ़ें, जहां हर बिंदु एक अलग पहलू को उजागर करता है:

* **1.79 करोड़+ किसान** — ई-नाम पोर्टल पर पंजीकृत (अगस्त 2025 तक)।

* **1,500+ मंडियां** — ई-नाम से एकीकृत, देशभर में फैली।

* **4.4 लाख करोड़+** – ई-नाम मंच पर अब तक हुए कुल कृषि व्यापार का मूल्य।

* **36,882 प्रदर्शन** — ICAR, KVK व राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा ड्रोन तकनीक पर आयोजित (2022-23 से 2025-26)।

* **15,000 महिला स्वयं सहायता समूह** — नमो ड्रोन दीदी योजना का लक्ष्य समूह।

* **1,261 करोड़** – नमो ड्रोन दीदी योजना का कुल परिव्यय (2023-24 से 2025-26)।

* **85%+** – भारत के लघु व सीमांत किसानों का अनुपात, जिनके लिए किफायती व साझा तकनीकें सर्वाधिक उपयोगी हैं।

निष्कर्ष-भारतीय खेती एक ऐसे दौर से गुजर रही है जहां परंपरा और प्रौद्योगिकी साथ-साथ चल सकते हैं। आधुनिक तकनीकें किसानों को न केवल अधिक उपज और बेहतर आय का रास्ता दिखा रही हैं, बल्कि उन्हें अनिश्चितताओं से निपटने का आत्मविश्वास भी दे रही हैं। यह बदलाव किसी एक दिन में नहीं आएगा, लेकिन सरकार, शोध संस्थानों, निजी क्षेत्र और सबसे महत्वपूर्ण रूप से स्वयं किसानों के सामूहिक प्रयास से 'बदलती खेती' निश्चित रूप से समृद्ध और आत्मनिर्भर भारत की नींव मजबूत करेगी।

मुख्य संदेश-आधुनिक तकनीकें विकल्प नहीं, बल्कि भारतीय कृषि की आय बढ़ाने, संसाधनों की बचत करने और जलवायु जोखिमों से निपटने की अनिवार्य आवश्यकता बन चुकी हैं – बशर्ते इनकी पहुंच हर वर्ग के किसान तक समान रूप से सुनिश्चित की जाए।

किसान क्या करें?

* नजदीकी कृषि विज्ञान केंद्र और कृषि विभाग से जुड़ें तथा प्रशिक्षण शिविरों में भाग लें।

* मृदा स्वास्थ्य कार्ड बनवाएं और उसकी सिफारिशों का पालन करें।

* ई-नाम, किसान क्रेडिट कार्ड और पीएम-किसान जैसी योजनाओं में पंजीकरण कराकर उनका लाभ उठाएं।

* शुरुआत में साझा या किराए की तकनीकी सेवाओं (जैसे ड्रोन छिड़काव) का उपयोग करें, फिर धीरे-धीरे स्वयं निवेश की योजना बनाएं।

वर्षा में देरी या कम होने की स्थिति में किसानों के नुकसान कम करने के लिए बैज्ञानिक सलाह

पहली प्रभावी वर्षा (50-75 मि.मी.) के बाद ही बुवाई करें

खेत में नमी संरक्षण करें

- मेड़बंदी और मल्चिंग करें
- पहली अच्छी वर्षा के बाद ही बुवाई करें
- कृषि वैज्ञानिकों द्वारा अनुशंसित कम अवधि की किस्में चुनें
- उपलब्ध नमी के अनुसार बीज दर और फसल का चयन करें

1. यदि मानसून 15-30 दिन विलंब से आए इसके लिए आकस्मिक सलाह

फसल	वैज्ञानिक सलाह	बुवाई की अंतिम उपयुक्त समय सीमा
ज्वार	• कम अवधि (80-100 दिन) की किस्में चुनें। • बीज दर 10-12 किग्रा./हेक्टेयर।	जुलाई प्रथम पखवाड़ा तक
बाजरा	• शीघ्र पकने वाली किस्में लें। • बीज दर 4-5 किग्रा./हेक्टेयर।	जुलाई दूसरा पखवाड़ा तक
तिल	• कम वर्षा मे उपयुक्त फसल। • बीज दर 3-4 किग्रा./हेक्टेयर।	जुलाई अंत तक
मूंग	• 60-65 दिन वाली किस्में चुनें। • बीज दर 12-15 किग्रा./हेक्टेयर।	जुलाई अंत तक
उड़द	• 70-80 दिन वाली किस्में चुनें। • बीज दर 12-15 किग्रा./हेक्टेयर।	जुलाई अंत तक
अरहर	• केवल प्रारंभिक वर्षा होने पर शीघ्र पकने वाली किस्में लगायें। • अधिक देरी होने पर क्षेत्र कम करें (अंतरवर्ती फसल के रूप में)।	जुलाई प्रथम पखवाड़ा तक
सोयाबीन	• जुलाई के प्रथम पखवाड़े तक ही बुवाई करें। • इसके बाद वैकल्पिक फसल अपनाएँ (तिल/मूंग/उड़द आदि)।	जुलाई प्रथम पखवाड़ा तक

2. यदि वर्षा सामान्य से कम तो

- खेत में मेड़बंदी, कंटूर बंडिंग और जल संरक्षण करें।
- मल्चिंग (फसल अवरोध) करें।
- समय पर खरपतवार नियंत्रण करें ताकि नमी की बचत हो।
- उपलब्ध पानी से जीवन रक्षक सिंचाई दें।
- यूरिया की पूरी मात्रा एक साथ न दें, 2-3 बार में दें।
- 2% यूरिया या 1% पोटाश का पर्णीय छिड़काव करें (आवश्यकता अनुसार)।
- कीट एवं रोगों की नियमित निगरानी करें।

3. जुलाई के अंत तक वर्षा न होने पर वैकल्पिक फसलें

तिल, मूंग, उड़द, बाजरा, चारा ज्वार

नमी संरक्षण के उपाय

- गहरी जुताई पहले से करें।
- खेत समतलीकरण करें।
- प्रत्येक खेत में मजबूत मेड़ बनाएँ।
- खेत का वर्षा जल खेत में ही रोकें।
- फसल अवरोष न जलाएँ।

5. उर्वरक प्रबंधन

- फास्फोरस एवं पोटाश बुवाई के समय दें।
- नाइट्रोजन (यूरिया) विभाजित मात्रा में दें।
- जैव उर्वरक (राइजोबियम, अजोटोबैक्टर) और जैविक खाद का प्रयोग बढ़ाएँ।

6. विशेष सलाह

- कम वर्षा की स्थिति में बाजरा, ज्वार, तिल, मूंग एवं उड़द अपेक्षाकृत सुरक्षित विकल्प हैं।
- सिंचित क्षेत्रों में ड्रिप/स्प्रिंकलर से कम पानी में सिंचाई करें।
- किसानों को प्रतिदिन मौसम पूर्वानुमान के आधार पर कृषि कार्य करने की सलाह है।
- कृषि विभाग द्वारा अनुशंसित किस्मों एवं तकनीकों का पालन करें।

किसानों के लिए संदेश

कृषि विभाग ने किसानों से आग्रह किया है कि वर्षा में देरी होने पर किसी प्रकार की चिंता न करें। पहली प्रभावी वर्षा के बाद ही बुवाई करें, कम अवधि एवं सूखा सहनशील किस्मों का चयन करें तथा कृषि विभाग एवं कृषि वैज्ञानिकों की सलाह के अनुसार कृषि कार्य करें।

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2025-27

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

मध्य भारत कृषक भारती

जुलाई -2026

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक राजू सिंह गुर्जर द्वारा कंचन ऑफसेट, चिंतामणि शास्त्री की गली, सात भाई की गोठ, लक्कडखाना,ग्वालियर, म.प्र.-474001 से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर, म.प्र.-474005 से प्रकाशित। संपादक : राजू सिंह गुर्जर (मोबा. 9425101132, 0751-4070802)